॥ श्रीः ॥

उद्योग प्रारब्ध विचार ।

अर्थात्

श्रीकाशीनिवासी निर्मल प० स्वामिगोविन्दसिंहसाधु कृत विविधयुक्तिप्रमाणविभूषित "प्रारब्ध तथा उद्योग" के परस्पर निर्बल सबल विचार विषयक

"अत्युत्तम निबन्ध"
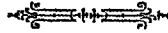
जिसको

खेमराज श्रीकृष्णदासने

बम्बई

खेतवाडी ७ वीं गली खम्बाटा लैन,

निज "**श्रीवेङ्कटेश्वर**" स्टीम्-प्रेसमे

मुद्रितकर प्रकाशित किया ।

संवत् १९७१, शक १८३६.

यह पुस्तक खेमराज श्रीकृष्णदासने बम्बई खेतवाडी ७ वीं गली खम्बाटा लैन, स्वकीय "श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेसमें अपने लिये छापकर यहीं प्रकाशित किया ।

भूमिका।

इस विचित्र संसारमें मनुष्यमात्र का उसमेंभी विशेप कर भारत निवासियोंका ऐसा स्वभाव है कि, जहांपर इनकी जैसी ध्वनि लगजाय उसीको अपनी वंशपरंपरातक भी सहस्रों वर्ष गाते रोते मरजातेहैं. परन्तु उससे हानि लाभ सोचनेकी किसीकी भी सामर्थ्य नहीं होती. उदाहरणके लिये आप एक प्रारब्धके मसलेहींको लेलीजिये सहस्रों नहीं लक्षों पुरुष समर्थ होकर भी हाथोंपर हाथ धरकर अपने दिन विताया करतेहैं. परन्तु जब उनसे कोई किसी कामका नाम लेवे तो वे एक प्रारब्ध शब्दहींसे सबका उत्तर देतेहैं तथा समय २ पर यथा कथञ्चित् जैसे कैसे अन्नोदकसे भी अपना पालन पोपण करते हुए तृण तोडकर दोहरा करनाभी नहीं चाहते. कारण इसका यही है कि, एक तो इस देशमे धनसग्रहकी पुरानी प्रथा चलीआतीहै और दूसरे वर्तमान समयमें बहुधा जनसमुदाय इस देशमें कृपण तथा मन्दमति उत्पन्न होतेहैं धनसंग्रहकी प्रथा प्राचीन है परन्तु पूर्वकालमें लोग अधिक यत्नसे अधिक पैदा करतेथे अपने यथायोग्य पालन पोषणसे शेष बचे धनको संग्रह भी करतेथे या सर्वसाधारणके उपयोगमें आनेवाले वापी कूप तडागादि धर्मकार्य्योंमें खर्च करतेथे परन्तु पेटसे भूखारहकर या कपडेभी अच्छीतरहसे न पहरकर कोई पुरुष पैसे जमाकरने वाला पैदा नहीं होताथा. परन्तु वर्तमानकालमें पूर्वकालेसे सबही विपरीत हैं अर्थात् इस देशमें यदि सग्रह करनेवाले दीखतेहैं तो ऐसे हैं कि, उनको अपने स्त्री पुत्रादि कुटुंबका पालन करना तो किनारे रहा अपने पेटभर खानेमें भी खेदसा मानते हैं ऐसे ही एक पापी जमा करके मरजाता है तो वह बनीबनाई रकम दूसरे कृपणके हाथ आती है या मूढके हाथ आतीहै यदि कृपणके हाथ आतीहै तो वह तो अपने पूर्वजोंकी तरह ही उस रकमको बनीरहने देताहै और सकुटुम्ब पेटसे भी दुःखित होकर अन्तमें हाड रुलाकर मरजाता है तथा वही बनीबनाई पूंजी भावी पापी या मूर्खकेलिये छोडजाताहै। और यदि वह कृपणकी रकम मूर्खके हाथ आती है

तो वह लाखों रुपया महीनोमें खोयकर शेष इधर उधर धक्के ही खाकर मरताहै । तात्पर्य्य यह कि, सहस्रोमे एक ऐसा पुरुष उत्पन्न होता है जो कि, अपने पूर्वजोके कियेहुए प्रयत्नकेसाथ अपना प्रयत्न मिलाकर अपने पूर्वजोके नामका उत्तेजन तथा स्वय यथायोग्य ससारका सुख अनुभव करता है अन्यथा बाकी सबही निष्फल जातेहैं। मेरा यह अभिप्राय नहीं है कि, धनका सग्रह करना बुरा है किन्तु यह अवश्य है कि, जो मनुष्य पास धन होते अपने या अपने कुटुम्बके पालन पोषणमे या अपनी सन्तानके शिक्षा देनेमें सकोच करताहै वह नीच है यह पूर्वोक्त प्रथा अच्छी स्थितिवाले मनुष्य वर्गकी कही है इसके अतिरिक्त दो तरहके मनुष्य भारतभूमिमे और भी उत्पन्न होतेहैं। एक तो वे कि, जिनको जन्मसे लेकर माता पिताने कुछ भी शिक्षा नहीं दी. किन्तु जैसे कैसे पालन पोषणकर युवावस्थापन्न करदिया है ऐसे होकर वे लोग अनेक प्रकारके अनर्थ करनेमे प्रवृत्त होजातेहै अर्थात् ठगी चोरी डकैती इत्यादि अनेक तरहकी बुराईमे प्रवृत्त होकर अपना पालन पोषण करते है। दूसरा मनुष्यदल एक ऐसा उत्पन्न होताहै कि, असमर्थ होनेके कारण माता पिताकी तरफसे तो वह शिक्षा कुछ नहीं पाता परन्तु जैसे कैसे कुछ थोडासा प्रयत्न करके इतनी बुद्धि सीख लेता है कि, बुरेकामोका नतीजा सदा बुरा ही होता है इसलिये हमको बुरेकामोसे बचेरहना चाहिये। अब ऐसी दशामे ऐसे दलको खान पानादिकी सदा त्रुटि ही रहती है, क्योकि ससारमात्रमे ऐसा देखनेमे आता है कि, जिस पुरुषने दूसरेका पैदा किया नहीं खाताहै किन्तु अपने प्रयत्नसे पैदाकरके खाताहै उसको कोई अवश्य विशेष काम या रोजगार सीखना चाहिये परन्तु ऐसे दलको बूढे होनेतक भी आता तो कुछ भी नहीं शेषमे साधु सन्यासी अन्नक्षेत्रोको अपना आश्रय जानकर इधर उधर चलते फिरते अपनी प्रारब्धको रोते गाते मरजाते हैं. इसलिये इन चारोप्रकारके मनुष्यवर्गके लिये इस हमारे ग्रन्थका उपयोग कुछभी नहीं, शेष रहा एक थोडासा पञ्चमदल जो कि, यथाशक्ति कुछ थोडासा लिख पढकर काररोजगारमे समर्थ होकर भी अपनी प्रारब्धकी मालाको फिराताहुआ जान बूझकर दुःख उठारहा है ऐसे मनुष्यवर्गकेलिये हमारा यह ग्रन्थ परम उपयोगी है। मेरेको

यह पूर्ण विश्वास है कि, विचारशील पुरुप यदि प्रेमपूर्वक इस ग्रन्थको आद्योपान्त अवलोकन करेगा तो अवश्य उसको प्रवल युक्तिप्रमाणोंसे उद्योगहीकी प्रधानता तथा प्रारब्धकी निपट गौणता प्रतीत होगी. यद्यपि इस सांसारिक विचित्र घटनाओंमे अनेक स्थलोंमे ऐसा भी निश्चय होता है कि, जहा सिवाय प्रारब्धके दूसरी गतिही नहीं दीखपडती तथापि इस ग्रन्थमे थोडेसे इतिहास तथा उदाहरण ऐसे लिखदियेहै कि, उद्योग पक्षपाती पुरुप उनकी तरह उनका भी वही उत्तर करसकता है. यहां पर अधिक लिखना व्यर्थ है इस ग्रन्थके लिखनेका मेरा हार्दिक भाव यही है कि, प्रत्येक पुरुपको अपनी प्रारब्धके भरोसेपर हाथपर हाथ धरके कालक्षेप नहीं करना चाहिये किन्तु सभीको इस ग्रन्थके नायक मनोहरसिह कुमारकी तरह अपने गतभागकी तरफ दृष्टि करनीचाहिये, तथा उसकी प्राप्तिकेलियें जहातक वनपडे विशेप उपाय करनाचाहिये इति ।

ये नाम केचिदिह नः प्रथयन्त्यवज्ञां
जानंतु ते किमपि तान्प्रति नैष यत्नः ॥
उत्पत्स्यतेऽस्ति मम कोऽपि समानधर्मा
कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी ॥ १ ॥

(मालतीमाधव)

आपका--निर्मल प० स्वामी गोविन्दसिंहसाधु.

उद्योगप्रारब्ध विचारानुक्रमणिका।

इत्यनुक्रमणिका समाप्ता ।

ॐ

उद्योग-प्रारब्धविचार।

प्रथम विश्राम।

दोहा।

विघ्न व्याल विष वार हित, जासु नाम गरुडाय ॥
सो श्री गुरुनानक सदा, दासन करै सहाय ॥ १ ॥
मति अनुमत कछु करतहों, उद्यम दैव विचार ॥
सम निर्बल वा सबलको, बुधजन लेहु सुधार ॥२॥

अथ कथाप्रस्ताव।

(छप्पय.)

चंद्रकीर्ति नरनाह देश दक्षणमें नीको ॥
परम भक्त जगदीश चरण सेवक सियपीको
राजकाजगज बाजि प्रजा सन्तति सम जाके
धर्म कर्म विन दाम दैन इक छद्म न ताके ॥
वृद्धवयस संतति विना, निशदिन शोकातुर भयो ॥
ईश कृपाते तासु गृह, सुंदर सुत इक उपजयो ॥ ३ ॥

अथ राजकुमार नाम स्वरूप स्वभाव वर्णन।

(छप्पय.)

नाम मनोहर तासु पुकारत लोग रैन दिन ॥
क्षत्रवंश अवतंस हंस गुण रूप मान विन ॥

मधुर बैन प्रिय नयन सभीको लागत नीको ॥
करत बडन को नमन खैंच जन लेवत जीको ॥
परम पुनीत सुनीत मन, मोद होत पक्षीपिखे ॥
दूज चांद सम देखबे, घने चहें कबहूं दिखे ॥ ४ ॥

अर्थात् जिस समय परम देशोपकारक विद्वच्छिरोभूषण महामहोपदेशक श्रीशंकराचार्य्य स्वामीहुए उसीसमयके कतिपय शताब्दी पीछे दक्षिण देशमें कतिपय ग्रामाधिपति एक चन्द्रकीर्ति नामक राजाकी अन्तिम अवस्थामें उसके एक पुत्र हुआ जिसका नाम मनोहरसिंह था । वह राजकुमार १५ वर्षकी आयुमे अपने विद्याविनयादि गुणोंसे तथा रूपयौवनसे अपने नामको सार्थक करनेवाला था । विद्योपयुक्त होकर पूर्वसंस्कारके अनुसार उस राजकुमारने तत्त्वदर्शी साधु महात्माओंके सत्संगको श्रेष्ठ समझा । इसने अनेक विद्वानोंसे वार्तालाप कर लाभ उठाया । ऐसेही उपदेश करते २ श्रीशंकरस्वामीके अनुगामी लोग भी वहा पधारे और उनके उपदेश राजकुमारने परमप्रेमसे सुने ॥ श्रीशंकरस्वामीके अनुगामी सत्पुरुषोंके उपदेश यद्यपि नीति ज्ञान देशोपकारादि अनेक अनवद्य भावोंसे भरे थे तथापि उन सारगर्भित उपदेशोंसे राजकुमारको यही निश्चय हुआ कि जो कुछ शुभाशुभ कर्म वा भोग पुरुषको होताहै वह संपूर्ण प्रारब्धका प्रभाव है ॥ स्वयं भावि भोगार्थ प्रयत्नशील होना अविश्वासी वा असंतोषी पुरुषोंका काम है जिन महापुरुषोंको अपने प्रारब्धपर भरोसा है वे महात्मा सर्व दशामें प्रफुल्लितही रहतेहैं क्योंकि उनको दृढ विश्वास है जो होनेवाला है सो अवश्य होगा जो नहीं होनेवाला है उसको ब्रह्मा भी करनेको असमर्थ है ॥ और अविश्वासी पुरुषको तो रात्रिमे निद्रा भी दुर्लभ है ॥ कुमारकी ऐसी दृढ विश्वासरूप अदमनीयदशाको देखकर परम प्रवीण नीतिनिपुण महाराज चन्द्रकीर्तिने विचारा कि यह राजकुमार यदि ऐसेही स्वप्रारब्धपर विश्वस्त रहकर अपने राज्यकार्य्योंमें दृष्टिपात नहीं करेगा तो अवश्य मेरे पश्चात् शत्रुओंसे राज्य छिनाकर प्रारब्धके भरोसे आयुः पर्य्यन्त अनेक विध क्लेश उठावेगा॥ परन्तु यत्नशील न होगा । प्रजाका पालन तो दूर रहा स्वकीयपालन भी न करस-

केगा॥इसलिये कोई ऐसा उपाय सोचा जावे कि जिससे यह राजकुमार राज्यकार्योंमे दत्तदृष्टि होवे॥राजाने बहुत काल ऐसा सोचा परन्तु कोई योग्य उपाय उसकी बुद्धिमे न आया॥उसके समझानेके लिये राजाने कईएक पण्डितोको तथा राज्याधिकारी मन्त्री मुसाहिबोको उपयुक्त किया। परन्तु पूर्ण रीतिके उपदेशसे राजकुमारके मतव्य पलट देनेका किसीको साहस न हुआ। प्रकृत विषयपर जिस २ पुरुषने राजकुमारके साथ वार्तालाप किया उसी २ को राजकुमारने अनेक प्रवल युक्ति प्रमाणोसे प्रारब्धकी प्रवलता स्वीकार कराई॥ ऐसी आश्चर्य्यघटनाको देखकर राजा प्रतिक्षण शोकसागरमें निमग्न रहे और मनमे कहनेलगे कि हे ईश्वर! प्रारब्धपर विश्वासी यह राजकुमार अपनी वाणीको तो प्रारब्धपर नहीं रखता। इसने अपनी युक्तियुक्त वाक्पटुताके उद्योगसे अनेक विद्वानोको स्वकीय मतव्य मनाया। परन्तु राजकार्योंमें उसी बुद्धिको प्रवृत्त नहीं करता। इसी तरह कुमारदशासे शोकातुरराजाने कितने दिन ऐसेही ईश्वरप्रार्थनामें विताये तो दैवात् देश देशातर दर्शनाभिलाषी तर्कवाचस्पति विद्वच्छिरोमणि पंडित गोविंदहरिनामक विद्वान् उसी राजधानीमे पधारे। उनके युक्तियुक्त सदुपदेशकी प्रशसा महाराज चन्द्रकीर्तिके कर्णाक्रात हुई॥ तो उनको राजाने अति सन्मानपूर्वक स्वागारमें बुलाय एकातमे निविष्ट कर अपने अभीष्टको स्पष्ट निवेदन किया॥ पडितने प्रार्थनापूर्वक राजवाणी सुनकर स्वीकार करी और राजाको धैर्य्य दिया कि आपका कार्य्य अति शीघ्र होगा वालककी बुद्धि स्वच्छ और जलस्निग्ध मृत्तिकावत् अति मृदु होती है आशा है कि जैसा चाहे वैसे पलटेगी। पडितकी ऐसी वाणी सुनकर राजाके मनमे सतोष हुआ और पंडितजीको कुछ पारितोषिक देनेकी प्रतिज्ञा की। पंडितजीने पारितोषिक स्वीकार किया तथा राजसभामें भगवद्गीताकी कथाका प्रारंभ राजाको स्वीकार कराय दूसरे दिन १ प्रहर दिन शेष रहे अनेकविध पूजनादि उत्साहयुक्त कथाका राजसभामें प्रारम्भ किया। विलक्षण धूम धाम देखकर राजकुमार भी राजसभामें यथायोग्य स्थानपर आन वैठा। पडितजीने कथाप्रारम्भसमय भगवद्गीताके आगे प्रार्थनारूप मंगल किया वह श्लोक यह है:--

अर्जुनाद्यालसानां स्वत उद्योगिकारिके ॥
लज्जां मे रक्षतान्मातर्जगज्जालविदारिके ॥ १ ॥

अर्थ-हे मातः गीते जैसे तैने अर्जुनादि अति आलसी पुरुषोंको उद्योग-शाली बनाया वैसे मेरी जिह्वाद्वारा इस राजकुमारको भी उद्योगी करके मुझ दासकी इस राजसभामे लज्जा राख ॥ १ ॥

ऐसे मगल कर पडितने कथाका प्रारम्भ किया ॥ अनेक भाव कटाक्ष युक्त मधुर स्वरनिःसृत कथा राजकुमारने दत्तचित्त होकर श्रवण करी और दूसरे दिन राजकुमारने प्रेमपूर्वक श्रवण करनेके लिये अपना आसन पडितके अग्र-भागमे बिछवाया ऐसी घटनाको देख राजा तथा पंडित दोनों प्रसन्न हुए ॥ अति उत्साहित होकर पडितजी और भी प्रेमसे कथा करने लगे और शुभगुण-सारग्राही राजकुमार भी कथा प्रेमतंतुसे बद्ध होकर सबसे अग्रही सभाभवनमें प्रतिदिन आय २ बैठने लगा ऐसे ही चार पांच रोज व्यतीत हुए तो गीताके (३) अध्यायका (८) वा श्लोक आया वह यह है ॥

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः ॥
शरीरयात्राऽपि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मणः ॥ १ ॥

अर्थ-श्रीकृष्णदेव अर्जुनको कहते हैं हे अर्जुन ! तुम नियमपूर्वक शुभकर्मों-को करो कर्मोंके न करनेसे कर्मोंका करना श्रेष्ठ हैं क्योंकि कर्मोंके अभावसे तुम्हारी शरीरयात्रा भी सिद्ध न होगी अर्थात् बुद्धिपूर्वक शारीरक प्रयत्न विना खान पानादि शरीरयात्राका निर्वाह भी नहीं होगा इसलिये शुभकर्म दृढ प्रय-त्नसे अवश्य करने उचित हैं ॥ ऐसे ही गीताके इस श्लोकके भावको लेकर अनेक ग्रंथकारोंने उद्योग ही की प्रशसा करी है जैसे ॥ १ ॥

उद्योगः खलु कर्तव्यः फलं मार्जारवद्भवेत् ॥
जन्मप्रभृति गौर्नास्ति पयः पिबति नित्यशः ॥ १ ॥

पुरुषको उद्यम अवश्य करना चाहिये उसका फल बिल्लीकी तरह अवश्य ही होता है जैसे कि जन्मसे लेकर उसके पास गौ नहीं परन्तु अपने उद्यमसे प्रतिदिन दूधपान करताहै ॥ १ ॥

उद्यमेन हि सिध्यंति कार्य्याणि न मनोरथैः ॥
नहि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः ॥ २ ॥

यावत् कार्य्योंकी सिद्धि उद्यम करनेसे होती है केवल मनोरथमात्रसे नहीं होती जैसे कि शयन किये सिंहके मुखमे मृग आप ही नहीं आपड़ते किंतु यत्नसे सिंह मृगोंको मारताहै ॥ २ ॥

काकतालीयवत्प्राप्तं दृष्ट्वापि निधिमग्रतः ॥
न स्वयं दैवमादत्ते पुरुषार्थमपेक्षते ॥ ३ ॥

अकस्मात् प्राप्त धनको आगे पड़ा देखकर भी पुरुषका प्रारब्ध नहीं उठाता किन्तु अपने यत्नसे पुरुष स्वय उठाता है ॥ ३ ॥

आलस्यं हि मनुष्याणां शरीरस्थो महान्रिपुः ॥
नास्त्युद्यमसमो बन्धुः कृत्वा यं नावसीदति ॥ ४ ॥

शरीरमें विद्यमान आलस्यही पुरुषोंका अतिशत्रु है और उद्योगके समान पुरुषका कोई बन्धु नहीं है इसके सेवनसे पुरुष दुःख नहीं उठाता ॥ ४ ॥

न दैवमिति संचिंत्य त्यजेदुद्योगमात्मनः ॥
अनुद्यमेन कस्तैलं तिलेभ्यः प्राप्तुमिच्छति ॥ ५ ॥

पुरुष अपनी प्रारब्धके भरोसेपर उद्यमको न त्यागे क्यों कि विना उद्यमके तिलोंसे तेलका लाभ कौन करसकता है ॥ ५ ॥

विहाय पौरुषं यो हि दैवमेवावलम्बते ॥
प्रासादसिंहवत्तस्य मूर्ध्नि तिष्ठन्ति वायसाः ॥ ६ ॥

जो पुरुष पुरुषार्थको छोड़कर केवल दैवकीही शरण लेताहै उसके सिरपर काक भी ऐसे निर्भय होकर बैठ जातेहैं कि जैसे मंदिरपर मिट्टीके बने सिंहके सिरपर बैठते हैं ॥ ६ ॥

पूर्वजन्मजनितं पुराविदः कर्म दैवमिति संप्रचक्षते ॥
उद्यमेन तदुपार्जितं चिराद्दैवमुद्यमवशं न तत्कथम् ॥ ७ ॥

जन्मजन्मान्तरके - जाननेवाले ऋषि मुनियोंने पूर्वकृत कर्मोंकोही प्रारब्ध' मानाहै ॥ और वह कर्म उसकालमे भी उद्यमसेही किये गये थे इसलिये दैव उद्यमके अधीन है अर्थात् कर्मसे उत्पन्न होनेवाला है ॥ ७ ॥

दैवं पुरुषकारेण साध्यसिद्धिनिबन्धनम् ॥
योऽतिक्रामितुमिच्छेत्स न लोकेष्ववसीदति ॥ ८ ॥

साध्य कार्यकी सिद्धि करनेवाले दैवको जो पुरुष अपने पुरुषार्थसे उल्लघन करनेकी सदा इच्छा रखताहै वह पुरुष लोकमे दुःख नहीं उठाता ॥ ८ ॥

सम्पदा सुस्थिरंमन्यो भवति स्वल्पयाऽपि यः ॥
कृतकृत्यो विधिर्मन्ये न वर्धयति तस्य ताम् ॥९॥

जो पुरुष बहुत थोड़ी सम्पदासे अपनेको अति सुखी कृतकृत्य मानता है उसको विधाता भी नहीं बढाता ॥ ९ ॥

असम्पादयतः किंचिदर्थं जातिक्रियागुणैः ॥
यदृच्छाशब्दवत्पुंसः संज्ञायै जन्म केवलम् ॥१०॥

जिस पुरुषने अपने जाति क्रिया गुणोंद्वारा कुछ भी प्रयोजन सिद्ध नहीं किया उसका जन्म केवल पुरुषसज्ञाहीके लिये है अर्थात् मिट्टीकी मूर्तिके पुरुष जैसा वह पुरुष है ॥ १० ॥

कामपि श्रियमासाद्य यस्तद्वृद्धौ न चेष्टते ॥
तस्यापत्तिषु न श्रेयो बीजभोजिकुटुम्बवत् ॥ ११ ॥

जो पुरुष किसी एक विभूतिको पाकर उसकी वृद्धिका यत्न नहीं करता वह बीजको भोजन करनेवाले कृषिकार कुटुम्बवत् विपत्तियोंको प्राप्त होताहै अर्थात् उसको भविष्यत् कालमें सुख नहीं होता ॥ ११ ॥

उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः
दैवं प्रधानमिति कापुरुषा वदन्ति ॥

दैवं विहाय कुरु पौरुषमात्मशक्त्या,
यत्ने कृते यदि न सिध्यति कोत्र दोषः ॥ १२ ॥

भावार्थ-सिंहसदृश उद्योगी पुरुष ही को सर्व सम्पदाएं प्राप्त होती हैं ॥ केवल दैवही प्रधान है यह कहना कुत्सितो (नीचपुरुषो) का है ॥ इसलिये दैवको आशाको छोडकर हे पुरुषो! प्रयत्न करो और यदि तुम्हारे बुद्धिबलसे कदाचित् कोई कार्य न सिद्ध हो तो सूक्ष्मदृष्टिसे पुनः विचारो कि कौन दोष कार्य्य-का प्रतिबन्धक है यदि उस दोषका प्रतीकार तुम्हारेसे होसके तो पुनः उसी कार्यका प्रारम्भ कर पूर्ण करो न होसके तो उस कार्यको छोड कार्यान्तरमें प्रवृत्त होवो स्वप्रयत्नको सफलीभूत करो ये पूर्वोक्त यावत् श्लोक महर्षि व्यासादिप्रोक्त धर्मशास्त्रोंके हैं और युक्तियुक्त होनेसे पुरुषको अत्यन्त उपादेय हैं इतना कहकर उस दिन पण्डितजीने कथाकी समाप्ति करी अति अल्पकालके कारण राजकुमार उस दिन चुपरहा परन्तु पूर्वोक्त श्लोकोको श्रवण कर अति असंतुष्ट होकर स्वकीय प्रासादमें प्रविष्ट हुआ ॥ १२ ॥

पहिला विश्राम समाप्त.

द्वितीयविश्राम ।
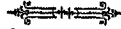
दूसरेदिन कथा प्रारम्भसे पूर्वही राजकुमारने पण्डितसे वार्तालापका प्रारम्भ किया कुमारकी ऐसी चेष्टाको देखकर राजाके तथा पण्डितके चित्तको अति संतोष हुआ और अपने उद्देशको साध्य समझा ॥

(राजकु०) क्या पण्डितजी दैवको माननेवाले सभी कुत्सित अधम नीच पुरुष हैं ॥ अनेकऋषि मुनियोंने दैवको प्रवल कथन कियाहै । तथा उत्तम २ उदाहरणोंद्वारा दिखलायाहै । प्रथम देखिये श्रीकृष्ण देव ही गीताके (३) अध्यायके (५) वें श्लोकमें क्या लिखते हैं ॥

नहि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत् ॥
कार्य्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः ॥ १ ॥

भावार्थ—कोई पुरुष कदाचित्क्षणमात्र भी क्रियाशून्य होकर नहीं बैठ सकता प्रकृतिसे उत्पन्न होनेवाले सत्त्वादिगुण पुरुषको स्वाधीन करके यावत् कर्मोंमें नियुक्त करते हैं ॥ इस कथनसे स्पष्ट यही सिद्ध होता है कि पुरुषको प्रयत्नकी कुछ अपेक्षा नहीं है इसकी प्रारब्धके अनुसार प्रकृतिगुण आपही प्रेरणाकर जो चाहे पुरुषसे करवा सकतेहैं पुनः इसीवार्ताको श्रीकृष्ण देवने (१८) अध्या-यके (६०) वें श्लोकमे स्पष्ट कियाहै ॥ १ ॥

स्वभावजेन कौंतेय निबद्धः स्वेन कर्मणा ॥
कर्तुं नेच्छसि यन्मोहात्करिष्यस्यवशोऽपि तत् ॥२॥

भावार्थ—हे अर्जुन ! स्वभावज कर्मोंमे बन्धायमान तुम जिस कर्म करनेकी नहीं भी इच्छा करते सो भी तुम कर्मवेगके वशीभूत होकर अवश्य करोगे ॥ अर्थात् श्रीकृष्णदेव कहते हैं हे अर्जुन ! पूर्वकृत कर्मका वेग वर्तमान उद्योगसे दूर नहीं होता किन्तु यावत् प्रवृत्ति निवृत्ति पूर्वकर्मानुसारिणी है यथेष्ट नहीं है॥२॥

इसी भगवत्तात्पर्य्यको अनेक ऋषि मुनि कवि कोविदोंने अनेक भावोंसे कहा है सो सुनिये ॥

प्राप्तव्यमर्थं लभते मनुष्यो देवोऽपि तं लंघयितुं नशक्तः ॥ तस्मान्न शोचामि न विस्मयो मे यद-स्मदीयं नहि तत्परेषाम् ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो पदार्थ पुरुषकी प्रारब्धमें है वह पुरुषको अवश्य प्राप्त होगा उसनें कोई देवादिक भी प्रतिबन्धक नहीं हो सकता इस लिये मेरेको इस बातमें कुछ विचार वा आश्चर्य्य नहीं होता क्योंकि मेरेको यह दृढनिश्चय है कि जो मेरा भाग है उसको दूसरा कदापि नहीं लेसकता ॥ ३ ॥

दैवे विमुखतां याते न कोप्यस्ति सहायवान् ॥
पिता माता तथा भार्य्या भ्राता वाऽथ सहोदरः ॥ ४ ॥

माता पिता स्त्री वा सहोदर भाई दैवके विपरीत होनेसे कोई भी सहायता नहीं करसकता ॥ ४ ॥

यद्धात्रा निजभालपट्टलिखितं स्तोकं महद्वा धनं
तत्प्राप्नोति मरुस्थलेऽपि नितरां मेरौ ततो नाधिकम् ॥
तद्धीरो भव वित्तवत्सु कृपणां वृत्तिं वृथा मा कृथाः
कूपे पश्य पयोनिधावपि घटो गृह्णाति तुल्यं जलम् ५॥

विधाताने पुरुषके माथेपर थोडाबहुत जो कुछ धन लिखा है वह पुरुषको मरुभूमिमे वा सुमेरुपर जहा जावे वहा उतनाही मिलेगा इसलिये हे पुरुष ! तुम धैर्य धारण करो और धनाढ्य पुरुषोंके सामने अपनी दीन (कंगली) दशाको मत दिखावो देखो घटको चाहो कोई कूपसे भरे वा सागरमें लेजावे उतनाही जल पडेगा ॥ ५ ॥

नेता यस्य बृहस्पतिः प्रहरणं वज्रं सुराः सैनिकाः
स्वर्गो दुर्गमनुग्रहः किल हरेरैरावतो वारणः ॥
इत्याश्चर्य्यबलान्वितोऽपि बलिभिर्भग्नः परैः संगरे
तद्युक्तं वरमेव दैवशरणं धिग्धिग्वृथा पौरुषम् ॥६॥

जिस इन्द्रका साक्षात् बृहस्पति शिक्षक, वज्र शस्त्र, देवोंकी सेना, स्वर्ग किला ऐरावत हस्तीका वाहन और साक्षात् हरिकी कृपा इत्यादि अनेक आश्चर्य्य बल युक्त भी इन्द्रको युद्धमें अतिबलिष्ठ शत्रुओने मर्दन किया इसलिये सर्व आशा को त्याग केवल दैवकी शरणहीमे सुख है और वृथा पुरुषार्थको अनेकानेक धिक्कार हैं ॥ ६ ॥

नमस्यामो देवान्ननु हतविधेस्तेऽपि वशगाः
विधिर्वन्द्यः सोऽपि प्रतिनियतकर्मैकफलदः ॥
फलं कर्मायत्तं यदि किममरैः किञ्च विधिना
नमस्तत्कर्मभ्यो विधिरपि न येभ्यः प्रभवति ॥ ७ ॥

भर्तृहरि कहते हैं--हम देवताओंको नमस्कार करें सोभी ठीक नहीं वे मंदबुद्धि तो आपही इन्द्र ब्रह्मादि अनेकोंके आधीन हैं ॥ विधिको नमन करें तो वह

भी तो हमारे कर्मफलसे अधिक कुछ नहीं देसकता यावत् भोग हमको यदि हमारे ही कर्मानुसार होता है तो देवतो तथा विधिसे क्या कामहै ॥ जिनसे विपरीत करनेमें विधि भी असमर्थ है ऐसे अपने प्रारब्धरूप कर्महीको हम बारंबार प्रणाम करते हैं ॥ ७ ॥

भग्नाशस्य करण्डपीडिततनोर्म्लानेंद्रियस्य क्षुधा
कृत्वाऽऽखुर्विवरं स्वयं निपतितो नक्तं मुखे भोगिनः ॥
तृप्तस्तत्पिशितेन सत्वरमसौ तेनैव यातः पथा
लोकाः पश्यत दैवमेव हि नृणां वृद्धौ क्षये कारणम् ॥ ८ ॥

रात्रिकालमें भूखसे दुर्बल इन्द्रिय तथा पिटारीमे पीडित तनु सर्पको कुछ खानेको मिलनेकी आशा नथी परन्तु एक मूषक स्वय बिल निकाल उसके मुखमे गिरा सर्प उसके खानेसे अति तृप्त हुआ और उसी मार्गसे चला इस विचित्र घटनाको देख पुरुषोको अवश्य निश्चय करना चाहिये कि वृद्धिमें वा क्षयमें केवल दैवही कारण है ॥ ८ ॥

खल्वाटो दिवसेश्वरस्य किरणैः संतापितो मस्तके
वाञ्छन्देशमनातपं विधिवशात्तालस्य मूलं गतः ॥
तत्रोच्चैर्महता फलेन पतता भग्नं सशब्दं शिरः
प्रायो गच्छति यत्र भाग्यरहितस्तत्रापदां भाजनम् ९

सूर्यकिरणोंसे अतितप्त मस्तकवाला गजा पुरुष छायाको खोजता हुआ दैवात् तालवृक्षके नीचे चला गया वहां अकस्मात् ऊपरसे फल गिरकर उसका शिर फूटा इससे निश्चय हुआ कि भाग्यहीन पुरुष जहां जावे वहां ही विपदाका पात्र होताहै ॥ ९ ॥

गजभुजंगमयोरपिबन्धनंशशिदिवाकरयोर्ग्रह-
पीडनम् ॥ मतिमतांचविलोक्यदारिद्रतांविधिर-
होबलवानितिमेमतिः ॥ १० ॥

हस्ती और सर्पके बन्धनको तथा सूर्य्यचन्द्रकी ग्रहपीडाको और बुद्धिमानोंकी दरिद्रताको देख हमें निश्चय होताहै कि दैव अतिबली है ॥ १० ॥

मज्जत्वम्भसि यातु मेरुशिखरं शत्रूञ्जयत्वाहवे वाणिज्यं कृषिसेवनादिसकला विद्याःकलाः शिक्षतु ॥ आकाशं सकलं प्रयातु खगवत्कृत्वा प्रयत्नं परं नोऽभाव्यंभवतीह कर्मवशतो भाव्यस्य नाशःकुतः ॥ ११ ॥

यह पुरुष चाहे गहरे जलमे गोते लगावे वा सुमेरुकी शिखरपर चलाजावे युद्धमें शत्रुगणसे विजय पावे व्यापार कृषि सेवादि अनेक विद्याओंको सीखे किंवा अति प्रयत्नसे पक्षीवत् आकाशमें उडे पर तौ भी जो अभावी है सो कदापि न होगा और जो भावी है उसका नाश न होगा ॥ ११ ॥

द्वीपादन्यस्मादपि मध्यादपिजलनिधेर्दिशोऽप्यन्तात्॥ आनीयझटितिघटयतिविधिरभिमतमभिमुखीभूतः १२।

पुरुषके अनुकूल हुआ विधाता उसके भोगाभिमत वस्तुको द्वीपांतरसे वा देशांतरसे वा समुद्रमेंसे भी शीघ्र लाकर जुटा देता है ॥ १२ ॥

दैवमुल्लंघ्य यत्कार्य्यं क्रियते फलवन्न तत् ॥ सरोऽम्भश्चातकेनाऽऽत्तं गलरन्ध्रेण गच्छति ॥१३॥

आरब्धका तिरस्कार करके जो काम किया जावे सो फलीभूत नहीं होता जैसे सरोवरका पानी चातक पीवे तो उसके गलेके छिद्रसे निकल जाताहै ॥ १३ ॥

भाग्यवन्तं प्रसूयेथा मा शूरं मा च पंडितम् ॥ शूराश्च कृतविद्याश्च वने सीदंति पांडवाः ॥ १४ ॥

द्रौपदीको कुन्ती कहतीहै—हे सुशीले ! तैने भाग्यशालीपुत्रको उत्पन्न करना क्योंकि अति शूरवीर यावत् विद्याविचक्षण मेरे पुत्र पांडव वनमे क्लेशही उठाते हैं इसलिये शूर वीर वा विद्वान्की अपेक्षा नहीं ॥ १४ ॥

अरक्षितं तिष्ठति दैवरक्षितं सुरक्षितं दैवहतं विनश्यति ॥ जीवत्यनाथोऽपि वने विसर्जितः कृतप्रयत्नोऽपि गृहे विनश्यति ॥ १५ ॥

अरक्षितभी पदार्थ दैवरक्षासे बहुत काल बनारहता है और सुरक्षित भी दुर्दैवसे विनष्ट होता है ॥ निर्जन वनोमे अनेको अनाथभी जीव केवल दैवयोगसे आनन्दित हें और घरोंमे यत्नसे रक्षितभी अनेक जीव दुर्दैवसे नष्ट होजाते हैं ॥ १५ ॥

दाता बलिः प्रार्थयिता च विष्णुर्दानं भुवो वाजिमखस्य कालः ॥ नमोऽस्तु तस्यै भवित- व्यतायै यस्याः फलं बन्धनमेव जातम् ॥ १६ ॥

अश्वमेध यज्ञका समय और उत्तम भूमिका दान महाराज बलि जैसा दाता और विष्णु जैसे दानपात्र परन्तु तौ भी हम उस भावी ही को प्रणाम करते हैं कि जिससे सब शुभ सामग्रीका बलिको फल केवल बन्धन रूपही हुआ ॥ १६ ॥

किं करोति नरः प्राज्ञः शूरो वाप्यथ पंडितः ॥ दैवं यस्य च्छलान्वेषि करोति विफलाः क्रियाः ॥ १७ ॥

जिस पुरुषकी छल चातुरीकी क्रियाको दैवही विफल करदेता है वह सुमति पंडित वा शूर भी हो तो क्या करसकता है ॥ १७ ॥

यन्मनोरथशतैरगोचरं न स्पृशंति कवयो गि- रापि यत् ॥ स्वप्नवृत्तिरपि यत्र दुर्लभा लीलयैव विदधाति तद्विधिः ॥ १८ ॥

यदि पुरुषका प्रारब्ध अनुकूल हो तो मनसे अचिंतनीय कविलोगोंके वाणीके भी अविषय किंवा स्वप्नमे भी दुर्लभ पदार्थ पुरुषको स्वाभाविक ही मिलजाता है ॥ १८ ॥

सदसि विदुरभीष्मद्रोणशारद्वतानां पतिभिरमरकल्पैः पञ्चभिः पालितापि ॥ अहह परिभवस्य द्रौपदी पात्रमासीद्बलवति सति दैवे बन्धुभिः किंविधेयम् ॥ १९ ॥

विदुर भीष्म द्रोण कृपाचार्यादि वृद्धोंकी सभामे देवतातुल्य पञ्च पतियोंसे सरक्षित भी द्रौपदी निरादरको प्राप्त हुई ॥ इससे निश्चय होताहै कि, दैवके वलिष्ठ होनेसे बन्धु भी कुछ नहीं करसकते ॥ १९ ॥

सुखस्य दुःखस्य न कोऽपि दाता परो ददातीति कुबुद्धिरेषा ॥ अहं करोमीति वृथाऽभिमानः स्वकर्मसूत्रग्रथितो हि लोकः ॥ २० ॥

इस जीवको सुख वा दु खका देनेवाला कोई दूसरा नहीं है और अमुकने मेरेको क्लेश दिया यह माननाही मूर्खता है ॥ यह काम मैंने किया यह अभिमान झूठा है ॥ स्वकर्मरूप रज्जुसे ग्रथित सब जीवोंका यावत् व्यवहार स्वय ही होता है ॥ २० ॥

विपत्तौ किं विषादेन सम्पत्तौ हर्षणेन किम् ॥ भवितव्यं भवत्येव कर्मणामीदृशी दशा ॥ २१ ॥

पुरुषको चाहिये कि विपत्तिमे विषाद वा सपत्तिमे आनद न माने पूर्वकर्म वेगसे जो भवितव्य है सो अवश्य ही होता है ॥ २१ ॥

अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ॥ नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि ॥ २२ ॥

अपने किये शुभाशुभ कर्मका फल अवश्य ही भोगना पडेगा विना भोगसे कर्मका शतकोटिकल्पमें भी क्षय नहीं होता ॥ २२ ॥

मतिरुत्पद्यते तादृग्व्यवसायश्च तादृशः ॥
सहायस्तादृशो लोके यादृशी भवितव्यता ॥ २३ ॥

पुरुषका जैसा प्रारब्ध होताहै उसीके अनुकूल बुद्धि विश्वास और सहकारी भी मिलजाते हैं ॥ २३ ॥

यदभावि न तद्भावि भावि चेन्न तदन्यथा ॥
इति चिंताविषघ्नोऽयं बोधो भ्रमनिवर्तकः ॥२४॥

जो नहीं होनेवाला सो न होगा और जो होनेवाला है सो न टलेगा यह निश्चय यावत् संदेहका तथा चितारूपी विषका विनाशक है ॥ २४ ॥

अवश्यंभाविभावानां प्रतीकारो भवेद्यदि ॥
तदा दुःखैर्न लिप्येरन्नलरामयुधिष्ठिराः ॥ २५ ॥

भावार्थ—अवश्य होनेवाले कर्मवेगका यदि नाश होना सम्भव होता तो महाराज रामचन्द्र तथा नल युधिष्ठिरादि दुःखसे पीडित न होते ॥ २५ ॥

अर्थात् यह लोग यावत् दुःखका प्रतीकार करनेमे समर्थ भी थे परन्तु प्रारब्धवेगसे इन महापुरुषोंने साधारण ससारी जीवोकी तरह अनन्तानन्त क्लेश उठाये श्रीरामचन्द्र महाराजका जीवनचरित्र तो विशेषतः पुरुषोको ज्ञात है इस लिये कथनका उपयोग नहीं ॥ और महाराज नलका जीवन यद्यपि पण्डितोको तो विदित है तौ भी सर्व साधारणप्रति ख्यात न होनेसे प्रतिपादनीय है ॥ सो महाभारतमे सविस्तर प्रतिपादन कियाहै और संक्षेपसे यह है कि सत्ययुगमे परमधार्मिक वीरसेननामक राजाके पुत्र लोक प्रख्यात परमधार्मिक रूप गुण ज्ञान शील संयमसुचार वलवीर्य्यावधि महाराज नल हुए । इन्होने अति अल्प आयुमे विविधशस्त्र शास्त्रादि विद्याओमें विचक्षणता लाभकरके प्रचण्ड बाहुबलसे भूमण्डलमें अपने अखण्ड राज्यको जमाया । पश्चात् अनेकविध शुभाचरणोंसे अपनी आयु यापन करतेहुए एक दिन अपने उपवनमे पधारे । वहां विमल

जलाशयके कूलपर कमनीय मूर्ति सुवर्णवर्ण सुशोभित अतिसुन्दरस्वरूप मनोहर हसपक्षी देखे ॥ राजाने रमणीयपक्षी जान उनमेंसे एक स्वसेवकोंद्वारा स्वाधीन किया तो हस पुरुषभाषामे बोला कि हे राजन् ! आपके धनधान्यकी कुछ त्रुटि नहीं मेरा पकडना आपको कौन लोभसे है ॥ आप महाराज हैं यावत् चराचर पुरुप पशु पक्षी आदि आपके स्वयमेव वशवर्ती हैं ॥ परन्तु तौभी यदि आप मेरे को छोडदेगे तो मैं आपको एक अपूर्व पदार्थ प्राप्त कराऊगा ॥ तो राजाने पूछा ऐसी कौन वस्तु है हसने कहा विदर्भनामक देशमें एक कुण्डीकटकनामक ग्राम है वहा भीम नामक राजाकी एक पुत्री है वह कुमारी वर्तमान कालमें चतुर्दश वर्षकी आयुमें स्वरूप गुण स्वभावयुक्त भूमण्डल पर एकही है ॥ यदि आप मेरेको छोडें तो मैं आपको उसकी प्राप्तिके लिये प्रयत्न करूगा पूर्वोक्त प्रतिज्ञापूर्वक हसकी वाणी श्रवणकर महाराजाने उसके छोडनेकी आज्ञा दी हसपक्षी भी छूटकर स्वप्रतिज्ञापालनार्थ सहवर्ति पक्षिवर्गके साथ दमयन्तीके देशको प्राप्त हुआ । वहां भी एक ऐसी वाटिकामे पहुचा कि जिसमें दमयन्ती स्वकीय सखीजनोंके साथ दिनके चतुर्थांश शेपमे प्रतिदिन आतीथी उसदिनभी आई तो मन्दगामनी कामनी कमनीय पक्षी झुडके प्रेक्षणसे आनन्दसागरमें निमग्नहुई ॥ और उनमेंसे पूर्वोक्त एकको प्रयत्नसे पकडकर नानाविध प्रेम करनेलगी ॥ उस वाटिकाविहारमे दैवात् सखीजनोके विभक्त होनेसे हस दमयन्तीसे बोला कि हे राजकुमारी ! मै तेरेको एक प्यारी शिक्षा देता हूं तैने विस्मरण मत करनी हे सुन्दरि ! तू यह निश्चय कर कि इस ससारमें स्त्रीको स्वकीय सर्वस्व प्रियपतिकी अशरण विना और दूसरा कोई मरण नहीं है । इसलिये तेरे लावण्यस्वरूप गुणस्वभावानुरूप मैं एक अनुपमरूप भूपकी चितौनी तेरेको देताहूं कि, तैंने अपने स्वयवरकालमे सम्पूर्ण राजकुमारोंको अनापात दृष्टिसे न देखकर महाराज नलको स्वकीय स्वामी स्वीकार करना ॥ मैं पृथिवीमडलके राजा महाराजो तथा राजकुमारोको जानता हूं परन्तु वर्तमान कालमें यावत् शस्त्र शास्त्रादि विद्याविशारद सौन्दर्य्य सन्दोहसकलित जैसे महाराज नल हैं ऐसे भूमण्डलमे द्वितीय पुरुष नहीं इत्यादि अनेकविध पूर्वोक्त महाराज नलकी प्रशंसा हसाकृतिसे श्रवणकर राजकुमारी दमयन्ती देरतक एकाग्रमन हो पक्षीप्रतिपादित विषयको विचारने लगी ।

शेषमें स्वयमेव मनमें यही सिद्धान्त किया कि रागद्वेषरहित निपट अस्वार्थी सुपर्णवर्ग सिवाय परोपकारके अनुपकारी गिरा कदापि किसीके कर्णगत नहीं कराता ऐसे निश्चय कर हसपक्षीको छोडदिया और उसके कथनानुसार महाराजा नलके गुण कर्म स्वभावको प्रतिदिन एकतान हो स्मरण करनेलगी कभी एकान्तमे निविष्टहो भगवत् प्रार्थनामें यह कहती कि हे सर्वान्तर्यामिन् दैव ! क्या महाराज नलके मुखचन्द्रकी चकोरी होना कदाचित् मैं अनाथनीकेभी नसीबमे होगा । ऐसेही कुछकाल व्यतीत हुआ दमयन्तीके पिता भीमने स्वपुत्रीके स्वयम्बरके अर्थ यावत् राजकुमारोको तथा इन्द्रादि लोकपालोको बुलाया । स्वयम्बर पत्र आगमनप्रयुक्त पिताकी आज्ञासे प्रेरित हुए महाराज नलभी विदर्भदेशमें पधारे । मार्गमें दैवात् महाराज नलको इन्द्र वरुण यम अग्नि इन चारो दिक्पालोका समागम हुआ (इन्द्र) हे सुपुरुष नल ! यदि तुम हमारा कार्य करो तो हम चारों आपको चारप्रकारकी विद्या प्रदान करे ॥ (नल) कौन आपका कार्य्य और कैसी २ विद्या (इन्द्र) तुम हमारी ओरसे दूत होकर राजकुमारी दमयन्तीके पास जाओ यह कार्य्य है (नल) वहा जाकरभी क्या करू (इन्द्र) उसको ऐसा उपदेश करो कि वह सुन्दरी स्वकीय स्वयम्बरमे हम चारोमेंसे किसीएकको पति स्वीकार करे (नल) आप मुझे कौनसी विद्या प्रदान करेंगे (इन्द्र) मैं आपको विश्वनयनागोचर शक्ति देऊंगा जिससे तुम सबको देखो परन्तु तुझे सिवाय दमयन्तीके तुमारी इच्छा विना कोई न देखसके (वरुण) मेरी विद्यासे जलसम्बन्धि यावत् कार्य्य तेरे अनायास पूर्ण होंगे ॥ (यम) मेरी विद्यासे वेगसम्बन्धि गमनागमनादि कार्य्य सकल्प मात्रसे होंगे ॥ (अग्नि) तेजःसम्बन्धि सर्व मेरी विद्यासे होंगे (नल) आप लोगोंका कथन मेरेको स्वीकृत है पर दमयन्ती तो सिवाय मेरे दूसरेको पति स्वीकार न करेगी (इन्द्र) कैसेभी हो तौभी तुम सरल भावसे हमारी ओरसे उपदेश तो करो (नल) तथाऽस्तु आप मुझे विद्या प्रदान करे । राजा नलकी अभ्यर्थनासे चारों देवताओंने चार मत्र प्रदान किये पश्चात् राजा नल राज कुमारीके पास गया परन्तु सिवाय दमयन्ती और उसकी सखियोंके उसे किसीने न देखा । दमयन्ती नलमुख चन्द्रको देख चकोरीसम प्रेमभावसे पूछने लगी आप कौन है (नल) मैं महाराज वीर[illegible]

पुत्र नल हुं (दमयन्ती) चारोंओर जनसरक्षित भवनमें आपका कैसा प्रवेश हुआ (नल) देवकृपासे (द०) कौन देव (न०) इन्द्र अग्नि वरुण यम (द०) उन्होंने आपको क्यों भेजा (न०) उनका यह भाव है कि दमयन्ती हम चारोमेंसे किसी एकको स्वयम्वरमे पति स्वीकार करे (द०) मैं तो हस-पक्षीके उपदेशसे आपको पति कहचुकी (न०) देवोंके होते मैं क्या हू(द०) मेरी प्रतिज्ञा है यदि तुम मेरेको स्वीकार करो तो ठीक अन्यथा मैं विषादिकोंसे अपने प्राण त्यागूगी (न०) देवता विघ्न करैंगे दुःख उठाना पडेगा (द०) तुम देवोंके साथ मिलकर स्वयम्वरमें आओ मैं उनसे प्रार्थनाकर लेऊगी (न०) जैसी आपकी इच्छा इत्यादि दिक्पालोंकी तरफसे राजा नलने दमयन्तीको अनेकविध बोधन किया पर दमयन्तीने एक न मानी और शेषमें कहा हे देवदूत ! यह जन्म तो मैं महाराज नलकी सेवामे अर्पणकी प्रतिज्ञा करचुकी हू जन्मान्तरमें जो दैवकरेगा देखीजावेगी । पूर्वोक्त वाक्योंसे दमयन्तीके भावाश-यको लेकर राजा नल अपने सरलभावसे फिर देवताओंके पास आया और दमयन्तीके सम्पूर्ण वृत्तान्तको निवेदन किया, देवतालोग राजाका सरलभाव देख अतिप्रसन्न हुए और अनेकभावसे राजानलको धन्यवाद दिया पश्चात् सभी मिलकर स्वयम्वरमें आये । इन्द्रादि देवोंने भी राजा नल ही का स्वरूप धारण किया प्रातःकालमे सभामण्डप सिंहासनस्थ राजकुमारनिरीक्षणार्थ राजकुमारी पधारी तो प्रत्येकको दृष्टिगोचर करनेसे एक स्वरूपके पाँच पुरुष प्रतीत हुए । उनको देख राजकुमारी आश्चर्यहो मनमें सोचने लगी पश्चात् निश्चय किया कि यह किसी देवताओंका छल है फिर पूर्वश्रुतशास्त्रसस्कारसे स्मरण कियाकि स्वरूपान्तर धारणसे भी चारचिह्न देवत्वके निर्णायक हैं ॥

(१) देवशरीरपर चन्दनादि लेप नहीं सूखता ।
(२) गलस्थ पुष्पमाला नहीं कुमलाती ।
(३) चरण भूमिस्पर्श नहीं करता ।
(४) नेत्रपलक संस्फुरण नहीं होते ।

इन चारुचारचिह्नोको चारों देवताओंमे देख राजकुमारी बोली हे देवो! आपलोगोंने परमानुग्रह किया जो मुझ दासीको दर्शन दे कृताथ किया, मैं अवश्य आप लोगोंहीके दासभावको स्वीकार करती परन्तु लाचारहो जो इस शरीरसे राजा नलसे प्रतिज्ञा हो चुकी है, आप स्वस्वस्वरूपको धारणकर स्वयम्बर सभाको सुशोभित करै, जो मुझ दासीका विभ्रम दूर हो, राजकुमारीकी ऐसी प्यारी प्रार्थना श्रवण कर देवता अतिप्रसन्न हुए और स्वस्वस्वरूपको धारण किया। राजकुमारी दमयंतीने महाराज नलके गलेमे पुष्पमाला डाल पति स्वीकार किया, स्वयम्बराहूत विदेशी राजकुमारोको भीमराजने यथायोग्य सत्कारपूर्वक स्वस्वदेशमे प्रस्थान कराया पश्चात् यथाशक्ति राज्यसामग्री देकर अतिमानपूर्वक महाराज नलको दमयन्ती समेत स्वदेशमें पहुंचाया, देवेंद्र स्वर्गको जारहे थे मार्गमें द्वापर कलियुग अभिमानी देवता मिले (इन्द्र) आप लोग कहां पधारेंगे, (कलि) राजकुमारी दमयतीके स्वयंवरमे, (इन्द्र) वह तो हो चुका, (कलि) राजकुमारीने किसको स्वीकार किया, (इन्द्र) राजा नलको, (कलि) क्या हमारा प्रतीक्षण किसीने न किया, (इन्द्र) मिति संकेतावधि सबकी प्रतीक्षा की, (कलि) भीम बडा दुष्ट है उसकी पुत्री कदापि सुखी न रहेगी, नल भी महा ढीठ है उसकोभी सुख न होगा, इतनी बातकर देवराज अपने भवन पधारे और कलि द्वापर परस्पर सोचने लगे कि क्या करणीय है तब कलि बोला कि, मैं राजाके शरीरमें प्रवेश कर उसकी विपरीत चेष्टा कर सकता हू, द्वापरने कहा ऊपरकी रचना मैं करसकता हूं, ऐसा विचार दोनों अदृश्य होकर राजा नलके आगे पीछे फिरने लगे, महाराज नल प्रतिक्षण परमधर्मानुरागी तथा पवित्र उत्साही था इस लिये कितना काल कलिको कायप्रवेशका अवसर न मिला शेप एक दिन दामिनीदमक कामिनी दमयन्तीके प्रेमप्रवाहमें निमग्न हो प्रातःकरणीय विधिको विस्मरण कर स्नानसध्यादिसे विमुख हुए महाराज नलको देखकर बलात् कलिकरालने महाराजके शरीरमे आवेश किया, कलिप्रवेश होतेही महाराजाके गुण कर्म स्वभाव विपरीत होगए, कईएक क्षुद्र अधर्मके कार्य्य राजाने निःशक होकर करडाले.

यहां तक कि एक दिन अपने विमातृज पुष्कर नामक भाईको बुलाकर द्यूतभी खेलना आरम्भ किया वह द्यूतविद्यामें अतिप्रवीण था, दमयन्तीके सिवाय उसने महाराजका सर्वस्व जीता एक वस्त्रमात्र शेष रहा तो उसने स्वय राज्याधिकारी होकर कर्मचारियोंद्वारा राजाको देश निकालनेकी आज्ञा दी, उसमें भी यह प्रतिज्ञा कही कि यदि द्वादश वर्षके भीतर आपका कहींभी पता न मिलेगा तो फिर आकर द्यूत खेलियेगा जो हारे सो वनको जावेगा और यदि द्वादश वर्षके भीतर ही मेरेको आपका पता मिलगया कि आप अमुक स्थानमें हैं तो फिर उस कालसे द्वादश वर्ष गिनकर वनवास लेना होगा, ऐसेही फिर पता मिला तो फिरभी वैसेही होगा, ऐसी विपुल प्रतिज्ञाको सुकुमार महाराज नलने लाचार होकर स्वीकृत किया और अपनी प्राणप्यारी राजकुमारी दमयन्तीको साथ लिये निर्जन वनमें पधारे, महाराज नल दमयन्तीकी इस दारुणी वनदशाको देख सुनकर कौन पाषाणहृदय है जो द्रवीभूत न हो ! समग्र देशके ग्राम २ के लोग एकदम विमल नलनीरधरके अभावसे व्याकुल हो मछलीवत् तडफडाने लगे, प्रतिक्षण नलमुखचन्द्रचादनीचाहितचकोर पुरुषोंको तो मानों अनुदर्या पूर्ण चन्द्र बलात् एकदम अस्त हुआ हाय २ कर पुकार हारे। परन्तु कोई उपाय महाराजनलके ग्राममात्र निवासका न मिला शेष महाराज नलभी प्यारी पत्नीको साथ ले ग्रामसे निकल चले । महाराज नल नीरप्रेमप्रवाहाकर्षित अनेको स्त्रीपुरुष हाथ बाधे साथ पीछे २ चलरहेहैं, महाराजभी स्नेहपूरित स्वान्त होकर नयननसे नीर टेर २ वेर २ प्यारी वाणी कह ग्रामजनोंको फेरते हैं ॥

दोहा।

संगी साथन को धरे, जो भावी प्रतिकूल ॥
सुखसम्पत्की बेलिको, करत हेल निर्मूल ॥ १ ॥

---

१ यह पुरुष एक शूद्री दासीके पेटसे राजा वीरसेनके वीर्यका था, रजवाडोंमें जैसे गोले, भाई वेटे कहलाते हैं वैसा था । २ प्रियपाठक ! द्यूतादि व्यसन राजा महाराजाओंको धूरमें मिला देते हैं तो इतर जीवोंकी कौन कहै ।

इस प्रकार सांसारिक सर्व स्नेहको तोडकर राज्यवैभवको छोड दोनो दम्पती ऐसे गह्वर वनकी ओर चले कि जिसमे सिहव्याघ्रादि जीवोसे अतिरिक्त मार्ग मिलना भी कठिन होने लगा, पुनःवनवासकी भीतिसे द्वादश वर्षतक घरप्रवेश-आशासे निराश होकर फल फूल भोजनसे वनहीमे कालचक्रको व्यतीत करना स्वीकार किया, जहां तहा चलनेसे अपादत्राण पाउँसे कॉटे पोय जातेहैं तो रोय२ बैठकर दोनो दपती एकदूसरेके निकालने लगजाते हैं, इतनेपर भी कलिकुटिलको दया न हुई प्रत्युत सोचा कि हमारे इतने प्रयत्नसेभी यह दोनों दपती परस्पर वियुक्त न हुए, द्वापरको बोधन कर वैसे ही घटनाका प्रारम्भ किया कि जिससे यह दोनों एकत्र न रहसके, द्वापर शीघ्रही कलिप्रेरणासे कतिपय स्वर्णपर्ण-मय कपोताकार बनकर निर्जन वनमे नलदमयन्तीके आगे पीछे उडने लगे नलने शोचा कि यदि यह पक्षी पकडे जावे तो इसका मास भक्षणके काम आवे और कुछ स्वर्णभी मिले ऐसा मनमे विचार नलने अपना वस्त्र उनके ऊपर डाला वह छलपक्षी राजाका वस्त्र ले उडे पश्चात् राजा निर्जन वनमें नग्न हो विचरने लगा, कभी तरुत्वचाको कटिमे लपेट दिन यापन करता, रात्रिको एकही वस्त्रमे दोनो दपती क्लेशसे निर्वाह करते, पौषादिमासोमे मन्द२ वर्षायुत समीरकी पीर सुकुमार गात्रोको निपट आतुर करती हुई रोमाचके विना क्षणभरभी टिकने नहीं देती, हा शोक ! शोचिये पण्डितजी कहा महाराज नल का चक्रवर्तीराज्यसुख और कहां यह विपत्ति मेरा तो इस दारुणी दशाको स्मरण कर हृदय कपायमान होजाता है एकदम चक्रवर्ती राज्यका त्याग उसपरभी वनवास, उसपरभी अन्न वस्त्र विनाही हिमऋतुमे वर्षावायुव्याकुल, तरुतल निवास कर कौन साहसी पुरुष जीवन आशासे हाथ नहीं धोवता, ऐसे ही वनमे कितनेही काल दुःख उठाया तो वनमे चलते २ एक जगहपर मार्ग आया तो नलने दमयन्तीसे कहा हे अनवद्यागि ! यह मार्ग तेरे पिताके ग्रामको जाताहै, (द०)क्या महाराज आप मैं दासीको छोडा चाहते हो, (न०) नहीं२ हे प्रिये ! मैंने स्वाभाविक वार्ता करी है, (द०) महाराज ! यदि आपकी इच्छा हों तो दोनों मेरे पिताके गृह चले वह राज्यभी आपहीका है, (न०) हे प्रिये ! विपत्तिकालमें सम्बन्धियोके घर जाना अच्छा नहीं ऐसे वार्तालापसे

मनोज्ञा दमयन्ती जानगई कि, महाराज मेरे को छोडा चाहते हैं, जैसी दैवकी गति, दिनभर जहा तहा चलते फिरते फल फूल खातेहुए रात्रिको एक जगलके शून्य मन्दिरमें पहुचे। सुकुमारी दमयन्ती दिनभर चलती २ श्रान्ताक्रान्त हो गाढनिद्रामें विराजी। अर्धरात्रिमें राजाने अर्धवस्त्र लेकर प्राणप्यारी दमयन्तीको वहाही छोडना चाहा तो वस्त्र काटनेके लिये उपाय शोचताहीथा जो एक नग्न खड्ग अकस्मात् दृष्टिपडा, राजाने खड्ग उठाकर आधा वस्त्र काटलिया और अर्द्धांगीको छोड कर चला, थोडी दूर चला तो चकोराक्षी प्राणप्यारी नारीप्रेमाकर्षित हुआ, फिर पीछे आया, फिर चला फिर पीछे आया ऐसे ही चार पांच बेर किया परन्तु पश्चात् विचारसे मनको पाषाणवत् अद्रवीभूत कर एक बेर चला और पीछे न आया पश्चात् प्रभात-कालमे दमयन्ती विनिद्रित हो प्रियपतिकी वियोगाग्निमे स्वय दग्ध होने लगी हा नाथ ! २ इत्यादि अनेक वाक्य करुणातुरभावसे नेत्रनीरधाराके साथही पुकारे परन्तु वहां दूसरा है ही कौन जिसको सुनकर दया आवे, ऐसेही वनमें इतस्ततः चलती सुदरीको एक भयानक अजगर सर्पने ग्रसलिया परन्तु महाराज नलवियोगदावानलमें वह दुःख कुछभी न प्रतीत हुआ, पश्चात् सुदरीके मधुरस्वर रोदन शब्दको कर्णगोचर कर एक वनचारी व्याधने आकर अजगरको विना प्राणकर राजकुमारीका त्राण किया, शेषमे मनोहर रूप देख कामातुर हो पूछने लगा कि हे सुन्दरि ! तू कौन है? और यहां कैसे आई? दमयन्तीने उसकी विपरीत चित्तचेष्टाको देखकर उसास लेकर कहा, हे दुष्टव्याध ! यदि सत्यप्रेमसे मेरेको एक प्रियपतिही शरण है तो परमेश्वर तेरे अकस्मात् अभी प्राण हरण करे, राजकुमारीके ऐसे कहते ही व्याध भूमिपर गिरकर मरगया और वह अनेक प्रकारसे विलाप करती अबुद्धवत् सिंह, व्याघ्र, वन, पर्वतोंसे प्रार्थनापूर्वक स्वपतिवृत्तान्तको पूछती हुई क्या देखती है कि एक सुन्दर ऋषियोंका आश्रम है वहां जाकरभी अपना हाल कहकर रोने लगी, ऋषियोंने उसे अति सतोष दिया और कहा कि हे सुन्दरि ! थोडाकाल धैर्य्य धर, तू अपने प्रियपतिके साथ असीम सुखको अनुभव करेगी इत्यादि अनेक उपदेशोंसे आश्वासित हो क्या देखती

है कि वहां विना गह्वर वनके कुछभी नहीं ऐसा आश्चर्य्य देखकर फिर निराश हो आगेको चली तो सध्यासमय क्या देखती है कि, एक पुरुषोंका समुदाय उसी वनमे उतरा है, व्याकुलमना रोतीहुई उनके समीप चलीगई उन्होंने पूछा तो दमयन्तीने अपनी सारी कथा सुनाई, दमयन्तीने पूॅछा तुम कौन हो? तो उन्होने कहा हम चेदिराजके पुरुष हैं, देश देशान्तरसे अनेक प्रकारकी व्यापारकी वस्तु लाकर चेदिराजके नगरमें समर्पण करते हैं, तो दमयन्ती स्वकीय प्रियपतिकी अन्वेषण लालसासे उन वणिक्समुदायके साथही चली, द्वितीय दिवसके मार्गपर एक निर्मल नीर नदीको देखकर यात्रीव्यूहने उसीके कूलपर रात्रिका यापन करना अनुकूल शोचा, दमयन्ती भी थोडी दूर पर किनारे होकर पड़रही अर्द्धरात्रि हुई तो कतिपय जगली कुजर पानी पीनेको आये वे व्यापारियोंके हस्ती उष्ट्रादिकोके अवलोकनसे अत्यन्त कोलाहल करनेलगे उससे व्यापारियोको अत्यन्त हानि तथा भय हुआ शेषमें कई एक प्रयत्नोंसे जगली जीवोंको डराकर भगाया तो सभी मिल बैठकर शोचने लगे कि यह कौन अरिष्टका फल है, किसीने कहा कि, किसी देवका प्रकोप है, दूसरा बोला कि, ग्रहोंकी विपरीत दशा है, तीसरेने कहा कुशकुनोका यह फल है, चौथेने कहा कि, विकराल रूपवती उन्मत्तदर्शना नारी जो हमारे साथ मिली है वह अवश्य कोई राक्षसी यक्षिणी पिशाची है, यह सब उसी पापिनीका पापकर्म है उसपर कईएकने सम्मति दी और कहा कि, वह नीचनी कहीं दीखे तो अभी मारडालें, उन अविचारकुशलोंकी कुसम्मतिको सुनकर दमयन्ती औरभी दुःखपीडित हुई, और उनका सग छोड जहां तहां पतिरतिरगमे रटने लगी, अतिगहर कानन में, उच्चस्वरसे 'रो,रो' पुकारती, हे विधे! कौन पाप का फल मैं अनाथनीको भोगना पडा है, हे दैव! इस दारुणी दशाका शेष भी है कि, यही मेरा शेष करेगी, हा प्राणनाथ! यह पापिनी दीना दमयन्ती तेरे मुखपंकजकी दर्शनाशासे अभीतक निराश नहीं हुई इत्यादि अनेक करुणापूरित शब्दोंसे पुकारतीहुई दमयन्तीको मार्ग चलते वेदवेत्ता धार्मिक कतिपय ब्राह्मण मिले वह उनके सगसे चेदिराजके पुरमें प्राप्त हुई, समीप जानेसे अर्द्धवस्त्रवेष्टित स्त्रीको देख उन्मत्ता जान ग्रामबालक पीछे लगे और भी क्लेश देनेलगे, ऐसी घटनाको राजमाताने

देखा तो उसको दासी द्वारा समीप बुलाकर आश्वासन दिया। राजमाताके पूछ-नेसे दमयन्तीने अपने नाम कुल गोत्र विना सारी वेदना सुनाई । राजमाताने अतिप्रेमसे कहा, हे सुभगे ! तू हमारी बेटी सुनन्दाके पास प्रेमसे रहाकर और जो कुछ हो थोडा बहुत गृहकार्य्यभी कराकरना, (दमयन्ती) हे मात: ! तीन कामको छोड जो कहोगी सो करसकती हूँ. (राजमाता) हे सुचारे ! वह कौन तीन कार्य्य हैं जो तेरेको अभीष्ट नहीं, (दमयन्ती) हे मातः ! मैं किसी का उच्छिष्ट भोजन नहीं करूगी (१) और किसीकी चरणसेवा (मूठियाँ) नहीं करूगी (२) और द्वितीयपुरुषके साथ भाषणभी नहीं करूंगी (३) यदि कोई पुरुष मोहवश होकर मेरा अभिलाप करेगा तो वह अवश्य दण्डनीय होगा, राजमाताने पूर्वोक्त तीनों बातोको स्वीकारकर दमयन्तीको आनन्दपूर्वक गृहनिवास दिया और उधर राजा नलभी वनमे विचरते हुए क्या देखते हैं कि एक गह्वर वन अग्निसे दग्ध होरहा है और उसके मध्यमें एक अग्निपीडित प्राणी की पुकारध्वनि सुनाई पडती है, राजाने उसके समीप जाकर दयापूर्वक उसको अग्निदाहसे बचाना चाहा तो आगे जाकर क्या देखता है कि, एक कर्कोट नामक नाग दग्ध होरहा है, सर्पको देखकर राजा रक्षासे उपराम हुआ तो सर्प बोला कि, हे राजन् ! भयभीत मत हो मै नागराजा हूँ और नारदमुनिकी अव-ज्ञासे मेरी यह जडीभूत दशा हुई है, आप मेरेको निःसन्देह होकर अग्निसे नि-कालो मैं आपका उपकार स्मरण रक्खूगा और आपके ऊपरभी कुछ उपकार करूगा, राजाने उसे उठाकर अग्निबाहर छोडना चाहा तो नाग बोला दश कदम आगे छोडिये राजाने वैसेही स्वीकारकर किया तो उसने शेषमे राजाको दंश मारा दशते ही राजाका सारा शरीर क्षणभरमें श्याह होगया, राजाने कहा क्या यही उपकार करनेको कहतेथे ? नागने कहा, हे राजन् ! इस उपकारको तुम साधारण मत समझो इससे दूसरे किसी भयानकजीवका दश तेरेको स्पर्श न करेगा और यावत् आयु तेरेको कोई दुःख न होगा, शत्रुगण जीत न सकेगा और शरीरवर्ण विपरीत होनेसे तेरे को कोई पहँचान भी न सकेगा इत्यादि अनेक गुणयुक्त उपदेशोंसे नागने राजाका आश्वासन किया और दो वस्त्र दिये कहा कि, हे राजन् ! जब तुझे अपने यथावत् स्वरूप धारणकी इच्छाहो तो मेरा स्मरणकर

दोनो वस्त्र पहर लेने और अब तुम अयोध्यामें इक्ष्वाकुकुलोत्पन्न राजा ऋतुपर्णके पास जाकर द्यूतविद्याका अभ्यासकरो वह द्यूतविद्यामें अतिप्रवीण है और उसको अश्वविद्यामें प्रेम है जो तुमको यथावत् आतीहै, यह कहकर सर्प तिरोधान हुआ और राजा नल अयोध्यामें प्राप्त हो राजा ऋतुपर्णके अश्ववाही लोगोंमे भृत्य हुआ, राजा ऋतुपर्णको अश्वकी शीघ्रगतिमे प्रेम था, नलभी उनके अश्वोको दिनभर शीघ्रगतिका अभ्यास करावे परन्तु रात्रिको एकान्तमें बैठ प्राणप्यारी राजकुमारी दमयन्तीको स्मरण करता हुआ सदैव सायकाल यही श्लोक पढ़ाकरै ।

श्लोक ।

क्व नु सा क्षुत्पिपासार्ता श्रान्ता शेते तपस्विनी ।
स्मरन्ती तस्य मन्दस्य कं वा साद्योपतिष्ठति॥ १०॥

मा० वनप० अ० ६७ ॥

अर्थ—तिस मन्दपतिको स्मरण करती हुई क्षुधा पिपासासे पीडित तपस्विनी स्त्री, हे दैव ! आज कौन स्थलमें स्थित है । इत्यादि करुणापूरित वाणी सुनकर द्वितीयसेवकोंने पूछा, हे पुरुष ! तुम किसकी स्त्रीको स्मरण करा करते हो, तो नलने और कुछ न कहकर यही कहा कि, एक मन्दप्रज्ञ पुरुषकी स्त्रीको मैं प्रतिदिन स्मरण किया करता हू, ऐसा प्रत्युत्तर सुन द्वितीय सेवकने नलको विक्षिप्त समझा और उससे वार्तालापसे उपराम हुए, तथा निषधाधिपतिनेभी प्रतिक्षण प्रेमसे दमयन्तीको स्मरण करतेहुए राजा ऋतुपर्णके गृहमे कितना काल अज्ञात वासकिया, उधर दमयंतीके पिता राजा भीमने पुत्री जामातृकी कुदशाको श्रवणकर तिनके अन्वेषणार्थ कई एक ब्राह्मण नियत किये, उनसे यह प्रतिज्ञा की कि, साधारण दक्षिणा तो हम सबको तुल्यही देगे परन्तु जो महाराज नल दमयन्तीको ग्राममें लेआवे वा अवलोकन कर आवे कि, अमुक स्थानमें हैं तो उस श्रमी ब्राह्मणको हम एक ग्राम तथा एक सहस्र गौ औरभी पारितोषिक देंगे, इसी लोभसे अनेक ब्राह्मण कितनेही काल वन पर्वतोंमें तथा ग्रामोंमें खोजते फिरे परतु एक सुदेवनामक ब्राह्मण देखता २ दैवात् चेदिराजके नगरमें पहुँचा, वहां

राजमहलोमे राजकुमारी दमयन्तीको देखा और उससे वार्तालाप करनेलगा, राजमाताने ब्राह्मणसे पूछा तुम कौन हो और इस दासीको कैसे जानतेहो ? सुदेव नामक ब्राह्मणने सब वृत्तान्त राजमाताको निवेदन किया तो राजमाता दमयन्तीको अंकमे लेकर रोने लगी और शेषमे दमयन्तीको राजमाताने कहा, हे भामिनि! तू मेरी भगिनीकी पुत्री है तेरी माता और मैं दोनों दशार्णाधिपति (सुदामन्) नामक राजाकी बेटी हैं तेरी माताको पिताजीने भीमराजको दिया और मुझको महाराज वीरबाहुको विवाहा और जब तू उत्पन्न हुई थी तब मैंने तेरेको अपने पिताके गृहमे भगिनीकी गोदीमें देखाभी था, फिर राजमाताने सुदेवसे कहा हे विप्र ! तुमने इस कृशतनुयुक्ताको कैसे पहचाना? ब्राह्मणने कहा, हे राजमातः! इसके मस्तकके मध्यभागमें जो एक काला तिल है वही मेरेको राजकुमारीका सूचक है, ऐसी सुदेव वाणीको सुनकर सुनन्दा तथा राजमाता दोनों मा बेटी मिलकर दमयन्तीको स्नान कराय मस्तकचिह्नको देख औरभी प्रेमपूरित हुई। राजमाताने दमयन्तीसे कहा, हे सुनीते ! अब तेरेको यहाही निवास करना उचित है अन्यथा मेरी हानि होगी दमयन्तीने कहा, हे मातः! मेरेको तेरे तथा पिताके गृहमे किंचित्भी भेद भावना नहीं परन्तु मेरे माता पिताके चित्तमे तथा इन्द्र-सेना—इन्द्रसेन् नामक बेटी बेटेके मनमें बिना मेरे गये कदापि संतोष न होगा दमयन्तीकी ऐसी दृढ मनोभावना विचारकर राजमाताने उसी कालमें सुन्दर शीघ्रवाही यान मँगवाकर सुदेवब्राह्मणके समेत दमयन्तीको पिताके आगारमें पहुँचाया माता पिता प्यारी पुत्री दमयन्तीको देखकर अपूर्व सुखको प्राप्तहुए इन्द्रसेना—इन्द्रसेन नामक बेटी बेटे पर तो मानों मातृसर्वस्व हरण-हारे दुर्दैवने पुनः कृपादृष्टि करी माताको देखकर दोनों भगिनी भ्राता युगपत् आय लपटे, प्यारी माताने दोनों सुकुमार पुत्रोको गोदमें लेकर छातीसे लगा मुखचुम्बन किया, नर, नारी, दासी, दास, सखीसमुदाय, देश, देवी दमय-न्तीको देखकर सभी प्रसन्न हुए, रात्रि हुई तो शयन समय दमयन्तीने मातासे कहा कि, हे मातः ! मेरा जीवन तो सभी होगा जो महाराज नल मिलजावें अन्यथा मैं शोचती हू कि, मेरा शीघ्रही मृत्युशय्यापर शयन होगा. माताने ऐसी निष्ठुर वाणीको श्रवणकर पुत्रीको आश्वासन दिया और प्रातःकाल यही

वृत्तान्त स्वपतिके आगे निवेदन किया, महाराज भीमने-उसी क्षण ब्राह्मणोंको बुलाकर पूर्वोक्त प्रकारसे महाराज नलके अन्वेषणकी आज्ञा दी, गमनकालमे ब्राह्मणोंको दमयन्तीने कहा कि, हे देवाः ! जनसमुदायमें क्षीणाग विरूप महाराजकी आप कदापि पहचान नहीं करसकोगे इसलिये मैं एक श्लोक आप लोगोंको कहतीहू उसको आप जहा तहां बोलो जो सुनकर उत्तरमें स्वाभाविक पूछने लगे वह निश्चय महाराज नलही होगा वह श्लोक यह है—

"सा वै यथा त्वया दृष्टा तथाऽस्ते त्वत्प्रतीक्षिणी ॥
दह्यमाना भृशं बाला वस्त्रार्धेनाभिसंवृता ॥ ३८ ॥"

भा० वनप० अ० ६९ ॥

(अर्थ) हे राजन् ! वह राजकुमारी जैसे तुमने पूर्व देखी थी वैसेही अब भी शोकातुरवस्त्रको धारण किये तेरी प्रतीक्षा कररही है इत्यादि और भी वाक्य यथामति कहने, ऐसी दमयन्तीकी आज्ञाको लेकर अनेक द्विज देश देशान्तरोमे गये परन्तु एक पर्णाद नामक ब्राह्मण राजा ऋतुपर्णकी राजधानी अयोध्यामें प्राप्तहुआ राजसभामें जाकर राजाको आशीर्वादके पश्चात् दमयन्ती-प्रोक्त श्लोककोभी बोला, राजासे लेकर किसीनेभी उस श्लोकका भाव न पूछा, परन्तु एक बाहुक नामक रथवाही उश्वास लेकर सभासे किनारे विप्रको बुलाया और कहनेलगा कि, द्विज ! सच है कुलीन स्त्रियोंका यही धर्म है, वही मन्द भागी मूर्ख है जिसने ऐसी प्राणप्यारी स्त्रीको छोड दिया है, ब्राह्मणने पूछा आप कौन हो तो राजा नलने कहा मैं राजा ऋतुपर्णका शीघ्रवाही रथवाही हूं, दमयन्तीके कथनानुसार ब्राह्मणने निश्चय किया कि यह सूतवेषधारी राजा नल ही है, शीघ्र आकर दमयन्तीको निवेदन किया तो दमयन्तीने विप्रको पारितोषिक देकर मातासे कहा, हे मातः ! महाराजका पता तो मिला, पर उनके यहा आनेका उपाय करना चाहिये, माताने कहा, हे पुत्रि ! जैसे तू कहै वैसे करें, दमयन्तीने कहा जो निपुण ब्राह्मण मेरेको ग्राममें लाया है उसीको भेजना चाहिए पर पिताजीकी यह वार्ता ज्ञात न हो तो ठीक है, माताने वैसे

ही स्वीकार किया, उसीकाल सुदेव द्विजको बुलाकर सारा वृत्तान्त कहा और दमयन्तीने ब्राह्मणसे यह कहा कि तुम राजा ऋतुपर्णसे कहना जो दमयन्ती महाराज नलके न मिलनेसे पुन: स्वयम्वर करेगी; परन्तु स्वयम्वरकी मितिमें एक दिन मात्रही शेष है, सुदेव ब्राह्मणने अयोध्या जाकर दमयन्ती प्रोक्त वृत्तान्तको राजा ऋतुपर्णसे यथावत् निवेदन किया राजाने स्वयम्वरमिति सुनकर स्वय शिर फेरा और कहा कि स्वयम्वरकाल अति समीप है मार्ग दूर है नहीं पहुँच सकेंगे, तत् पश्चात् दारुकको बुलाकर प्रकृत वृत्तान्तकी सूचना दी तो दारुकने स्वयम्वर समयपर पहुँचानेकी प्रतिज्ञा तो करी परन्तु दमयन्तीके स्वयवरको सुनकर अत्यन्त शोकातुर हुआ और राजाकी आज्ञासे उसीकालमे वेगशाली अश्वयुक्त यानको उपस्थित किया, राजाके रथोपविष्ट होनेके पश्चात् दारुकने ऐसे वेगसे रथको चलाया जो राजा अश्वविद्याको देखकर आश्चर्य्य युक्त हुआ, मार्गमे एक हाथका रुमाल गिरनेसे राजाने रथ रोकनेकी आज्ञा दी तो देखा कि रुमाल चार कोसपर पीछे रहगया है परन्तु राजा दारुककी अश्वविद्यासे अति प्रसन्न होकर स्वयमेव कहने लगा, कि हे दारुक ! तुम्हारी विमल विद्या तो हमने देखी परन्तु हमभी तेरे को एक अद्भुत गणितविद्या दिखलातेहैं देखिए इस वृक्षके भूमिपतित फल पत्र एकोत्तरशतहैं और इसकी दो वृद्धशाखामें पचकोटिपत्र हैं। और दो सहस्र पञ्चनवति (२०९५) दोनों शाखामे फल हैं। दारुकने पूछा यह आप दृष्टिमात्रसे कैसे गणना कर लेतेहैं, तो राजाने कहा कि मन्त्रानुगृहीत द्यूतविद्याका देवता मेरे वशीभूत है उसीकी कृपासे मेरेमें दृष्टिमात्रसे गणनाशक्ति विशद है, दारुकने पत्रपुष्पादि अनेकधा गिन २ कर राजाकी परीक्षा की, परन्तु राजाने विमल विद्यासे एकवेरभी विपरीत सख्या मुखसे न निकाली, दारुक देखकर आश्चर्य्य हुआ और कहने लगा कि, क्या यह विद्या आप इस दासकोभी सिखलासकते हैं या नहीं, राजाने कहा हा परन्तु आपभी मेरेको अश्वविद्याका शिक्षित करें तो अति आनन्द हो, दारुकने भी स्वीकार किया, राजा ऋतुपर्णने दारुकको द्यूतविद्यामत्रका उपदेश किया और दारुकने राजाको अश्वविद्याका मत्रोपदेश किया। द्यूतविद्याके मत्रोपदेश होतेही कलिकराळनेभी

दारुकरूप महाराज नलके शरीरसे आसन उठालिया, दारुकने पुनः रथको चलाया और शीघ्रही महाराज भीमकी राजधानी कुण्डिन ग्राममे आन पहुँचे, राजा भीमने यथोचित सन्मान कर निवासस्थान दिया, कुशल मंगल पूछकर आगमन प्रयोजन पूछा तो परम विज्ञ महाराज ऋतुपर्णने स्वयंवररचनाका अभाव देखकर यही कहा कि सिवाय आपके दर्शनके मुख्य प्रयोजन कोई नहीं है। परन्तु राजा ऋतुपर्ण मनमे जानगया कि यह अवश्य किसी स्त्रीका चरित्र है, परस्पर शिष्टाचारके अनन्तर राजा ऋतुपर्ण अपने आसनपर निविष्ट हुआ और दारुकभी वाजिशालामें अश्वबन्धनानन्तर शोकातुरसा होकर स्थंडिलोपविष्ट हुआ, राजकुमारी दमयन्तीने भी राजमन्दिरपरसे दारुकको देखकर अंगप्रत्यंगतः महाराज नलको पहचानलिया. परन्तु वर्णविभ्रमसे यथावत् निश्चय न हुआ तो उसीकालमे केशिनीनामक दासीको बुलाकर दारुकके समीप भेजा, कुशला दासी दारुकसे वार्तालापकर यथासम्भव निश्चयकर आई कि यही राजा नल है। दमयन्तीने फिर दासीको भेजकर अपने अश्वपालक सेवकोको यह आज्ञाकरी कि तुम लोगोने इस दारुककी सर्वप्रकार शुश्रूषा करनी परन्तु जहां यह अपनी रोटी बनावे वहां जल अग्नि न जानेदेना और निवातस्थानमें रोटी बनानेको जगह देनी, सेवकोंने वैसेही आज्ञा पालन करी परन्तु परम प्रभावशाली दारुकके संकल्पमात्रसे घट जलसे पूरित हुये, काष्ठमें दाहशक्तिभी दृष्टिमात्रसे उच्चशिखायुक्त निकली, वायु निवात स्थानमेभी यथा योग्य सहकारी हुआ, पूर्वोक्त देवमंत्रप्रभावसे अज्ञात अश्वपाललोगोको तो यह विचित्र रचना देखकर आश्चर्य्य हुआ और दारुकसे औरभी प्रेम करनेलगे. राजकुमारी दमयन्तीने प्रेमपरीक्षणार्थ अपने बेटी बेटेको साथदेकर दासीको फिर दारुकके समीप भेजा तो परम मनोहर जोरीको देखकर दारुकके अश्रुपात होनेलगे। दासीने दारुकसे अश्रुपातका कारण पूछा तो दारुकने कहा, हे भामिनि ! हमारे भी ऐसेही बच्चे थे, इसी वृत्तान्तको दासीने दमयन्तीसे कहा और उसने अपनी मातासे कहकर दारुकको राजमन्दिरमें बुलाया। प्यारी राजकुमारी दमयन्तीको देखकर

---

१ जो पुरुष जितना काल जिस विद्यामें अशिक्षित है उस पुरुषमें उतना काल उस विद्याका अभावप्रयुक्त कलिप्रवेशही समझना चाहिये विद्वानोंसे कलिभी भय करता है ॥

दारुकरूप महाराज नलके नेत्रोंसे स्नेहसूचक नीर निकलनेलगा। राजकुमारी दमयन्तीनेभी कई एक विलक्षण चिह्नचेष्टाओंसे स्वपति पहचानकर पादप्रणाम किया और पश्चात् गले मिल रोने लगी, महाराजने कतिपय उपदेशयुक्त वचनोंसे धैर्य्य दिया और प्रेमसे पास विठलाकर कुशल मगल पूछा, दमयन्तीने यथावत् सभी सुनाकर महाराजसे शरीरश्यामका कारण पूछा तो महाराजने पूर्वोक्त कर्कोटनामक नागके वृत्तान्तको सुनाकर उसके दिये वस्त्रोको धारणकर स्वशरीरको यथावत् कान्तिमान वनाय दमयन्तीको परमोत्साहित किया, नल दमयन्तीके मिलापसे महाराज भीमकोभी परमानन्द हुआ और राजा ऋतुपर्णभी कतिपय दिन राजा नलको द्यूत विद्याका अभ्यास कराकर तथा उससे अश्वविद्याका अभ्यास स्वय करके शेषमे महाराजसे क्षमा माँगकर अपनी राजधानी अयोध्यामे पधारे, तत्पश्चात् नल महाराजनेभी महाराज भीमसे स्वदेश गमनार्थ आज्ञा माँगी तो महाराजभीमने उचित जान यथोचित सेनासामग्री देकर दमयन्तीसमेत मानपूर्वक जामातृको स्वदेशमें पहुँचाया, महाराज नलने स्वनगरसमीप जाकर अपने पुष्कर भ्राताको बोधन किया कि युद्धकरो वा द्यूत खेलो, हमारे पास इसकालमें उभयार्थ साधिका सामग्री सिद्ध है, पुष्करने सग्रामसे उपराम होकर द्यूतदाउसे फिर राजा नलका सर्वस्वापहरण करनाचाहा, परन्तु सुशिक्षित महाराज नलने उसकी एक भी न चलने देकर प्रत्युत उसका सर्वस्व जीत लिया, पश्चात् पुष्कर स्वाधीन हुआ तो महाराजने दयाआर्द्र होकर यह कहा कि, हे भाई ! तुमने तो हमारेको द्यूतमे जीतकर देशसे निकाला था, परन्तु हमारेसे तो तेरेको ऐसा निष्ठुर वाक्य नहीं कहा जासकता, हम तो इतनेपर भी और न कुछ कहकर यही कहते हैं कि तुम अपने ग्राममे जाकर आनन्दसे बसो । इस प्रकार महाराजकी आज्ञा पाकर पुष्कर अपने ग्राममे जा बसा और महाराजभी अपनी महिषी (पटरानी) दमयन्ती देवीके साथ आनन्दपूर्वक राज्यऐश्वर्यको भोगने लगे, सो इस प्रकार तो पडितजी महाराज भावीने महाराज नलको नीचा दिखलाया ऐसे ही महाराज युधिष्ठिरके भावीवेगका वृत्तान्त है सो कल्ह सुनाओंगा यह कहतेही सध्या होगई, राजकुमार उठा सभा विसर्जन हुई ॥

इति द्वितीय विश्राम ॥ २ ॥

तृतीय विश्राम ३.

इसीतौर महाराज युधिष्ठिरके जीवन कहनेवाले सविस्तर महाभारतका सक्षेप यह है कि, एक मेनका अप्सराके पेटसे विश्वामित्र ऋषिके वीर्य्यसे शकुन्तला पैदा हुई इस शकुन्तलाके पेटसे राजा दुष्यन्तके वीर्य्यसे भरतनामक राजा हुआ इसीकी वशपरम्परामे राजा प्रतीप हुआ। प्रतीप राजाके पुत्र शन्तनुनामक राजाके गृहमें गगानामिका स्त्रीने राजासे यह प्रतिज्ञा करी कि जो मेरेसे सन्तति हो सो गगानदीमे प्रवाही जावे राजाने इस वार्ताको स्वीकार किया, राजा शन्तनुके वीर्यसे गगाके गर्भसे सात पुत्र हुये सो राजाने पूर्वोक्त प्रतिज्ञासे गंगानदीमें प्रवाह किये, पश्चात् अष्टमपुत्र भीष्मजी हुए तो राजाने पुत्रकी प्रतापशाली प्रतिमा देखकर विचारा कि यदि यह मनोहर मूर्ति भी गगामें डाली जायगी तो शासकाभावप्रयुक्त निःसंदेह राज्य नष्ट होगा, इसी वार्तामें मन्त्रीलोगोंसे समति लेकर राजाने गगा स्त्रीसे भीष्म पुत्रको मांग लिया स्त्रीने पुत्रको दे तो दिया परन्तु राजाको प्रतिज्ञापालक न समझकर क्रोधसे गगानदीके प्रवाहमे प्रविष्ट होकर आत्मघात किया इस सुशीला प्राणप्यारी स्त्रीका राजाको कई दिन अत्यन्त शोक रहा परन्तु पश्चात् अस्त्रशस्त्रादि विविधविद्याविशारद कला वृद्धचन्द्रवत् प्रतिदिन पुष्ट पुत्रको देखकर प्रसन्न भी होने लगा, एकदिन प्रसन्न हो कईएक कर्मचारी लोगोंको साथ लेकर आखेट (शिकार) खेलने गया तो नदीकूलपर एक केवटकी कमनीयकांति कुमारी योजनगन्धा नामिकाके अवलोकनसे व्यामोहित हुआ, राजाने केवटको बुलाकर लडकी योजनगन्धा पर स्वकीय चित्तचञ्चलता सूचन करी, परन्तु कुशल केवटने राजासे कहा कि, यदि इसके गर्भजपुत्रको आप राज्यतिलक देना स्वीकार करे तो मैं प्रसन्नतापूर्वक पुत्रीप्रदान करता हू, यह वार्ता धार्मिक राजाने अनुचित जानकर अस्वीकार करी परन्तु गृहाविष्ट होकर कई दिन व्यग्रमनसे प्रतिक्षण उस प्रेममयी मनोहर मूर्ति योजनगंधाको स्मरण करने

---

१ क्या जाने गङ्गाकी स्वकीयापत्यमें क्यों द्वेषबुद्धि थी।

लगा, योजनगन्धाकी जन्मकथा यह है कि, एक पराशर नामक ऋषि अपनी नवयुवती स्त्रीको छोडकर तपस्यार्थ वनको पधारा और अपनी स्त्रीको यह कह गया कि ऋतुस्नानानन्तर शुक (तोता) द्वारा मेरेको बोधन करना मैं वीर्य्य भेजूगा जलमें मिलाकर पीना तो गर्भस्थित होगा । पतिप्रिया स्त्रीने स्वामीकी आज्ञानुसार समयपर वैसे ही शुकपक्षी प्रेषण किया, ऋषिने स्ववीर्य्यको पत्रपुट (दोना) मे स्थापन कर सुशिक्षित शुकको समपण किया पक्षी वीर्य्ययुक्त पत्रपुट लेकर चला परन्तु मार्गमे तृषातुर हो नदी-कूलपर पत्रपुट रख पानी पीने लगा तो अर्धभाग वीर्य्यका नदीमें गिर पडा उसको एक महामछलीने भक्षण किया, शेष रहा सो शुकपक्षीने ऋषि-स्त्रीको जा दिया उसे एक पुत्र हुआ और पूर्वोक्त मछली भक्षणार्थ एक केव-टने पकडी उसके पेटमेसे पूर्वोक्त ऋषिर्वीर्य्यरचित एक दिव्यगुणमयी कन्या निकली, केवटने उसका पुत्रीवत् पोषणकर मत्स्योदरी नाम रक्खा, वह सुन्दरी सुशिक्षित होकर नौकाद्वारा यात्री नदीवारपारादि केवटगृहकार्य्य अनायास करने लगी, ऐसेही पराशर महर्षिकी तपश्चर्याके भी द्वादश वर्ष पूर्ण हुए तो गृहगमनाभिलाषी होकर दैवात् उसी घाटपर आन उपस्थित हुए, अकस्मात् मत्स्योदरीही उनको पार उतारने लगी परन्तु ऋषि उसके स्वरूप गुण स्वभावके देखकर आसक्त चित्त होकर केवटकुमारी कृशो-दरी मत्स्योदरीको बोला, हे सुन्दरि ! मेरा मन तेरे पर चलायमान है, शेष परस्पर कतिपय वार्तालापानन्तर महर्षि पराशरने मत्स्योदरीसे यथेष्टाचार किया और पश्चात् कितनेक वर प्रदानभी किये, जिनमें एक यह भी था कि तेरेसे योजनतक गन्ध फैलेगी, उससे लोकप्रख्यात महर्षि व्यासदेव प्रादुर्भूत हुए इन्होंने जन्मतेही जननीसे कहा कि, हे मातः ! जब तुझे कदाचित् कठिन कार्य्य पड़े तो मुझे स्मरण करना और यह कहकर वनको पधारे, पश्चात् उसी मत्स्योदरी अपरनाम योजनगन्धाके निरीक्षणसे राजा शंतनु व्यग्रचित्त हुआ, भीष्मने पितासे असतोषका कारण पूछा तो राजाने सिवाय योजन-

---

१ गृहस्थमें इसीका नाम राजा सुधन्वा था।

गन्धाकी अप्राप्तिके कुछ न कहा, भीष्मने केवटके पास जाकर राजाको योजन-गन्धा अर्पणका उपदेश किया तो केवटने भीष्मको योजनगन्धाके गर्भजपुत्रको राज्यप्राप्ति स्वीकार कराया । पश्चात् राजा शन्तनुने योजनगन्धासे विवाह किया और इस कार्य्यके करनेसे पुत्र भीष्मको अनेक वर प्रदान किये. ऐसे ही कुछ काल पीछे योजनगन्धाके पेटसे राजाके चित्रागद, विचित्रवीर्य्य नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए तो राजा शन्तनु प्रारब्धभोगानुसार देवलोक पधारे । पीछे भीष्मजीने स्वप्रतिज्ञानुसार राज्यतिलक वर्तमान मातासे पिताके ज्येष्ठपुत्र चित्रागदको दिया और काशीराजकी अबा अम्बालिका नामक दो कन्याओंके साथ यथोचित दोनों भाइयोंका विवाह करदिया, ऐसे ही कुछ काल पीछे राजा चित्रागद राज्यमदान्ध होकर दुराचारी हुआ तो योजनगन्धाने राज्य विनाशभयसे अपने पुत्र व्यासदेवका स्मरण किया व्यासजी उसीकाल आय उपस्थित हुए, माताने स्वपुत्र राजाको राजनीति उपदेशरूप कार्य्य बोधन किया तो व्यासने कहा, हे मातः ! वह राज्यमदांध मेरेसे नहीं सुनेगा मैं तुझे सुनाताहू तुम उसको सुनादेना, माताने स्वीकार किया तो प्रतिदिन सध्यासे लेकर एकान्त अर्द्धरात्रितक व्यासजी माताको राजनीति सुनाने लगे, यह घटना देखकर राजा चित्रागदके मनमे मिथ्या भ्रमयुक्त असतोष हुआ और चाहा कि इस दुराचारी ब्रह्मचारीके प्राण लेलेवें, परन्तु फिर शोचा कि विना पूर्ण निश्चय किये ब्रह्महत्या करनी उचित नहीं एकान्त होकर निश्चय किया तो सुना कि, व्यास हे मातः ! २ कह उपदेश करताहै और वह हे पुत्र ! कहकर पूछतीहै तब तो वास्तव धर्मशाली राजा चित्रांगद मिथ्यारोपसे और भी असतुष्ट हुआ और प्रातःकाल व्यासजीको बुलाकर हाथ जोडकर पूछने लगा कि हे ऋषे ! मिथ्यारोपका क्या प्रायश्चित्त है तो व्यासजीने कहा कि, हे राजन् ! प्राचीन शुष्क अश्वत्थके पेडके पोलमें प्रविष्ट होकर मिथ्यारोपीपुरुष जीवित जल-मरे तो ठीकहै, धार्मिक राजाने वैसेही किया, पश्चात् भीष्मजीने राज्याधिकार छोटे-भ्राता विचित्रवीर्यको दिया, वह दैवात् आखेट खेलने गया तो सिहने मार डाला पश्चात् माताके कहनेसेभी भीष्मजीने राज्याधिकार न स्वीकार किया तो माताने फिर पुत्र व्यासका स्मरण किया, ऋषि उपस्थित हुए तो माताने यावत् वृत्तान्त

सुनाया, शेषमे माताकी आज्ञासे व्यासजीने चित्र विचित्रकी स्त्रियोसे तथा एक दासीसे सन्तान अर्थ नियोग किया, तिससे उन तीनोसे यथाक्रम धृतराष्ट्र, पण्डु, विदुर यह तीन पुत्र हुये, भीष्मजीने ज्येष्ठ जानकर राज्यतिलक अन्ध धृतराष्ट्रको दिया परन्तु यावत् राजकार्यकर्ता पण्डु हुआ। भीष्मने प्रचण्ड बाहुबलसे दिग्विजय कर यावत् देशके राजा इनके स्वाधीन करदिये गान्धारीके पेटसे धृतराष्ट्रके दुर्योधनादि शतपुत्र हुए और पण्डुने कुन्ती तथा माद्री इन दो स्त्रीके साथ विवाह किया पश्चात् एकदिन शिकार खेलने गया तो वनमें मृग मृगीके परस्पर ससर्ग समय राजाने उनपर बाण चलाया, वे दोनों वास्तवमें मृग मृगी न थे किन्तु पशुधर्मको दिनसमय शास्त्रविरुद्ध समझकर स्वरूपान्तर से पशुधर्म करनेवाले कोई एक ऋषि, ऋषिपत्नी थे उन्होंने बाणाघात होते ही स्वकीय वास्तवस्वरूपको ग्रहण किया और पण्डूराजको ऋषिने शाप दिया कि, हे राजन्! तैने हमारा आनन्द भग किया है ऐसे ही जब तुम भी मदान्ध होकर इसी विषयानन्दकी अभिलाषा करोगे तब तुमारा शरीर भस्म होगा, ऋषिके ऐसे वचन सुन राजा अतिभयभीत हुआ और प्रतिदिन प्रयत्नसे जीवन व्यतीत करनेलगा, उधर कुन्तीने अपने कुलगुरु दुर्वासासे एक देव साक्षात् करनेका मत्र सीख रक्खाथा, उसी मत्रके परीक्षणार्थ कुन्तीने अपनी कुमारावस्थाही में सूर्य्यका आवाहनकर महा शूरवीर कर्णनामक पुत्रको लाभ कियाथा, कुन्तीने कईवर्ष तक जब अपने शापितपतिको शापभीतिसे सन्तान उत्पन्न करनेमे असमर्थ देखा तो उसने अपने प्रियपतिको स्वपरीक्षित मत्रका प्रभाव सुनाया, पण्डुराजने आज्ञा दी कि, यदि ऐसा है तो तुम देववीर्य्यसे सतान उत्पादन करो नाम तो मेराही रहेगा, एवं कुन्तीने प्रियपतिकी आज्ञाद्वारा धर्मराजके आवाहनसे युधिष्ठिरका, वायुके आवाहनसे भीमका, तथा इन्द्रसे अर्जुनका लाभ किया, कुन्तीहीसे उक्त मत्रको सीखकर माद्रीने अश्विनीकुमारोंके आवाहनसे नकुल तथा सहदेवका लाभ किया, पश्चात् किसी एक कालमें कामातुर होकर पण्डुराजने प्राणप्यारी स्वनारी माद्रीसे सम्बन्ध किया तो उक्त महर्षिके शापसे उसके प्राण हत हुए, माद्री भी अपने दोपुत्ररत्नोंको प्यारी सखी कुन्तीको समर्पणकर महाराज

पण्डुके साथ ही चितामे प्रविष्ट हुई पश्चात् कुन्तीने पाँचोंपुत्रोंका समानदृष्टिसे पालन किया, ऋषिलोगोंने पण्डुराजका राज्याधिकार सबसे बडे पुत्र युधिष्ठिरको प्रदान किया परन्तु छोटी अवस्थाके कारण राज्यप्रबन्धकी त्रुटीको न दूर कर-सके तो लाचार होकर धृतराष्ट्रका आश्रय लेनापडा, धृतराष्ट्रहीके शतपुत्रोंमे मिलमिलाके निर्वाह करने लगे, उन शतपुत्रोमे एक दुर्योधननामक पुत्र अपनी छोटी ही अवस्थामें अति कुशल नीतिनिपुण तथा राज्याभिलाषी हुआ, इसने अपने अन्धपिताकी सहकारितासे छोटीही आयुमें सर्व राज्यप्रबन्ध स्वाधीन किया, खेलकूदादिबलसबंधी कार्य्योंमें इससे सिवाय भीमके सबको नीचा देखना पडताथा, यह समय २ पर अर्जुनादिके अभ्युदयके विपरीत चेष्टा करने लगा, उसकी कुनीतिके बर्तावको देख भीम उसके शतभाईयोंको खेलकूदमें दुःखी करने लगा ऐसेही प्रतिदिन आपसमे द्वेषकी वृद्धि होनेलगी तो दुर्योधनने विचारा कि यदि यह पांचों भाई बडे होगये तो मेरेको राज्यवैभवका अनुभव करना कठिन होगा याते प्रथमही कोई प्रबल उपाय करना उचित है, ऐसा विचार विषमिश्रित मिठाई बनवाकर नौकापर बैठ यमुनाजीके सैरकी तैय्यारी करी दिनभर सभी भाई मिलकर अनेक प्रकारके खेलोको खेलकर चित्तप्रसन्न करते हुए भोजनके समय नदीके संकेतित स्थानपर पहुँचे तो वहां दुर्योधन-वशवर्ती पाचकने सबको मिठाई भोजनार्थ परोसी परन्तु भीमको वह मिठाई दी कि जिसमें विष मिलाय रक्खाथा अब अज्ञात विश्वस्त भीमको उस मिठा-ईके खानेसे थोडीही देर पीछे मूर्च्छासी आगई तो दुर्योधनने उसको हँसी-हीमे नदीमे गिरवा दिया, युधिष्ठिरादिकोसे शोकके सिवाय उस समय कुछ-भी न बनपडा, उधर दैवके कुछ अनुकूल होनेसे भीमको नदीहीमे नागलोकका मार्ग मिला, भीम वहा पहुँचा वासुकीसे भेंट हुई तो उसने प्रसन्न होकर उस-का विषजोश उतारकर शत्रु जीतनेकी विद्याभी प्रदान करी पश्चात् भीम फिर हस्तिनापुर आया दुर्योधनादि देखकर चकित हुए । वैसे ही फिर आपसमे निर्वाह करने लगे परन्तु द्वेष प्रतिदिन वृद्ध होनेलगा इतनेमें एक परशुरा-मका शिष्य द्रोण नामक ब्राह्मण द्रुपद राजासे रुष्ट होकर स्वयं हस्तिनापुरमें आय निवास करने लगा, एक दिन वह सभी भाई मिलकर गेंद खेलरहेथे तो

इनका गेद दैवात् कूपमें गिरगया दौडकर सभी कूपके किनारे गए पर गेंदका मिलना सबने दुष्कर समझा, ऐसेही स्नानसन्ध्यार्थ द्रोणाचार्य्य भी उसी कूपके किनारे पर पहुँचे उन्होंने बच्चोसे कूपावरणका कारण पूछा तो बच्चोने अपने गेदका कूपपतन बतलाया. द्रोणने एक बच्चेको भेजकर धनुप तथा दो चार बाण मँगवाए, एकबाण गेदमें मारा दूसरा उस बाणकी पृष्ठमे अर्थात् बाणमें बाण मारा ऐसेही दो चार बाणोंके आपसमें परोनेसे शेपबाणकी पृष्ठमें हाथ पहुँचनेलगा तो द्रोणने राजकुमारोसे कहा अब तुम अपना गेद निकाललो वे निकालके अतिप्रसन्न हुए और ब्राह्मणको धन्यवाद देकर फिर खेलने लगे, सबने आश्चर्य्य होकर यह गेद निकालनेका प्रसग रात्रिको धृतराष्ट्र तथा भीष्मको सुनाया भीष्मने द्रोणको बुलाकर सन्मान किया और अपने राजकुमारोको विद्या सिखलानेकी प्रार्थना करी। द्रोणने उसको प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार किया और अतिप्रेमसे राजकुमारोको प्रतिदिन नवीन २ शिक्षा देनेलगा, अनेक राजकुमार सुयोग्य शिष्य तैय्यार किये परन्तु उनमें पॉचो भाई पाण्डव, कर्ण तथा दुर्योधन यह सात शिष्य ऐसे निकले कि, जिनके सम्बन्धसे द्रोणगुरुको आचार्य्य पदवी मिली और मनुष्यलोकसे अतिरिक्त देवलोकतकभी द्रोणका नाम निष्कलक कीर्तिपूर्वक प्रख्यात हुआ, उसीकालमे एक निषादराजका पुत्र एकलव्य नामक द्रोणके पास धनुषविद्या सीखनेकी अभिलाषासे आया, द्रोणने उसको शूद्र कहकर उक्त विद्या सिखलानेसे इनकार किया, उसने जगलमें जाकर द्रोणकी मूर्ति बनाकर उससे मानसिक आज्ञा पाय २ कर अभ्यास करना आरम्भ किया यह भी द्रोणका शिष्य उक्तविद्यामें अतिनिपुणथा, लिखा है कि, एक समय यह पाण्डव वनमे शिकारको गये तो उसी एकलव्य भीलको देखकर इनका कुत्ता भौंकने लगाही था कि भीलने कुत्तेके मुख पसारनेतक उसका मुख बाणोंसे भर दिया, अर्जुन इस वार्ताको देखकर आश्चर्य्य हुआ और उस भीलसे प्रेमपूर्वक पूछने लगा कि, तुम कौनके शिष्य हो, उसने द्रोणका नाम लिया तो अर्जुन और भी प्रसन्नहुआ और मनमें कहा कि, यह विद्या गुरुजीने हमें तो न प्रदान करी, शेषमें भीलसे अर्जुनने पठन स्थल पूछा तो उसने स्वागारमे द्रोणजीकी मृण्मयी मूर्ति दिखलाई अर्जुन और भी प्रसन्न हुआ सभी राजधानीमें लौट-

के आये तो कुछ काल पीछे अर्जुन तथा कर्णका परस्पर घोर सग्राम हुआ, कारण इसका यहीथा कि यह दोनो बलविद्यादिमे सर्वथा तुल्य थे परन्तु दुर्योधनका पक्ष करता हुआ कर्ण अर्जुन के बलवीर्य्यविद्यादिको तुच्छ जाना करताथा और पाण्डवभी इसको दासीपुत्र कहकर पुकारा करतेथे अर्थात् कुतीने उत्पन्न होतेही इसको धृतराष्ट्रकी 'राधे' नामक दासीको दे दियाथा और दुर्योधन उसके लोकोत्तर गुणोंको देखकर उसका बडाही सन्मान किया करताथा, इसीलिये वहभी दुर्योधनको प्राणप्रिय तथा उसके आगे औरोंको तुच्छ जाना करताथा, कर्णार्जुनके संग्राममे दोनोही तुल्यबल हुए एकके आगे दूसरेको नीचा न देखना पड़ा दोनों ओरके दर्शकोकी चित्तवृत्ति प्रफुल्लितही बनी रही, द्रोणगुरु भी दोनो पर प्रसन्न हुए और दोनोंको कहा कि, तुमको हमारा निरादार करनेवाले द्रुपदपरभी चढाई करनी उचित है, इन दोनोंने स्वीकार किया तो द्रोणने अपनी और भी शिष्य-मण्डलीको साथ लेकर द्रुपद पर चढाई की, द्रुपदको भेद मिला तो वह आगेसे चलकर शरणागत हुआ, एवं पाण्डवोके प्रभावको प्रतिदिन वृद्ध देखकर दुर्योधन प्रतिदिन चिन्तातुर रहने लगा, शेषमें एक पुरोचन नामक मन्त्रीके साथ यह मंत्र किया कि यह पॉचों पाण्डव सहित इनकी माताके एक लाक्षामदिरमे जला दिये जावे, उसी कालमे उक्तमंत्रीको लाक्षामन्दिर बनवानेकी आज्ञा दी बनकर तैय्यार हुआ तो दुर्योधनने अपने पितासे पाण्डवोको आज्ञा दिलवाई कि, एक हमने नूतन मन्दिर गगातीरमे निर्माण करवाया है कल्हके दिन उसका वास्तु होनेवाला है, अग्निहोत्र, यज्ञ, दान, ब्रह्मभोजनादि बहुत उत्साहपूर्वक होगा, आप लोगोंकोभी वहां जाना उचित है, इस धृतराष्ट्रकी आज्ञाको सरलस्वभाववाले पाण्डवोंने सत्कारपूर्वक स्वीकार किया परन्तु परम नीतिनिपुण विदुरने उनके जानेके पूर्वही उस लाक्षामन्दिरका सारा पोल पाण्डवोको खोल सुनाया कहा कि. हे राजकुमारो! आप लोगोंने उसको राजमन्दिर मत समझना वह एक आपलोगोंके विनाशार्थ इस कुनीतिनिपुण दुर्योधनने छद्ममन्दिर बनवायाहै, वह केवल चारोंतरफ बॉसकी लकडी खडीकर बनवाया है ऊपरसे कागद कपडे, सफदीसे पोचा है परन्तु बीचमे जगह २ पर बारूद भरा है आग लगते ही वह एकदम जलेगा आपलोगोने सावधान रहना, विदुरजीकी ऐसी

वाणीको सुनकर पाण्डव आश्चर्य्य हुए और अति सावधानतापूर्वक वहां जाकर निवास किया उस दिन दुर्योधनके पुरोचन नामक मंत्रीने यज्ञहोमादि यावत् क्रियाको करवाया और अनेक साधु ब्राह्मण अभ्यागतोंको भोजनभी प्रसन्नतापूर्वक कराया, उधर पाण्डवोंनेभी अपने सवार होकर पारहोनेके लिये केवटको कहकर नौका तैय्यार रक्खी, रात्रिहुई तो मन्त्रीको दुर्योधनका हुक्म सब लोगोके सोनेपर मन्दिरको अग्नि लगानेका था, तबतक दिनभरके कार्य्यके श्रमसे उसको सन्ध्यासमय ही आलस्य आया थोडीसी आँख लगी तो चार घटिका रात्रि गत हुई, पीछे अर्थात् अष्टवादनसमय भीमने स्वय उस मन्दिरको अग्नि लगादिया और आप अपनी माताके साथ पाँचोभाई उक्त नौकापर सवार हो गगापार हुए, पश्चात् दग्धमन्दिरमें एक मत्री जो कि दुर्योधनने भेजाथा और एक पांचों पुत्रके साथ भीख मॉगनेवाली ब्राह्मणी यह सात जलकर मरगये। पश्चात् मत्रीके न मिलनेसे दुर्योधनने पाण्डवोंके साथही उसका जलजाना भी निश्चय किया और पचपुत्रोंके साथ जलमरी भिखारिन ब्राह्मणीको कुन्ती तथा उसके पांचों बेटोको पाण्डव जले मानकर चित्तमें अतिसंतुष्ट हुआ तथा तबहीसे अप्रतिम निष्कण्टक राज्यवैभवका स्वामी अपनेको मान ऐसा प्रसन्न हुआ कि मानों रकको अक्षय-निधि लाभ हुई, उधर पाण्डवोने गगापार होकर अपना स्वरूप ब्रह्मचारियोका बनाया और माता कुन्ती को साथ लिये भीख मॉग २ दिन काटने लगे, जो जो वस्तु भीख मॉगनेसे मिलती वह पाचों माताके आगे लाकर रख देते माताभी इन पाचोंको यथायोग्य भागकर बॉट देती तथा शेष बचे तो आप भोजन कराकरती, ऐसेही वनमार्गमे पाण्डवोंको एक हिडिम्बनामक राक्षस मिला वह उनको त्रास देनेलगा भीमका उसके साथ घोर सग्राम हुआ शेषमें भीमने उसको मल्लयुद्धमें मलकर मारडाला और उसकी हिडिम्बा नामक भगिनीसे प्रेमकर भीमने भोग किया तो उससे घटोत्कच नामक पुत्र पैदा हुआ भीमने उसको हालमे वनहीमे निवास की आज्ञादी और भावीयुद्धमें उपस्थित होनेका अनुरोध किया, आगे एक ग्राममें पहुँचे तो वहाके प्रतिदिन एक आदमीको एक बका-सुर नामक राक्षस खाजाया करता था, उस दिन एक ब्राह्मणकी पारीथी वह ब्राह्मण अपनी माताका एकही पुत्रथा, वह प्रातःही उठकर स्वपुत्रवियोगको

स्मरणकर रोनेलगी अकस्मात् भीमभी भीख मॉगता उनहीके घर पहुँचा देखे तो माता रोरहीहै तथा पुत्र धारण कर रहा है, भीमने पूछा, हे ब्राह्मणदेव ! तेरी माता क्यो रोती है ? उस ब्राह्मणने सारा वृत्तान्त कह सुनाया, भीमने पूछा तुम्हारे घरमे खानेको भी है कि नहीं ब्राह्मणने कहा खानेको तो आपलोगोंके अनुग्रहसे पुष्कल है, भीमने कहा तो मेरेको आप आज भोजन करायदेवें तो मैं आपके बदले बकासुरकी भेंट होकर उपस्थित होजाऊँगा, ब्राह्मण बोला हरे ! हरे ! हे ब्रह्मचारिन् ! ऐसा निषिद्ध कार्य्य मैं कैसे करसकू, यदि मेरे बदले आप अपने प्राणार्पणकर मत्प्राणत्राणकर भी देवे तो भी मैं क्या अमर होसकताहूँ ? चार दिन पीछे या आगे मरणा समान है एक दूसरेके लिये प्राण देवे यह ईश्वरन्यायसे भी विरुद्ध है. इस लिये आप प्रसन्नतापूर्वक भोजन कीजिये और मेरी माताको आशीर्वाद दीजिये कि मेरे पश्चात् ईश्वर इसको सन्तोष तथा धैर्य्य प्रदान करे, भीमने कहा, हे ब्राह्मणदेव ! जो आपने कहा सब सच है परन्तु यदि आप आज जायँगे तो वह दुष्टराक्षस आपको अवश्य मारही डालेगा और आपके बदले मैं जावूगा तो मेरे मरणमे सदेह है क्योंकि मेरे पास एक गुरुका दिया हुआ राक्षसवशीकरणका मत्र है मैं उस राक्षसके सामने उसका जप करूंगा, यदि वह गुरु पीरवाला होगा तो मेरेको मारनेके बदले प्रेमकरने लगेगा और यदि उसने गुरुकी कान न मानी तो भी मैं उसके साथ दो हाथ अवश्य करूगा, बहुत कहनेसे भीमका कथन ब्राह्मणने स्वीकार किया उसकी माताभी प्रसन्न होकर भोजन बनाने लगी. भीमभी उक्त कार्य्य अपनी माता भ्राताओंको निवेदनकर भोजनार्थ ब्राह्मणगृहमें उपस्थित हुआ, अतिप्रसन्न हो भोजन किया और पश्चात् उक्त राक्षसके स्थानहीमे जायकर सोय रहा. सायं समय राक्षस आया और अपने भक्ष्यको निर्भय सोये देखकर एक लात प्रहार करी, भीम क्रुद्ध होकर उठा और राक्षसको पकड कर छछोडने लगा एक दो घटेमें हैरानकर मारडाला, इस वृत्तान्तको नगरवासी लोग सुनकर अतिआनन्दित हुए और पाण्डवोका विशेष सन्मान किया. ऐसेही चलते २ जङ्गलमें पांडवोंको कई एक ऋषियोंके आश्रम मिले दो दो चार चार रोज निवासकर आगे चलते जाते, एक दिन प्रसगानुसार पाण्डवोंको माताने कहा, कि हे पुत्रो ! विदे-

शका समय है निर्वाह करना आवश्यक है आप पांचोंही मेरे सामने यह प्रतिज्ञा करो कि छोटी मोटी कुछ भी वस्तु मिले उसमें पांचोका तुम्हारा सम भाग ही होना होगा, माताकी इस प्रतिज्ञाको पांचोंने प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार किया तब-तक सर्व ऋषियोंके आश्रमोंपर राजा द्रुपदकी ओरसे द्रौपदीके स्वयम्वरका आमन्त्रण आया पाण्डवोंको भी प्रेमपूर्वक साथ लेते हुए ऋषि लोग राजा द्रुपदकी राजधानीमे उचित समयपर उपस्थित हुए, देश देशान्तरके और राजकुमार भी आमन्त्रित हुए नियत समयपर आय पहुँचे, कृष्ण, बलदेव, कर्ण, दुर्योधनादि अनेक शूरवीर राजकुमार आये, राजा द्रुपदने सबका यथोचित सन्मान किया उचित समयपर यथोचित स्थानपर निविष्टहो राजकुमारोंने स्वयम्वरमण्डपको सुशोभित किया तो द्रुपदके पुरोहितने खडे होकर सब राजकुमारोंको बोधन किया कि इस धनुष बाणसे इस स्तम्भशिरोपरि भ्रमायमान मत्स्यमूर्तिको जो राजकुमार द्रुपदराजकी प्रतिज्ञापूर्वक वेधन करेगा उसके गलेको द्रुपदराज-कुमारी स्वयंवरमालासे सुशोभित करेगी, द्रुपदराजकी प्रतिज्ञा यह थी कि. नीचे तेल या पानीके कडाहमें देख कर ऊपरकी ओर प्रचलित मत्स्यमूर्तिको वेधन करनेवाले विद्वान्को अपनी पुत्रीको देना परन्तु ऐसे लक्ष्यभेदकी विद्या उस समय सिवाय कर्ण तथा अर्जुनके दूसरेको नहीं आतीथी और अर्जुनके तात्पर्य्य-हीसे राजाकी प्रतिज्ञा भी थी, पुरोहितप्रेरित यथाक्रम अनेक राजकुमारोंने उक्त लक्ष्यभेदनका प्रयत्न किया परन्तु जिसका कभी स्वप्नमें भी अभ्यास नहीं ऐसे लक्ष्यका भेदन अकस्मात् कैसे होसके अनेक राजकुमारोंने उक्त लक्ष्यभेदनका प्रयत्न किया परन्तु शेषमें विफल प्रयत्न होय नार निवायकर नियत स्थानोंपर आय बैठे एव कईएक दुर्योधनादिके हृदयमे अपनी अप्रतिष्ठाकी भीतिसे उक्त लक्ष्यभेदनका साहसही नहीं पडा और कर्णने अपने को दासीपुत्र मानकर उक्त क्षत्रियसमाजमें लक्ष्यभेदनमें प्रयत्न ही न किया ऐसेही थोडी देरीतक कोई न उठा तो द्रुपदराजाका पुरोहित बोला कि इस समय भूमि शस्त्र विद्यासे शून्यसी दीख पडती है, अहो! इतने शूरवीर राजकुमारोंके समाजमें कोई एकभी उक्त लक्ष्यका भेदक न निकला, शोकका विषय है, इस सर्वसाधारण वचनको सुन-कर कर्णसे रहा न गया दुर्योधनके भ्रूभगसे आज्ञापित होकर अनायासही धनुष-

बाणको उठाय लक्ष्यमें एकतान करताही था कि ऊपर राजमदिरमेंसे द्रौपदीने सूचित किया कि, इस पुरुषके लक्ष्यभेदन करनेसे भी मैं इसको वर नहीं सकती क्योंकि मैंने इसको दासीपुत्र सुन रक्खा है, यदि यह वार्ता सच है तो इसके लक्ष्यभेदन करनेसेभी पिताकी प्रतिज्ञा अनुसार आजन्म मेरेको लाछित होना उचित नहीं, यही वार्ता पुरोहितने कर्णकर्णगतकरी तो वह भी उक्त क्रियासे निवृत्त हुआ शेषमें ब्राह्मण ऋषिमंडलीमे निविष्टपाण्डवोंने ऋषिसमुदायकी आज्ञा पाय अर्जुनको उक्त लक्ष्यभेदनमें प्रवृत्त किया अर्जुनका उत्थान देखकर कईएक ऋषि प्रसन्न हुए कि, यदि यह ब्रह्मचारी लक्ष्यभेदन करेगा तो इससमय शस्त्र विद्याके सरक्षणसे हमलोग यशोभागी अवश्य होगे एव कईएक (इस ब्रह्मचारीसे लक्ष्य न भिदेगा) ऐसा मानकर चित्तमें असन्तुष्टभी हुए और यह कहनेलगे कि इस ब्रह्मचारीकी विपरीत चेष्टासे हम लोगोंको सभीलोग यह अवश्य कहेगे कि अशिक्षित असन्तोषी ब्राह्मण निर्लज्ज होकर क्षत्रिय राजकुमारियोंकोभी आवृत किया चाहते हैं । ऐसे २ परस्पर ऋषिमण्डलके विचार हो ही रहेथे तबतक अर्जुनने जातेही धनुषबाणको उठाय अनायास उक्त लक्ष्यको भेदन किया । सर्व ओर जय २ कारका शब्द हुआ यावत् ऋषिमंडल प्रसन्न हुआ सबके स्वान्तमें शंका हुई कि यह ब्रह्मचारी ब्राह्मणकुलका कभी न होगा, ऐसेही द्रुपदकोभी सन्देह हुआ उसके वारणार्थ अर्जुनको एकांतमे बुलाकर पूछा तो उसने अपना सब वृत्तान्त कह सुनाया राजा द्रुपद अतिप्रसन्न हुआ और मनमें कहा कि दैवने मेरी अकस्मात् अभिलाषा पूर्ण करी अन्यथा मैं अर्जुनको कहां खोजने जाता एवं द्रौपदीका शास्त्रविधिपूर्वक विवाहकर आहूत राजकुमारोको यथायोग्य सत्कारपूर्वक प्रस्थान कराया तथा पाण्डवोंके प्रस्थानार्थ हस्तिनापुरमें धृतराष्ट्रको पत्र भेजा धृतराष्ट्रने पाण्डवोके लानेके लिये विदुरको भेजा द्रुपदराजाने यथोचित सत्कारकर सबको स्वस्वस्थान पहुचाया, पाण्डवोंने हस्तिनापुरमें आकर फिर पिताके राज्यको स्मरणकिया तो दुर्योधनके दुःखी होतेही धृतराष्ट्रने इनको खाण्डववनका राज्य दिया, वह वन यद्यपि प्रथम निपट जंगल तथा उपज शून्य था, तथापि पाण्डवोंके वहां निवास करनेसे अनेक प्रजाके लोगोंनेभी प्राचीन निवासस्थल छोड २ कर वहां

जाय निवास किया, इसीसे सर्वत्र वह खाण्डव वनकी भूमि उपजसे पूरित होनेलगी तथा पाण्डव आनन्दपूर्वक निवास करनेलगे ऐसेही लोक लोकान्तर देशदेशान्तरकी यात्रा करते हुए नवीन बसती देखकर श्रीनारदजी पाण्डवोंके यहाँ पधारे, पाण्डवोने महर्षिका यथोचित स्वागत किया और अपना सब वृत्तान्त सुनाया, पूर्वोक्त माता कुन्तीकी आज्ञापित प्रतिज्ञापूर्वक यहभी कहा कि, हे महर्षिवर्य्य ! माताकी आज्ञासे यह द्रौपदी हम पांचोकी समान है, नारदजीने माताकी आज्ञा पालनमें पाण्डवोकी प्रशंसा करी और भावी परस्पर द्वेषके अभावके लिये सुंदै, उपसुद इन दोनोंभाईयोंका इतिहासभी सुनाया और कहा कि इसलिये आप लोगोंको द्रौपदीके साथ परस्पर प्रतिज्ञा पूर्वक वर्ताव करना उचित है, पाण्डवोने विनयपूर्वक कहा कि, हे देव ! आपही कृपा करके हम-लोगोमे ऐसी प्रतिज्ञा करदीजिये जो जिसको पालन करते हुए हमलोग भावी सुखको यथोचित लाभ करसकें, नारदने कहा हे राजकुमारो ! एक वर्षमे दो मास द्वादशदिवस तुम पाचोके भागमें आतेहैं इसलिये उचित है कि यह द्रुपदकु-मारी एक वर्षमे २ मास १२ दिन तक तुम पॉचोका यथाक्रम एकान्तसेवन करे तो मङ्गल होगा. परन्तु उसके साथ यह भी रहे कि यदि एक भाई दूसरे भाईको एकान्तमें द्रोपदीके साथ निरीक्षण भी करे तो उसको उसी अपराधके दण्डमें १२ वर्षतक वनवास लेना होगा, सिवाय इस कठिन प्रतिज्ञाके निर्वाह होना कठिन है, इस नारदप्रोक्त प्रतिज्ञाको पॉचोने 'ओम्' कह कर स्वीकार किया इतनेमे नारद-जी प्रस्थान करगये, और पाण्डव औरभी आनन्दपूर्वक खाण्डववनमें निवास-करने लगे, ऐसेही कुछ समय व्यतीत हुआ तो दैवात् एकदिन उक्त प्रतिज्ञाका पालन करते हुए ऐसा प्रसग आय पडा कि एक ब्राह्मणकी गौएँ हरणकिये डाकू लिये जाताथा कि उसने उसीकाल अर्जुनके आगे पुकारा अर्जुनने उस ब्राह्मणको सतोष दिया और उस समय समीप उपस्थित युधिष्ठिरके घरसे

---

१ यह दोनों भाई राक्षस थे एक छलकी स्त्रीपर दोनों मोहित हुए एक कहै हमको मिले दूसरा कहै हमको मिले, शेषमें स्त्रीसे पूछा तू किसको चाहती है तो उसने कहा कि तुम दोनोमें जो बली होगा उसको, वह दोनों समबल हीथे परस्पर युद्ध करके दोनों मरगये ॥

धनुषवाणले भील डाकूओसे ब्राह्मणकी गौएँ छुडा लाया वह युधिष्ठिरके एकान्त निवासका गृह था इसीसे ब्राह्मणका कार्य्य करनेके पश्चात् युधिष्ठिरादिके निवारते हुए भी उक्त प्रतिज्ञाको स्मरणकर अर्जुनने वनवास स्वीकार किया, देशदेशान्तरकी सैर करता हुआ अर्जुन साधुवेषसे द्वारका पहुँचे तो वहां सखीसमुदायके साथ गोमतीकुण्डपर स्नान अर्थ आई, कृष्णभगिनी सुभद्राका अर्जुनके साथ परस्पर दृष्टिपातसे मिलाप हुआ परस्पर देखतेही दोनोंको ऐसा दीखपडा कि मानों चिरकालके वियुक्त आज दैवात् फिर मिले हैं, परस्पर मिलापआशा नदी जब दोनों ओर कूलोंसे प्रतिकूल होने लगी तो दोनोंको परस्पर अनेक उपाय भी सूझ पडने लगे, भावी अभीष्ट अर्थसिद्धिके उद्देश्यसे साधुजीने द्वारकाके बाहिर अपनी धूनी रमाई, तथा साध्वी सुभद्राने अपनी माताके पास उक्त साधुकी प्रशसा करनी आरम्भ की अपूर्व नवयुवक मनोहर मूर्ति राजकुमार साधुको देखकर द्वारकाके यावत् लोग उसके मुखचन्द्रके चकोरसे दीख पडने लगे, प्रतिदिन प्रख्यातिका उत्तेजन होने लगा, श्रीकृष्णदेव भी सपरिवार साधुजीके दर्शनको आये परन्तु देखतेही मर्म पागये कि यह सिवाय अर्जुनके दूसरा नहीं है, भगिनीका प्रेम देखके भी श्रीकृष्ण प्रसन्न हुए सोचा कि ऐसा पति इसको दूसरा कहां मिलनेवाला है, श्रीकृष्ण बलदेवजीने साधुजीको अपने गृह भोजनार्थ निमन्त्रित किया सुभद्राको भोजनक्रियामें सेवाका तथा साधुजीके साथ वार्तालापका अवसर मिला उसीमें परस्पर एकान्त मिलनेका सकेतभी हुआ उक्त सकेतपर सुभद्रा उपस्थित हुई, तो साधुजी उस सुचरिताको साथ लेकर रफ़ू चक्कर हुए पश्चात् दिन होतेही द्वारकामें शोर होने लगा, अति अन्वेषणसे भी सुभद्राके न मिलनेसे बलदेवजी अतिरुष्ट हुए और प्रतिज्ञा करने लगे कि, मैं भगिनी अपहारक दुष्टको विना प्राण लिये न छोडूगा, श्रीकृष्णदेवने बहुत समझाकर संतोष किया और कहा कि, हे आर्य! यह पराया धन ही था अवश्य दूसरेके हाथ जानेवाला ही था प्रत्युत हम स्वयं देते तो क्या जाने कैसे स्थानमें जाता अब आपहीसे गया है तो क्या जाने दैवात् अच्छे स्थलमेंही गयाहो, फिर यह प्रतिज्ञा करनी कि मैं उसके प्राण लिये विना न छोडूगा यह अच्छा नहीं है प्रत्युत यही

अच्छाहै कि यदि कहीं खबर मिले तो उनका विधिपूर्वक विवाह करदिया जावे इत्यादि कृष्णवचनोसे बलदेवजीके चित्तमे शान्ति हुई और कहा कि जो आपने सोचाहै वैसेही करना. इधर अर्जुनके १२ वर्ष पूरे हुए सुभद्राको लेकर खाण्डववनमे पहुँचा तो पश्चात् कृष्णदेवने खाण्डववनमें आकर सुभद्राका अर्जुनके साथ विवाह कर दिया, कुछदिन आनन्दसे गुजरे तो खाण्डव-वनको अकस्मात् आग लग उठी उसमे पाण्डवोंकाभी कुछ नुकसान हुआ ॥

॥ इति आदि पर्व ॥ १ ॥

परन्तु उस भयानक अग्निमे जलते हुए एक 'मय' नामक राक्षसको पाण्डवोने दयाकरके बचाया तो वह प्रसन्न होकर सेवा पूछने लगा, पाण्डवोंने पूछा तुम क्या करसकतेहो उसने कहा मेरेको शिल्पचित्रादि क्रिया विचित्र करनी आती है तो पाण्डवोंने उसको अपने नूतन निर्मित राजभवनके समीप एक सभामण्डप बनाने की आज्ञा दी उसने अपनी राक्षसीमायासे तथा अलौकिक कारीगरीसे सभाका काम पाण्डवोंको ऐसा बनाकर दिखलाया कि ससारभरमें उसकी तुलना का दूसरा स्थान दुर्लभ दीख पडने लगा. नारदजी आये पाण्डवोका सभामण्डप देखके अति प्रसन्न हुए और इन्द्र कुबेरादिकी अनेक सभाओका नाम तथा स्वरूपभी पाण्डवोंको सभाके प्रसगसे सुनाने-लगे, परतु शेषमें यह कहा कि वर्तमान कालमे आपके सभामण्डपको किसीके सभासदनके सदृश नहीं कहसकते किन्तु सबसे उत्तम है विशेषता उस सभा-मण्डपमें यह थी कि उसमे अनेक विभ्रमस्थल ऐसे बनेथे कि जिनको देख अपरिचित विद्वान् भी धोखा खानेसे मुक्त न रहे, जलमें स्थल, स्थलमें जल, कपाटमे भित्ति, भित्तिमें कपाट, ऊर्ध्वमें निम्न, निम्नमे ऊर्ध्व इत्यादि अनेक तरहकी विपरीत बुद्धि अपरिचित पुरुषको उस सभामण्डपमें अवश्य होही जातीथी ऐसे सभासदोंको देखकर नारदजी अति प्रसन्न हुए और पाण्डवोको उनके पिता पण्डुराजाका राजसूययज्ञ करनेका सदेश महाराज हरिश्चन्द्रकी प्रतिष्ठाके उदाहरणपूर्वक सविस्तर सुनाया. युधिष्ठिरने ऋषिकी आज्ञा पाकर राजसूयकी तैय्यारी करी और इसी विषे विशेष विचार करनेके लिये श्रीकृष्ण-देवको बुलाभेजा वह आये। तो राजसूययज्ञका आरम्भ हुआ. अर्जुनको दिग्वि-

जय करने भेजा वह देशदेशान्तरके अनेक राजाओंको जीतकर साथले अनेक प्रकारका द्रव्य संचय कर हस्तिनापुर पहुँचा तो पाण्डवोंने आमन्त्रितकर अन्तिम आहुतिसमय सर्वसम्बन्धीगणकोभी बुलालिया, शेषमें विचार हुआ कि अब प्रथम पूजन किसका किया जावे अर्थात् इस भरी सभाका सभापति कौन नियत किया जावे पाण्डवोंने प्रथम कई एक वृद्धोसे पूछा तो उन्होने कहा कि आप अपने गुरु द्रोणसे पूछिये युधिष्ठिरने द्रोणसे पूछा तो उसने कहा कि यह आप लोगोंके जातीय विषयका विचार है मुझको इसका पूरा मर्म मालूम नहीं है आप भीष्मजीसे पूछिये युधिष्ठिरने भीष्मको पूछा तो उसने परम प्रेम उत्साह तथा भक्ति भरी प्यारी गिरासे कहा कि ऐसे मगलके समय उपस्थित मङ्गलमूर्ति श्रीकृष्णदेवको छोड़कर और कोई पूजनार्ह होसकता है ? भीष्मकी ऐसी एक पक्षपातिनी वाणीको सुनकर कई एक दुर्जन दग्धप्राय होगये. और श्रीकृष्णके पितृश्वसा (फूफी) के बेटे शिशुपालने भीष्मपितामह को—

अवलिप्तस्य मूर्खस्य केशवं स्तोतुमिच्छतः ।
कथं भीष्म न ते जिह्वा शतधेयं विदीर्य्यते ॥१॥
यत्र कुत्सा प्रयोक्तव्या भीष्म बालतरैर्नरैः ॥
तमिमं ज्ञानवृद्धः सन्गोपं संस्तोतुमिच्छसि ॥ २ ॥

सभाप० अ० ४१ ॥

इत्यादि अनेक दुर्वचन कहे' अर्थात् शिशुपालने भीष्मको कहा कि, हे भीष्म ! कृष्णका मिथ्या स्तवन करनेकी इच्छा करनेवाले तुम निर्लज्ज मूर्खकी जिह्वा (जबान) फटके सौ टुकडे क्यो नहीं होजाती ॥ १ ॥

हे भीष्म ! जिस निषिद्ध गोपकुलमें उत्पन्न हुए कृष्णकी बालक भी निन्दा करसकते हैं ऐसे उस तुच्छ गोपका तू ज्ञानवृद्ध होकर स्तवन करनेकी इच्छा करता है ॥ २ ॥

इत्यादि कुवाक्योंका श्रवणकर श्रीकृष्णदेव अतिक्रुद्ध हुए और शिशुपालको उसीसमय अपने क्षात्रपनेका परिचय दिखलाया अर्थात् सुदर्शनसे उसका शिर

उतारके किनारे किया उस कालमे ऐसी घटनाको कई पुरुषोने अनुचित समझा और कई कहनेलगे कि पुरुष कहांतक सहनशील हो सकताहै, ऐसेही इस दुष्टने श्रीकृष्णका एकसौ बेर आगे भी अपराध किया था शेषमें न वारण होनेसे इस दशाको पहुँचा, अन्तमे श्रीकृष्णदेवका पूजनकर पाण्डवोंने यज्ञ समाप्त किया तो कृष्णदेव अपने ग्राम द्वारकाको प्रस्थान करगये और भी राजा-लोगोंको यथायोग्य सन्मानकर पांडवोंने बिदा किया परन्तु दुर्योधन सभा देखने-के लालचसे कुछ दिन वहा रहा, एकदिन सभास्थल देखते हुए दुर्योधन को विभ्रम हुआ तो जलाशयमें गिरपडा द्रौपदीने उसको देखकर हँसदिया और धीरेसे यह भी कहा कि दुर्योधनभी अपने पितासे कम नहीं है, द्रौपदीके इस वचन को सुनकर दुर्योधन दग्धप्राय होगया और क्रुद्ध होकर अपने गृहमे चलाआया, धृतराष्ट्रके साथ मन्त्रकर किसी एक विशेष उत्साहके मिससे पाड-वोंको अपने घर बुलाया और प्रसगसे द्यूतखेलनार्थ समुत्साहनादी, समबल सजातीय भाईके हेकारनेसे द्यूतादि अनुचित कर्ममें भी प्रवृत्त होना पाण्डवोंने अनुचित न समझा अपने सहोदर शकुनि को अग्रणीय करके दुर्योधनने युधि-ष्ठिरके साथ खेल प्रारम्भ किया, शकुनिका द्यूतकर्ममे पूर्ण अभ्यास था थोडेही कालमें उसने पाण्डवोंका द्रोपदी समेत सर्वस्व जीतलिया, उसी समय दुर्यो-धनने अपने सहोदर दुःशासनको कहा कि इस काल इस द्रौपदीपर हमारा स्वत्व है, हे भाई ! उठो सबके साम्हने इस दुर्भगाकी भगाको प्रकाशित करो मागको वखेर डारो, तनियां को तोरतार जामा तनुते निकारो ।

छन्द ।

भूषण अलंकार अलिका निकार याकी ।
कबरीको खैंच खैंच शासना को दीजिये ॥
अम्बर निकारके दिगम्बरसी करो याहि ।
कियो निज पावे सब आगे नग्न कीजिये ॥
नीचनीने घरमें बुलाय मोसों हास्य कियो ।

हाय २ बदलो निबेर आज लीजिये ।
लाजविना राँड यह साण्ढनसों भिन्यो चहै ।
यौवनमद सगरो निकार ह्याँही पीजिये ॥ १ ॥

दुर्योधनकी ऐसी क्रोधमयी वाणीको सुनकर दुःशासन उसीकाल उठा और पाण्डवोंके पश्चात् निविष्ट द्रौपदी को कबरीसे पकड़कर अनेकधा खैंच खैच वेइज्जती करने लगा, पाण्डव देखही रहेहैं परन्तु प्रतिज्ञाके वशवर्ति हुए कुछ कर नहीं सकते अनेक तरहकी लथेड पथेड कर शेपमें दुःशासनने द्रौपदीके वस्त्र उतारने प्रारम्भ किये तो अरक्षित हुई द्रौपदी करुणार्तस्वरसे हाय २ कर श्रीकृष्णदेवको स्मरण करने लगी ।

यथा ।

सुनो फरियाद मेरी जी गोसाईं ।
निमाणी जालमो सें आ छुड़ाईं ॥
न कछु अपराध मेरा कसम तेरी ।
अचानक यमोंने पापिनीसी घेरी ॥ १ ॥
पुकारों कौन जो मुझको छुड़ावे ।
विना ते और कोई नजरी न आवे ॥
तुम्हीं इक पाण्डवोंके पक्षपाती ।
निहारो नेक जी अब जान जाती ॥ २ ॥
यह गज औ ग्राह सा झगरा नहींहै ।
हिरण्याक्ष प्रह्लाद सा रगरा नहीं है ॥
अनाथा सैकडों ग्राहों ग्रसी है ।
हजारों राक्षसोंमे आ फँसी है ॥ ३ ॥
करो अब देर ना चेतो दयालो ।

अपनीकरुणार्ति हारकता सँभालो ॥
हुए बिनप्राणसे पाण्डव विचारे ।
हरे छल द्यूतमें पाहि मुरारे ॥ ४ ॥
हे सखे श्रीकृष्ण गोविन्द वासुदेवा ।
विना तेरे न कोई सार लेवा ॥
यह अन्तिम दाद मेरी जी दयामै ।
बचावो किंकरी करके खलन खै ॥ ५ ॥
अहो मैं मन्दभागिनि पैद होई ।
सुकीर्ति श्वशुर पितु की भी बिगोई ॥
सुनेगो द्रुपद मुझको क्या कहेगो ।
दिवि श्वशुराभी सुन आंसू बहेगो ॥ ६ ॥
अहो ! पाण्डव बिचारे क्या करेंगे ।
इसी इक लाज जग जीते मरेंगे ॥
दियो मो जन्म क्यों भोरे विधाता ।
न मारी मातने हुई खेद दाता ॥ ७ ॥
हुई मैं बन्धुगणमें क्लेश हेतु ।
बनो श्रीकृष्ण ! दुःखाब्धि सेतु ॥
लँघावो पार जी देरी न कीजे ।
सुवेला यशो निज विस्तार लीजे ॥ ८ ॥

दोहा ।

परब्रह्म परमातमा, योगेश्वर यदुराज ॥
मैं शरणागत रावरी, राखहु मेरी लाज ॥ १ ॥

इत्यादि अनेक दीन वचनोंसे करीहुई द्रौपदीकी पुकार योगेश्वर श्रीकृष्ण-देवने द्वारकामे बैठेही शीघ्र श्रवणकरी और उसी समय अपनी योगमायाके प्रभावसे द्रौपदीके शरीरपर इतने असख्यात वस्त्र करदिये कि दुःशासनादि अनेकोने उतार २ कर अन्त पानेके लिये साहस किया परन्तु कुछभी न वन पडा शेपमे शरमिन्दे हो थककर वैठगये । अन्तमे दुर्योधनने पाण्डवोको वनवासकी आज्ञा दी और द्रौपदीको अपने अन्तः पुरमें दास्यभावसे रहनेको कहा, ऐसी आज्ञाको सुनतेही पाण्डव उठकर चलदिये जातीवेर धृतराष्ट्रको मिलनेगये तो द्रौपदीसे धृतराष्ट्रने कहा कि, हे द्रौपदी ! मैं तेरे शीलसे प्रसन्नहोकर कहता हूँ कि, मुझसे इस समय जो तेरी इच्छाहो तीन वर मागले, द्रौपदीने कहा कि. पिताजी यदि आप प्रसन्न हैं तो आप यही आज्ञा देवे कि, पाण्डवोको वनवास न दियाजाय (१) दूजे मैं पाण्डवोसे जुदी न करीजाऊ (२) तीजे अतः-पुरमे मेरेसे जूठे वर्तन न मलवायेजायॅ (३) धृतराष्ट्रने तीनो बातोंको स्वीकार किया इस विपरीत पितृआज्ञाको सुनकर दुर्योधनके चित्तमें वडा खेद हुआ और पाण्डवोंको फिर दृढ प्रतिज्ञापूर्वक द्यूतखेलनेके लिये हंकारा पाण्डवोने फिर स्वीकार किया पूर्ववत् फिर हारे तो प्रतिज्ञापूर्वक चौदहवर्षके वनवासको गये ॥

इति सभापर्व ॥ २ ॥

पाण्डवोके वनगमनसमय अनेक पौरजन तथा अनेक ब्राह्मण भी पीछेचले सहस्रों साधु ब्राह्मणोंने तथा पौरजनोने पाण्डवोंका पीछा किया तो युधिष्ठिर को अति चिन्ताहुई कि जगलमे हम इतने जनसमुदायका कैसे निर्वाह करसकेंगे इतनेहीमें अकस्मात् धौम्य ऋषिने आय दर्शनदिया तो युधिष्ठिरने अपनी चिन्ताका कारण वतलाया ऋषिने सूर्य्यस्तवनकी आज्ञादी युधिष्ठिरने सूर्य्यस्तवन किया तो सूर्य्यदेवने एक ऐसा स्थाली (बटुआ) प्रदानकिया कि जिसमे बनाहुआ खाना सहस्रों पुरुषोंके भोजन करनेसे भी खुटे कभी नहीं प्रतिदिन उसीमें अनेक पदार्थ बनाकर द्रौपदी सबको तृप्त करने लगी, वनमें पाण्डवोंको समय २ पर विदुर व्यास तथा श्रीकृष्णदेव मिलनेको जातेरहे जगलमें पाण्डवोंने कई एक राक्षस भी मारे अर्जुनने शकर

की प्रसन्नताकेलिये तप किया, शकर प्रसन्न होकर किरातरूप धरकर आये अर्जुनसे शकरका घोर युद्ध हुआ शेषमें अर्जुनकी शूरतापर प्रसन्न होकर महाराजने पाशुपत अस्त्र अर्जुनको प्रदान किया एव इन्द्रने रथ भेजकर अर्जुनको स्वर्गमे बुलवाया अति सन्मान किया और अनेकप्रकारके शस्त्र अस्त्र प्रदान किये, वहा ही उर्वशीनामक अप्सरा अर्जुनको देखकर मोहित हुई और एकान्तमें मिलनेकी प्रार्थना की तो अर्जुनने माता कहकर उसकी प्रार्थना अस्वीकार की उर्वशीने दु:खीहोकर पढ होनेका अर्जुनको शापदिया. पीछे युधिष्ठिरके पास बृहदश्व नामक ऋषि आया, युधिष्ठिरने उसे पूछा कि मेरीतरह आगे भी कोई राजा वनमे दु:खी हुआ है या नहीं तो ऋषिने पाण्डवोंको पूर्वोक्त नलोपाख्यान सुनाया और द्यूतविद्या भी सिखलाई, ऋषिसे नलोपाख्यान सुनकर तथा द्यूतविद्या सीख कर पाण्डव अतिसतुष्टहुए, एव वनमे फिरते भीमने अनेक राक्षसोके प्राणलिये । एक दिन शिकारको गया तो मार्गमें भीमको एक सर्प मिला वह अगस्त्यमुनिके शापसे राजा नहुष ही सर्प रूप था, उसने भीमको पकडकर खानेको चाहा तो शीघ्रही युधिष्ठिर पहुँचे और कहने लगे कि, हे सर्प ! मैं आपको खानेको देताहूं आप मेरे भाईको छोडदीजिये. सर्पने पूछा तू कौन है (यु०) मेरा नाम पाण्डव युधिष्ठिरहै (सर्प) मेरे प्रश्नोंका उत्तर दो तो मैं आपके भाईको छोडू (यु०) आपके कौन प्रश्न है ।

(सर्प) ब्राह्मणः को भवेद्राजन्वेद्यं किञ्च युधिष्ठिर॥ २०॥

हे युधिष्ठिर ! ब्राह्मण किसको कहते है ? और इस पुरुषको जानने योग्य क्या है ?

(युधि०) सत्यं दानं क्षमा शीलमानृशंस्यं तपो घृणा ।
दृश्यन्ते यत्र नागेन्द्र स ब्राह्मण इति स्मृतः॥ २१ ॥

हे नागेन्द्र ! जिस पुरुषमें सत्य, दान, क्षमा, शील परद्रोहाभाव, तप तथा लज्जा येह सात गुण हैं. उसको धर्मशास्त्रमें ब्राह्मण कहा है ॥ २१ ॥

(सर्प) शूद्रेष्वपि च सत्यं च दानमक्रोध एव च ॥
अनृशंस्यमहिंसा च घृणा चैव युधिष्ठिर॥२३॥

हे युधिष्ठिर ! सत्य, दान, क्षमा, शील, परद्रोहाभाव, तप, लज्जा इत्यादि अनेक सद्गुण शूद्रोमे भी देखनेमें आतेहैं ॥ २३ ॥

(युधि०) शूद्रे तु यद्भवेल्लक्ष्म द्विजे तच्च न विद्यते ।
न वै शूद्रो भवेच्छूद्रो ब्राह्मणो नच ब्राह्मणः२५॥
यत्रैतल्लक्ष्यते सर्प वृत्तं स ब्राह्मणः स्मृतः ।
यत्रैतन्न भवेत्सर्प तं शूद्रमिति निर्दिशेत् ॥२६॥

हे सर्प ! पूर्वोक्त सत्य दानादि धर्म यदि शूद्रमे हो और ब्राह्मणमे न हों तो उस शूद्रको शूद्र तथा उस ब्राह्मण को ब्राह्मण नहीं समझना चाहिये अर्थात् गुणकर्मानुसार व्यवहार करना चाहिये ॥ २५ ॥ हे सर्प ! पूर्वोक्त शुभ लक्षण जिसमे हो वह ब्राह्मण है तथा पूर्वोक्त शुभगुण रहित पुरुप शूद्र है ऐसाही धर्मशास्त्रोंमें कहा है ॥ २६ ॥

(सर्प) यदि ते वृत्ततो राजन् ब्राह्मणः प्रसमीक्षितः
वृथा जातिस्तदाऽऽयुष्मन्कृतिर्यावन्न विद्यते॥३०॥

हे दीर्घआयुवाले ! राजन् युधिष्ठिर ! यदि तने आचरणहींको ब्राह्मणपनेमे विशेष कारण माना है तो जबतक आचरण प्रचलित नहीं है तब तक ब्राह्मणत्वादि जाति तो वृथाही प्रतीत होती है ॥ ३० ॥

(युधि०) जातिरत्र महासर्प मनुष्यत्वे महामते ।
संस्कारात्सर्ववर्णानां दुष्परीक्षेति मे मतिः॥३१॥
सर्वे सर्वास्वपत्यानि जनयन्ति सदा नराः ।
वाङ्मैथुनमथो जन्म मरणञ्च समं नृणाम् ॥३२॥

इदमार्षप्रमाणञ्च ये यजामह इत्यपि ।
तस्माच्छीलं प्रधानेष्टं विदुर्ये तत्त्वदर्शिनः ॥३३॥

वनप० अ० १८१ ॥

हे विशालमतिवाले सर्पराज ! जाति तो इस प्रकृतमें एक मनुष्यत्व ही बनसकतीहै उसकी व्याप्य ब्राह्मणत्व क्षत्रियत्वादि जातियां नहीं बनसकतीं, क्योंकि दर्शनकारोंने हर एक जातिके व्यजक धर्म भिन्न २ माने हैं जैसे-गोत्व जातिका व्यजक तथा सम नियत धर्म शृग शास्नादिमत्व है अथवा मनुष्यत्व जातिका जैसे करचरणादिमत्व धर्म है, वैसे ब्राह्मणत्वादिका व्यजक सम नियत कोई नहीं है इसलिये सस्कारमात्रसे यावत् वर्णोंका परीक्षण अर्थात् निर्णय करना कठिन है ॥ ३१ ॥ सभी पुरुष कोईभी स्त्री मिले उसीमें सन्तान पैदा करलेते हैं एव बातचीत करना, भोग करना, जन्म या मरण इत्यादि भी सबके एकही सरीखे हैं ॥ ३२ ॥ यह वार्ता सभी ऋषिवचनोसे प्रमाणित है और (ये यजामहे) इत्यादि श्रुतिवचनभी जातिवर्णके अनिश्चयहीको सूचन करते हैं अर्थात् (ये वय यजामहे) इस कथनसे स्वात्मनिश्चयाभावपूर्वक यजन प्रतीत होताहै अन्यथा यदि पूरा निश्चय हो तो 'ब्राह्मणा वय' (यजामहे) ऐसा श्रुति उपदेश करती परन्तु श्रुतिने वर्णाश्रमनिश्चयाभावपूर्वक सामान्य-रीतिसे यजन कहा है । इसलिये तत्त्ववेत्ता लोग कल्पित जातिअभिमा-नको दूरकर केवल शीलहीको प्रधान समझते हैं ॥ ३३ ॥

इत्यादि पवित्र तथा सच्चे भावगर्भित युधिष्ठिरके वचन सुन सर्प प्रसन्न हुआ भीमको छोडदिया तो आगे चलते २ पाण्डव द्वैतवनमे पहुंचे वहा जगलमे दुर्योधनके पूर्वजोंके बनाये हुए गोरक्षाके लिये अनेक घोष (ग्वालग्राम) थे वहां समीप ही पाण्डवोंने भी कुछदिन निवास किया तो उधर दुर्योधनको भी कुछ खबर मिली तो उसने घोषयात्राके मिषसे पाण्डवों की वनवास दशा देखनी चाही, वड़े ठाठके समाजके साथ अनेक सुन्दर स्त्रियों को लिये उस वनमें आया तो मार्गमें चित्रसेन नामक गन्धर्वने उसकी स्त्रियां खोस लीं और उसको बॉधलिया इस वार्ताकी पाण्डवोंको खबरहुई तो युधिष्ठिरने उसके छुड़ानेके

लिये अर्जुनको भेजा तो अर्जुनका उस गन्धर्वसे घोर युद्ध हुआ शेषमें गन्धर्वने कहा, हे अर्जुन ! तू क्यो नाहक दूसरेके बीचमे पडा है अर्जुनने कहा यह दुर्योधन हमारा भाई है यदि और कोई होता तो मै आपके सामने कदापि शस्त्र न उठाता, गन्धर्वने कहा हमको इन्द्रने भेजा है, अर्जुनने कहा तौ भी क्या हुआ आपने मेरी तरफसे उनसे क्षमा मॉगनी. इस विचित्र कार्य्यको देख दुर्योधन बडा शर्मिन्दा हुआ और चुपचाप घरको चला आया, प्रतिदिन अनेकतरहके विचार कर शोकाग्निमे जलने लगा तो एक दिन एक दानवने उसकी प्रसन्नताके लिये झूंठीही आकाशवाणी करी कि, हे दुर्योधन ! तू भय मतकर तेरा विजय होगा और कर्ण अर्जुनको रणमे मारेगा, इस मिथ्या वचनको सुनकर दुर्योधनको फिर धैर्य्य हुआ और पाण्डवोंके नाशके अनेक उपाय सोचने लगा, उधर वनमे पाण्डवोके पास व्यासजीने आकर उनको अनेकप्रकारसे शान्ति दी, कणभक्ष मुद्गल ऋषिकी कथा सुनाई कहा कि द्वादशीके दिन दुर्वासा उसके वर अतिथि हुआ तो उसने जो अपने खानेको कई दिन कण वीनकर वनाया था वह दुर्वासा सभी खाय गया, ऋषिने प्रसन्न होकर खिला दिया, फिर दुर्वासा कई हजार ऋषिमण्डलको साथ लेकर दुर्योधनके घर गया तो उसने खूब उसकी सेवा करी इतना कह व्यासजी प्रस्थान करगये, उधर दुर्योधनने पर प्रसन्न होकर दुर्वासाजीने वर मॉगनेको कहा तो उसने कहा मेरी मनसा है कि आप इसी ठाठसे एकदिन वनमे पाण्डवोके भी अतिथि होवे दुर्वासाने तथास्तु कहकर वनमें पाण्डवों की ओर प्रस्थान किया वहाभी द्वादशीही को पहुँचे उधर पाण्डवोका भोजन होचुकाथा, ऋषिको असमय आने का पाण्डवों के चित्तमें विचार हुआ, ऋषिगण स्नान करने गये तो पश्चात् पाण्डवोंने श्रीकृष्णदेवका स्मरण किया उन्होने शीघ्र आनकर कारण पूछा, पाण्डवोने ऋषिका आगमन वतलाया, श्रीकृष्णदेव ने पाडवोकी स्थाली-मेंसे एक शिष्ट शाकका पत्ता लेकर मुखमे डाल यावत् विश्वको तृप्त किया पश्चात् स्नान करके ऋषिगण आये तो पांडवोंने भोजनके लिये प्रार्थना की तो सबने कहा कि. आज तो स्वयंही ऐसी तृप्ति हुई है कि एक मास भर फिर अन्नपर रुचि होनी कठिनहै. ऐसेही दुर्योधनकी प्रेरणासे जयद्रथने द्रौपदीको

चुरालिया पांडवों को खवर हुई, अर्जुनने मार्गहीमें उसके पीछे जाकर द्रौपदीको खोसलिया और उसको खूब मारा, उसने पाण्डवोके जीतनेके लिये शंकरका आराधन किया शंकर प्रसन्नहुए, उसने वर माँगा, तो शंकरने कहा कि अर्जुन-के सिवाय तू सबको जीतसकेगा क्योकि अर्जुन हमारेसे पाशुपत अस्त्र लेचुका है एव भीष्मपितामहने ब्रह्माका आराधन कर उससे वर माँगा।

परमापद्गतस्यापि नाधर्मे मे मतिर्भवेत् ।
अशिक्षितं च भगवन् ब्रह्मास्त्रं प्रतिभातु मे ॥

वनप० ३० अ० २७५।

परम आपदामें प्राप्त होनेसे भी मेरी बुद्धि अधर्मपरायण कभी न होवे और हे भगवन्! अशिक्षित आचरण करनेसे मेरेको आपका ब्रह्मास्त्र दिखाई देता-रहै, उधर पाण्डवोके पास मार्कण्डेयऋषि आये पाण्डवोको अनेक तरहके धर्मके उपदेश किये तथा रामायणभी सुनाया, पश्चात् एक दिन धर्मराजके सिवाय धर्मरूपी यक्षने एक जलाशय पर सबको मूर्च्छित करदिया. धर्मराजने कारण पूछा तो उसने अपने प्रश्नोका उत्तर माँगा, धर्मने उत्तर दिये तो यक्ष प्रसन्न हुआ और सभीको सावधानकर युधिष्ठिरको कईएक वर प्रदानभी किये ऐसेही यक्षका तिरोधान हुआ तो पाण्डव आगे चलेगये ऐसे ऐसे अनेक विचित्र चरि-त्रोंसे पाण्डवोंके १२ वर्षभी समाप्त हुए॥

इति वनप० ॥ ३ ॥

शेष एक वर्ष एकान्तवासार्थ समस्त ब्राह्मण. ऋषिमण्डलको प्रार्थना पूर्वक विसर्जन कर विराटराजाके नगरसमीप जाकर विचार करने लगे कि, क्या कहकर महाराजा विराटसे मुलाकात करनी चाहिये, भीमने कहा कि, मैं तो अपने को महाराजा युधिष्ठिरका सूपकार (रसोईया) कहूँगा, अर्जुन बोला कि, मैं अपनेको महाराज युधिष्ठिरके अत:पुरमे रहनेवाला बृहन्नला नामक हीजडा वताऊगा, नकुलने कहा कि मैं अपनेको महाराजा युधिष्ठिरकी अश्व-शालाका वैद्य कहूँगा, सहदेवने कहा कि, मैं अपनेको महाराजाका गोपालक

कहूँगा, द्रौपदीने कहा कि, मैं अपनेको महाराजाके अंतःपुरकी दासी वताऊगी इत्यादि विचारकालमें पाण्डवोंके पास अकस्मात् धौम्य नामक ऋषि आय प्राप्तहुए पाण्डवोंके पूछनेसे ऋषिने उनके विराट राजाके नगरमे रहने योग्य उपदेश किया, पश्चात् पाण्डवोंने अपने शस्त्रोको एक पुरानेसे वृक्षपर छिपाकर रखदिया और उसके समीपही एक पुरुषकी लाश पडी थी उसको उठाकर उस वृक्षके साथ लटकाय दिया, विराटभवनमें आपससे व्यवहारके लिये युधिष्ठिरने यथाक्रम अपने जय, जयन्त, विजय, जयत्सेन तथा जयद्वल येह पाचों नाम रखलिये और पुरमें प्रवेश किया सबसे पहले देवी भगवतीका स्तवनकर युधिष्ठिरने प्रवेश किया, विराटसे मेलहुआ उसने पूछा तो महाराजा युधिष्ठिरने अपनेको युधिष्ठिरका अक्षप्रयोक्ता कक-नामक ब्राह्मण कहा; उसके पीछे सूपकार कहकर भीमने प्रवेश किया, पश्चात् दासी कहकर द्रौपदीने प्रवेश किया राजभार्य्या सुदेष्णाकी सेवामे नियत हुई, वहाभी द्रौपदीने यह प्रतिज्ञा की कि, मैं जूठा भोजन नहीं करूंगी (१) जूठेपात्र मलने विना यावत् सेवा करूगी (२) परपुरुषका एकान्त सेवन नहीं करूगी (३) अन्यथा जो मेरेको चाहेगा मेरे पति गन्धर्व उसको मारडालेंगे, सुदेष्णाने सभी स्वीकार किया, पीछे सहदेवका प्रवेश हुआ, उसके पीछे अर्जुनका प्रवेश हुआ तत्पश्चात् नकुलका प्रवेश हुआ सभीको महाराजा विराटने तत्तत्कार्य्य पर नियत किया, ऐसेही एक दिन कईएक मल्ल आये विराटने उनके साथ भीमकी कुस्ती कराई, भीमने उसमे उनके उस्ताद जीमूतनामक मल्लको मारडाला, विराट वडा प्रसन्न हुआ ऐसेही विराटराजाके गृहमे पाण्डवोके १० मास गुजर चुके तो एक दिन विराटके साले सेनापति कीचकने अन्तःपुरमे द्रौपदीको देखा तो देखताही मोहित हुआ, अपनी भगिनी द्वारा द्रौपदी को अपने पास बुलाभेजा, सुदेष्णाकी आज्ञा मानकर द्रौपदी गई उसने एकान्तमे द्रौपदीसे प्रार्थना की परन्तु साध्वी द्रौपदीने उसकी तरफ दृष्टि भी न करी, उस दिन द्रौपदी जैसे तैसे चली आई परन्तु कीचक वडा दुःखी हुआ, कुछ दिनों के वाद किसी एक उत्सवके दिन अपनी भगिनी को कहकर द्रौपदी के हाथ कीचक ने मदिरा मँगवाई सुदेष्णाकी आज्ञा का न उल्लंघनकर

द्रौपदी अति दुःखी होकर गई. कीचक देखके प्रसन्नहुआ और प्रेमपूरित गद्गद गिरा तथा कामातुर होय द्रौपदीको बलात् पकडने लगा, वह बिचारी भयभीत हुईभागी तो कीचक निर्लज्ज होकर उसके पीछे दौडा दैवात् मार्गमे मदान्धतासे गिरपडा, द्रौपदी राजा विराटकी सभामे जाकर रोनेलगी, वृत्तान्त पूछनेसे द्रौपदीने सब सुनाया परन्तु विराटने अपने साले के मुलाहजेसे तथा द्रौपदीको दासी जानकर कुछ खयाल न किया, भीमभी उसकालमें उस सभाहीमें था उसने कीचकको उसी कालमें मारदेनेकी इच्छा करी परन्तु युधिष्ठिरने कुछ दिन शेष जानकर उसको रोकदिया । पश्चात् एकान्तमें भीमके पास द्रौपदी अपना-दुःख रोई तो भीमने कहा कि, हे सुन्दरि ! जैसे तू कहै वैसेही करू, द्रौपदीने-कहा कि इस दुष्टका विनाश किसीतरहसे अवश्य करना-चाहिये सो उसमें सहल उपाय यह है कि वह फिर मेरेको किसी न किसी तरहसे अपने पास बुलावेगा तो मैं उससे यह कहूगी कि, आप मेरे मिलनेके लिये कोई ग्रामसे बाहर मकान नियत कीजिये वह मानलेगा तो रूपान्तर से मेरी जगह- आपने जाकर-उसको मारडालना, भीमने द्रौपदीके इस मन्त्रको स्वीकार किया- कालान्तरमें उसने-द्रौपदीको किसी मिससे फिर बुलाया तो उसने कीचकके बोल-चालमे वही जवाब दिया जो कि विचार रक्खा था, द्रौपदीका ऐसा कथन सुनके कीचक अति प्रसन्न हुआ और ग्रामके बाहर स्थान नियतकर सायकाल उन्मत्त होकर द्रौपदीको बुला भेजा, उसकी जगह स्त्रीका वेष बनाकर भीम पहुचा तो उन्मत्त तथा कामातुर कीचक उसको द्रौपदी आई जानकर आगे उठ प्रसन्नहोय गले लपकने लगा, भीमने उसी वक्त उसके मुखपर एक लप्पड़ मारा तो थोडा काल उसकी होश उडगई फिर-सचेतहोकर भीमके सम्मुख युद्ध करने लगा, एक- प्रहर पर्य्यन्त दोनोका मल्लयुद्ध हुआ शेषमे भीमने उसको नीचे गिराकर लातोसे मार डाला और उसको वहां फैककर अपने स्थानपर चलाआया, प्रातःकाल कीचकके भाइयों-को तथा राजाको खबर हुई तो शोकातुर होकर उसकी दाहक्रिया करनेको लेगये. उसके मरणका कारण उनको विशेषरूपसे तो कुछ न प्रतीतहुआ परन्तु सामान्यरूपसे यह समझलिया कि द्रौपदीके कारण हमारे भाई के प्राण

गये हे इसलिये इसको इसके साथही जलादेना चाहिये, उनके ऐसे दुष्ट विचा- रोकी भीमको भी खबर लगी वह भी साथ गया जब उन सबने द्रौपदीको पकड़कर कीचककी चितामे फैंकना चाहा तो भीमने उन सबको पकड २ कर चितामें फैकना आरम्भ किया भीमसे भयभीत होकर सभी जलती चिताको छोड़ इधर उधर भागने लगा परन्तु वीर भीमने उसके सभी भाई जीतेही घेर घेर कर चितामे फैक जला डारे और जिनको चुगल समझा उनके शिरपर धप्पेमार उनकी जीभ काटडाली साथके लोग इस तमाशेको देखकर चकित होगये और कई यहभी कहने लगे कि भाई कुछ अनुचित नहीं हुआ 'जैसी करनी वैसा फल' शेषमे दाहक्रिया करके घरमे आये तो भीमने विराटसे कहा कि, कीचकके साथ उसके भाइयोंका बडाही प्रेमथा देखिये हमने बहुतही वारण किये परन्तु वे विना उसके एकदिन भी पीछे जीते न रहे किन्तु जीतेही उसके साथही जलमरे, विराटने कहा स्नेह तो उनका परस्पर अवश्यही था. एव डरके मारे भीमका नाम भी किसीने न लिया, द्रौपदी इस घटनाको देखकर अति प्रसन्न हुई उधर दुर्योधनने पाण्डवोके खोज निकालनेके लिये देशदेशा- न्तरमे अनेक दूत भेजे और सुशर्म्माको कुछ सेना देकर विराटनगरमें गोह- रणार्थ भेजा विराटके नगरके चारों दिशामे दो २ कोसपर गोशाला बनीथीं तो प्रथम सुशर्म्माने दक्षिणदिशाकी गौएँ चुराई, विराटको खबरहुई उसने चढाई करी दोनोंका खूब युद्ध हुआ शेषमें विराटने सुशर्म्माको बाँध- लिया. युधिष्टिरके कहनेसे भीमने छोडदिया राजा विराट पाण्डवोपर बडा प्रसन्न हुआ, फिर दुर्योधनके पुरुषोने राजा विराटकी उत्तरदिशाकी गौओंका हरणकिया गोपलोगोने आकर पुकारकरी उनकी पुकारको अन्तःपुरमें राजा विराटके पुत्र उत्तरने भी सुना वह स्त्रीमण्डलमें बैठा बडी ऐंठसे बोला कि, आज मेरे पास यदि कोई सारथी कामका होता तो एक गौभी न जाने पाती, वहा बैठी द्रौपदीने धीरेसे कहा कि, सारथीकी त्रुटिसे तो आप देरी न करे, यहां बृहन्नला (अर्जुन) अच्छा रथ चलाने जानता है उत्तरने कहा अरी बावरी वहां युद्धमे मरदोंका काम है कि हिजडोंका ? क्या मैं इसको साथ लेजाकर लोकमे अपनी हँसाई कराऊँ, अर्जनने कहा कि युद्धकी तरफसे

चाहो आपकी हाँसी हो या विजयप्रयुक्त प्रशसा हो इसकी प्रतिज्ञा मैं नहीं करता परन्तु रथचलानेके विपयमें यदि आपको हानि होय तो जो आपकी इच्छामें आवे मेरे को दण्डदेना, उत्तरने अर्जुनकी प्रतिज्ञा स्वीकार करी और चढाई करनेकी सेनाको आज्ञा दी, मार्गहीमे जाते गोहरण करनेवाले जनसमुदायको ललकारा उनमें कर्ण भी था वह अर्जुनको देखकर भयभीत हुआ तथा अपने साथके लोगों पास कुछ अर्जुनकी प्रशसाभी करनेलगा परन्तु उत्तर गोहारकसेनाके समुदायको देखकर वहुतही कातर हुआ अर्जुनको कहने लगा कि रथको लौटाकर घर लेचलो यह वहुत हैं इनका जीता जाना कठिन है, अर्जुनने वहुत धैर्य्य दिया परन्तु उसको कुछ न हुआ, शेपमे कहनेलगा कि अरे हींजडे ! क्या तू मेरे यहापर प्राण लिया चाहताहै यह कहताही रथसे उतर कर भागने लगा, अर्जुनने पकड कर उसके वाहु वाँधकर रथपर फैकदिया और पूर्वोक्त वृक्षसे अपने युद्धके शस्त्रास्त्र लेकर दुर्योधनकी सेनाके साथ युद्धारम्भ किया अनेक शूरवीर परस्पर मारेगये शेपमे अर्जुनने विराटकी सभी गौएँ छुडालीं, दुर्योधनादिने अर्जुनको पहचानलिया इसी गोहरणके युद्धमे अर्जुनने कर्ण, कृपाचार्य्य, द्रोणाचार्य्य, भीष्म, दु शासनादि अनेकोंको पीछे भगाकर लज्जित किया विजय प्राप्तकर अर्जुन राजकुमार उत्तरको प्रसन्नतापूर्वक घर मे लाया और उत्तरको अर्जुनने यह कहदिया कि तुमने युद्धके विपयमें मेरी वावत कुछ भी किसीको मत सूचन करना उत्तरने वैसेही किया, विराटने पुत्रके विजयका अत्यन्त उत्साह किया तथा पुत्रका वडा सन्मान किया, उसी समय युधिष्ठिरने वृहन्नलाकी प्रशसा करी कहा कि, उत्तरका विजय केवल वृहन्नलाके सवन्धसे हुआ है, विराट इस वार्ताको सुनकर वहुत क्रुद्ध हुआ और युधिष्ठिरको अपने पुत्रका निदक जानकर क्रोधसे उसके मुखपर एक पासेका गोट मारा वह युधिष्ठिर के नाकपर लगा लोहू चूनेलगा परन्तु वह रुधिर युधिष्ठिरने भूमिपर न गिरने दिया किन्तु सभी अपने वस्त्रपर लेलिया अन्यथा महान् अनर्थ होजाता क्योकि अर्जुन की यह प्रतिज्ञा थी कि जो युधिष्ठिरके रुधिरको भूमिपर गेरेगा मैं उसके उसी समय प्राण लूगा । अर्जुन उस समय सभामें था भी नहीं पीछेसे आया था परन्तु युधिष्ठिरने नेत्रक्रियासे उसको वारण

किया, ऐसा होनेसे उत्तरको अर्जुनकी शिक्षा भूलगई और उसी समय सभामें बोल उठा कि, हे पितः! आपने अनुचित किया जो इस कंकनामक ब्राह्मणका आपने तिरस्कार किया यह बिचारा सच कहता है मेरेको युद्ध यथार्थ-हीमें बृहन्नलाने जितादिया है आप इस ब्राह्मणसे क्षमा माग लीजिये, राजा विराटने पुत्रकी ऐसी वाणी सुनकर युधिष्ठिरसे क्षमा मागी, बृहन्नलाको बुलाकर राजाने उसका विशेष सन्मान किया तथा प्रशंसा करी अर्जुनने लडाईकी लूटसे लूटे हुए अच्छे २ वस्त्र उत्तरकी भगिनी उत्तराको लाकर दिये, एव विराट के निवास करते भी पाण्डवोंका वर्ष पूरा हुआ पांडव प्रसिद्ध हुए, राजा विराटने उनको पाण्डव जानकर बहुतही खुशी मनाई तथा उनसे विशेष स्नेह किया, शेषमें पांडवोंको अपना विशेषरूपसे बन्धु बनाने के लिये राजा विराटने अपनी पुत्री अर्जुन को देनीचाही उसका अर्जुनके साथ प्रेमभी था परन्तु अर्जुनने इस सम्बन्धको अनुचित समझा बहुतही कहनेसे अर्जुनने अपने पुत्र सौभद्रके साथ उत्तराकी सगाई स्वीकार की सौभद्रको बुलाकर उनही दिनोंमें विवाहभी कर दिया गया।

इति विराट पर्व ॥ ४ ॥

उधर धृतराष्ट्रको भी पाण्डवोंकी खबर पहुँची उसने विदुरको पाण्डवोंके लेआने के लिये भेजा, विदुर विराट राजाके नगरमें आये मिलकर पाण्डवोंके लेजानेका संङ्कल्प प्रकाश किया राजा विराटने अत्यन्त सन्मानपूर्वक पाण्डवों को विदा किया पाण्डवोंको हस्तिनापुर आये सुनकर द्वारकासे श्रीकृष्ण बलदेवभी उनके मिलने को आये, सबने मिलकर धृतराष्ट्र से तथा दुर्योधनसे पाण्डवों के भागके विषयमें बहुत कुछ कहा परन्तु दुर्योधनने एक न मानी शेषमें पाँचोंको पांच ग्राम देने तकभी कहा परन्तु दुर्योधनने न मंजूर किया बहुत ही कह सुनकर कृष्ण बलदेव द्वारकाजी चलेगये, परन्तु जातेवेर पाण्डवोंको युद्धकरने की सम्मति पूर्णरूपसे देगये पाण्डव आपसमे बैठकर युद्धका विचार करनेलगे (युधिष्ठिर) हे भाई! अब क्या करना उचितहै दुर्योधन तो हम लोगोंको कुछ दिया नहीं

चाहता (अर्जुन) जो आपकी आज्ञा होय सो कियाजाय (युधिष्ठिर) मैं आपलोगो की समतिके सिवाय विशेप कोई आज्ञा नहीं दे सकता (भीम) विना युद्धसे इस दुष्टसे कुछ मिलना कठिनहै (युधिष्ठिर) बन्धुओंका परस्पर युद्ध भी तो एक लज्जाका स्थान है (भीम)

युष्मान् ह्रेपयति क्रोधाल्लोके शत्रुकुलक्षयः ॥
न लज्जयति दाराणां सभायां केशकर्षणम्॥ १॥वेणी०

हे आर्य्य ! क्रोधपूर्वक शत्रुओंके कुल नाशकरने में आपको लज्जा आतीहै परन्तु भरी राजसभामे अपनी स्त्रीके केशकर्षण कियेजानेमे लज्जा नहीं आती यहभी एक आश्चर्य्यकी बात है ॥ १ ॥

(युधिष्ठिर) तथापि हे भाई ! जहातक बनपडे शान्ति तथा क्षमा से वर्ताव करना अच्छा होता है (भीम) महाराज शान्ति क्षमा से वर्ताव करना तो भीखमाँगके खानेवाले साधु ब्राह्मणो का काम है हम लोग क्षत्रिय हैं जहातक बनपडे नीतिसे वर्ताव करना उचित है (युधिष्ठिर) तो भाई नीति यही कहती है कि, आपसमें बन्धु बन्धु लडमरे ? (द्रौपदी) हे आर्य ! जिस दुष्टने आपलोगोके मारने के लिये खानेमे विप डलवाया, तथा जिसने आपलोगोके जलानेके लिये लाक्षामन्दिर निर्माण करवाया तथा जिसने छलका द्यूत खेलकर आपलोगोका सर्वस्व जीता तथा जिसने आपलोगोंके सामने मेरी बेइज्जती करी तथा जो अन्यायकारी दुष्ट दुर्योधन वर्तमानमे अनेक सत्पुरुषोंके समझानेसे भी आपलोगोंको आपके भागका एक तृणभी नहीं दिया चाहता ऐसे क्षुद्र नीच तथा द्वेपकको फिर २ बन्धु बन्धु कहते आपको लज्जा नहीं आती, पिछले दुःखोंको स्मरणकर (भीम) हे सुन्दरी ! तू शोक मतकर अब समय बहुत समीप आचुकाहै देख मै तेरे सामने इस सुयोधनके उरुस्थल गदासे चूर्ण करताहू तथा इसके सहकारी वर्गको भी शीघ्रही महानिद्रामे शयन कराताहू । महानिष्ठुर वचनोको श्रवणकर युधिष्ठिरको निश्चय हुआ कि भीमार्जुनादिको विना युद्ध किये सतोप न होगा तो महाराज युधिष्ठिरने कहा कि, हे भाई ! यदि आप सबकी ऐसी इच्छाहै तो युद्धकी तैयारी करो, अर्जुन उसी-

समय द्वारकामे श्रीकृष्णदेवके पास पहुंचा. उसको सुनकर दुर्योधनभी द्वारका गया, दोनोही आपसमे थोडेसे अन्तरमे एकदिन साथही जाय पहुँचे आगे श्रीकृष्णदेव विराजमानथे अर्थात् वस्त्रसे मुखाच्छादन कर शयनकियेथे. अर्जुन जाताही माहाराजके पाउँकी तरफ जाकर खडाहोगया और दुर्योधन राजमदान्ध हुआ जाकर महाराजके शिरकी ओर बैठगया, थोडीही देर पीछे महाराज उठे दोनोका प्रेमसे उचित स्वागत किया, शेषमे आगमनकारण पूंछा तो प्रथमही दुर्योधन बोला कि हमारा इनका सग्राम होनेवाला है आप किसीका पक्ष लेवोगे या दोनोतरफसे उदासीन रहोगे ? महाराज बोले आपलोग सभी हमारे समानही बन्धु हो हमको किसीका पक्ष करना उचित नहीं परन्तु थोडी बहुत जो कुछ सम्मतिभी हम देंगे तो उसीके पक्षकी देगे जो यहां हमारे पास प्रथम आया है, दुर्योधनने कहा प्रथम तो मैं ही आयाहूं महाराजने कहा हमने तो उठतेही प्रथम अर्जुनको देखा है । शेषमे महाराजने कहा कि हमारे पास सात अक्षौहिणी सेनाभी है हमारे तुम दोनो समान हो हम जिसके पक्षमें होंगे उसके पक्षसे शस्त्र उठाकर दूसरेका सामना नही करेंगे, तुम दोनोमे चाहो कोई हमको लेलो, चाहो हमारी सेनाको, महाराजकी ऐसी वक्रोक्तिको सुनकर दुर्योधन यही बोला कि मुझको तो आप अपनी सेना देदीजिये, महाराजने स्वीकारकिया, दुर्योधन उसी समय बलदेवजीके पास गया तो बलदेवने कहा जहां कृष्ण वहां मैं परन्तु शस्त्र मैंभी किसीकी तरफसे नहीं उठाऊँगा, दुर्योधनको इनही दोनोकी पाण्डवोको मदतका भारी भयथा परन्तु अब इनके प्रतिज्ञा वचन सुनकर निर्भय होगया सात अक्षौहिणी सेना लेकर घर चला आया, उधर श्रीकृष्ण बलदेवको साथ लेकर अर्जुन भी हस्तिनापुर पहुँचा इनको सेनाकी मदत द्रुपद विराटादि सम्बंधिराजाओंने करी उनही दिनोंमे बिदुरने धृतराष्ट्रको बहुतही नीतिका उपदेश किया परन्तु अन्धेने एक न सुना शेषमे युद्धकी तैयारी हुई दोनों तरफकी सेना जुटकर कुरुक्षेत्रके मैदानमे पहुँची ।

इति उद्योगपर्व ॥ ५ ॥

युद्ध आरम्भ हुआ पाण्डवोने युद्ध आरम्भके थोडाकाल प्रथम जाकर भीष्म

द्रोण दोनोंको नमस्कार किये, उन दोनोने इनको विजयपानेके आशीर्वाद कहे युधिष्ठिरने भीष्म द्रोणको युद्धमें सत्ता न देनेकी प्रार्थना करी तो उन दोनोने यह उत्तर दिया ॥

अर्थस्य पुरुषो दासो दासस्त्वर्थो न कस्यचित् ।
इति सत्यं महाराज बद्धोऽस्म्यर्थेन कौरवैः ॥ ४१ ॥

हे राजन् युधिष्ठिर ! यह पुरुष स्वार्थका दासहै और स्वार्थ किसीका दास नहीं यह वार्ता सत्यहै इसीलिये हमको दुर्योधनने स्वार्थसे बाँधलियाहै अर्थात् हमलोगोंने इस दुर्योधनका बहुत कालतक लवण खायाहै अब समयपर विपरीत होना कठिन है ऐसेही श्रीकृष्णदेवने कर्णको एकान्त करके बहुत समझाया तो उसने यह उत्तर दिया ।

न विप्रियं करिष्यामि धार्तराष्ट्रस्य केशव ।
त्यक्तप्राणं हि मां विद्धि दुर्योधनहितैषिणम् ॥ ४२ ॥

अ० २४३ ॥

हे श्रीकृष्ण ! मैं दुर्योधनका बुरा कभी नहीं करसकता किन्तु प्राणान्त तक जहांतक मुझसे बनपडेगा इसका हितही करूंगा इति । शेषमे युद्ध होनेलगा उधरसे सबसे प्रथम सेनापति भीष्म हुए, इधरसे अर्जुन हुए, अर्जुन भीष्मको सामने देखकर युद्धसे उपराम हुआ इसने अपने पितामहको तथा और सम्बन्धियो को मारना अनुचित समझा, इसी समय श्रीकृष्णदेवने भगवद्गीताका उपदेशकर अर्जुनको फिर सावधान किया आप उसके सारथि बने युद्धहोनेलगा परस्पर शूरवीर मरनेलगे अनेक शृगाल गृध्रादि जंगलके जीव पुरुषोंके मांस मज्जा मेद रुधिरादि को खान पान कर प्रसन्न होनेलगे, घोर युद्ध हुआ शेषमें रात्रिके समय युधिष्ठिरने पितामहके समीप जाकर हाथजोडके मृत्युका उपाय पूछा तो उसने अपनी मृत्युका उपाय शिखण्डीको आगे रख अर्जुनको बाण मारने कहा, युधिष्ठिरने अर्जुनको वैसेही कहा अर्जुनने शिखण्डीको आगे रखकर भीष्मको बाण मारा तो भीष्म अपने बाणोंकी सत्तासे शून्यहोकर गिर-

पडा मूर्च्छितहुआ. भाव यह कि, भीष्मको यह, प्रतिज्ञा थी कि स्त्रीपर या स्त्री वेषपर शस्त्र-न उठाना और शिखण्डीको एक ऋषिका शाप था वह कभी स्त्री भी होजाताथा इसलिये उसको सामने देखकर भीष्मने अपने शस्त्रोको छोड-दिया अर्जुनने भीष्मको मूर्च्छित किया ।

इति भीष्मपर्व ॥ ६ ॥

भीष्मके मूर्च्छित होनेसे दुर्योधनने सेनापति द्रोणको वनाया द्रोणाचार्य्यका भी अपने शिष्य पाण्डवोके साथ युद्ध होने लगा अश्वत्थामा -जयद्रथादि द्रोणके सहकारी हुए, जयद्रथने अर्जुनके पुत्र अभिमन्युको मारडाला उसके मरनेसे पाण्डव वहुत दुःखीहुए अपने विजयार्थ श्रीकृष्ण तथा अर्जुन दोनोंने महादेवकी उपासना करी महादेव प्रसन्नहुए विजयका वरप्रदानकिया, अर्जुनने जयद्रथको मारडाला यह धृतराष्ट्रका (जामाता) दामादथा इसके मरनेसे दुर्योधनादिको वडा खेदहुआ जयद्रथके मरनेसे द्रोणके आगे होकर अश्वत्थामा युद्ध करनेलगा. उधर कर्ण तथा कृपाचार्य्यकी परस्पर वातचीत होनेलगी कर्णने उसमे अपनी प्रशसा तथा अर्जुनकी निन्दा वोधन करी कृपाचार्य्यको कर्णके स्वप्रशसा वचन अति कुत्सित प्रतीत हुए शेपमे नहीं रहसका तो कर्णके कथनको हॅसीकर अर्जु-नकी प्रशसा करनेलगा कृपाचार्य्यने कहा, हे कर्ण ! क्या तू अर्जुनको भूलगयाहै और मैं क्या अर्जुनको नहीं जानताहूँ । जिस अर्जुनने गेदखेल तथा वाहुयुद्धादि में तेरेको अनेकवार नीचा-दिखलाया तथा जिस अर्जुनने सहस्रो राजकुमारोमे-द्रौपदी विवाही, तथा जिस अर्जुनने अपनी मनोहर वीरविद्यासे शकरको भी युद्धमें प्रसन्न किया तथा जिस अर्जुनने तुम सवसे विराटकी गौएँ छुडवालीं तथा जो वीरअर्जुन अपनी युद्धक्रियामें कदापि दम्भ छल कपटादिका लेशभी नहीं मिलने देता ऐसे महा पुरुषकी निन्दा करना तो अपनी लघुताकी वोधक है ॥ इत्यादि प्रशसावाक्य सुनकर कर्णको अतिक्रोध हुआ कृपाचार्य्यको वोला—

यद्येवं वक्ष्यसे भूयो ममाप्रियमिह द्विज ॥
तदा ते खड्गमुद्यम्य जिह्वां छेत्स्यामि दुर्मते ॥५७॥

यच्चापि पांडवान्विप्र स्तोतुमिच्छसि संयुगे ॥
भीषयन्सर्वसैन्यानि कौरवेयाणि दुर्मते ॥ ५८ ॥

द्रोणप० अ० १५८ ॥

कि, हे भिखारी ब्राह्मण ! हे मूर्ख ! मेरे सामने मेरी निंदा तथा मेरे शत्रुगणकी कीर्तिका वर्णन तुमने किया सो किया परन्तु यदि अब फिरभी करेगा तो मैं खड्ग उठाकर तेरी जिह्वा छेदन करूंगा ॥ ५७ ॥ हे दुष्टबुद्धिवाले ब्राह्मण ! ऐसे युद्धके समयमें तेरा पांडवोंका स्तवन करना कुछ उपकारक नहीं है किन्तु केवल कौरवोंकी सेनाके भयमात्रका हेतु है ॥ ५८ ॥

कृपाचार्य्यके प्रति कर्णके ऐसे दुर्वचन सुनकर अश्वत्थामाको बहुत बुरा प्रतीत हुआ और कर्णको कुत्सित वचन बोलने लगा, शेषमे कर्णने अश्वत्थामाको भी फटकारा और कहा. कि. तुम लोगोंकी जातिहीका यह नीच स्वभाव है जो मालिकके नमकहराम होना तथा शत्रुके प्रशसक होना परन्तु हम क्षत्रियोंसे तो ऐसा कदापि होना कठिन है हमसे तो जहातक बनपडेगा अपने उत्कर्षपूर्वक शत्रुओंका अपकर्षही सबको बोधन करेंगे इत्यादि सुनकर अश्वत्थामाने कहा थोडेही दिन बाकी हैं जो सबके सामने तेरा क्षत्रियपनेका अभिमान अर्जुन अनायासही तोडडालेगा इत्यादि वचन कहते हुए अश्वत्थामाको दुर्योधनने शान्त किया, कर्णने इन्द्रकी दीहुई शक्ति चलाकर घटोत्कच नामक भीमके पुत्रको मारडाला इतनेमें सम्मुख होकर द्रोण स्वय लडनेलगा थोडीही देरीमे अपने ब्रह्मास्त्रसे अनेक वीरोंके प्राण लेडारे ऐसी घटनाको देखकर अनेक ऋषिगण आये और द्रोणको उपदेश किया कि, तैने ब्राह्मण होकर अनेक निर्दोष जीवोंका विनाश कियाहै यह तेरा धर्म न था उन ऋषियोके उपदेशसे द्रोण युद्धसे उपराम होगया. और सबसे पूंछनेलगा मेरा पुत्र अश्वत्थामा जीता है कि मरगया है उसके उपराम करनेके लिये कई एक लोगोंने कहा कि मरगया है परन्तु द्रोणको अश्वत्थामाके मरनेका विश्वास नहीं हुआ वस्तुतः वह मराभी न था, केवल पाण्डवोंके पक्षके लोग उसको घेरेहुए वहकाही रहेथे, इतनेमे श्रीकृष्ण तथा युधिष्ठिर द्रोणके समीप आये तो उनसेभी पूंछनेलगा कि मेरा पुत्र जीता है या मरगया तो श्रीकृष्ण

देवने युधिष्ठिरको कहा कि तुम कहदो कि, तुम्हारा पुत्र मरगया, युधिष्ठिर बोला हे दीनबन्धो ! मेरी प्रतिज्ञा है कि मै ऐसा मिथ्याचरण कभी नहीं करता जो जिसमें दूसरेकी हानि होवे आगे जैसी आपकी आज्ञा हो करू, युधिष्ठिरके ऐसे सभावित वचनको सुनकर श्रीकृष्णदेवने कहा ।

संभवाँस्त्रातुं नो द्रोणात्सत्याज्ज्यायोऽनृतं वचः ॥
अनृतं जीवितस्यार्थे वदन्न स्पृश्यतेऽनृतैः ॥ ४७ ॥

अ० १९० ॥

कि, हे युधिष्ठिर ! हम लोगोकी द्रोणसे रक्षा करनेके लिये अर्थात् द्रोणसे हम लोगोंको बचानेके लिये तेरा सत्यसे मिथ्या बोलना अच्छा है क्योकि धर्मशास्त्रकी यह आज्ञा है कि अपने प्राण बचानेके लिये पुरुष मिथ्यावाद करताहुआ भी उसके दोपका भागी नहीं होता इति । श्रीकृष्णदेवका ऐसा उपदेश सुनकर युधि-ष्ठिरने द्रोणको कहदिया कि तेरा पुत्र युद्धमे मरचुका है युधिष्ठिरके कथनका द्रोणको विश्वास हुआ पुत्रविरहसे ससारसे उपराम होकर युद्धसे विरक्त हुआ तो द्रुपदके पुत्र धृष्टद्युम्नने द्रोणको मारडाला उधर अश्वत्थामाको अपने पिताका मरण सुनकर वडा शोकहुआ और कहनेलगा ।

मद्वियोगभयात्तातः परलोकमितो गतः ॥
करोम्यविरहं तस्य वत्सलस्य सदापितुः॥ १॥ वेणी०

कि, मेरे वियोगके भयसे मेरा पिता यहासे शीघ्र परलोकको चलागया अब मेरेकोभी ऐसे (वत्सल) प्रिय पिताको शीघ्र अविरहयुक्त करना उचित है, इत्यादि अनेकविध करुणापूरित वचनोंसे विलाप करताहुआ शेषमे युधिष्ठिरको सामने देखकर कहनेलगा ।

आजन्मतो न वितथं भवता किलोक्तं
न द्वेक्षि यज्जनमतस्त्वमजातशत्रुः ॥
ताते गुरौ द्विजवरे मम भाग्यदोषा-
त्सर्वं तदेकपद एव कथं निरस्तम् ॥ १ ॥ वेणी० ।

हे युधिष्ठिर ! जन्मसे लेकर तुमने आजतक कभी झूठ न बोला और नाहीं किसीके साथ तुमने द्वेषभाव किया इसीसे तेरेको लोग अजातशत्रु कहने-लगे । परन्तु मेरे मन्दभागके दोषसे अपने स्नेही तथा गुरु उसमे भी द्विज-वर मेरे पिताके लिये तैने अपने प्रणका सम्पूर्णरूपसे एकदम त्याग कैसे कर-दिया ॥ १ ॥ इत्यादि अनेकविध करुणामयी वाणियोंसे प्रिय पिता द्रोणको स्मरण करता हुआ अश्वत्थामा युद्धकरने लगा घोर युद्ध किया, पाण्डवोकी सेनाकी वहुतही हानिहुई शेषमे अर्जुनके बाणोसे त्रस्तहुए अश्वत्थामाके सगके योद्धा युद्धस्थल छोडकर भागनेलगे तो उनके प्रति अश्वत्थामा बोला ।

यदि समरमपास्य नास्ति मृत्योः ।
भयमिति युक्तमितोऽन्यतः प्रयातुम् ॥
अथ मरणमवश्यमेव जन्तोः ।
किमिति मुधा मलिनं यशः कुरुध्वे ॥ १ ॥ वेणी०

यदि युद्धके छोडदेनेसे मरणका भय छूटजाय तो यहासे भागकर स्थलान्तरमें जा छिपना उचित है, परन्तु यदि मरणका भय हरएक जगहमे बनाही रहताहै और मरभी अवश्यही जाना है तो काहेलिये वृथा भागकर अपने शूरताके उज्ज्वल यशको मलिन करतेहो इत्यादि वचनोंको कहकर अपने साथके योद्धाओको युद्धसे उपराम देखकर अश्वत्थामाभी उपराम हुआ ।

इति द्रोणपर्व ॥ ७ ॥

ऐसी दशा देखकर दुर्योधनने सेनापति कर्णको नियतकिया फिर युद्ध होने लगा, उसी समय कर्णने राजा शल्यको देवासुरसग्रामप्रसगसे त्रिपुरका शकरके हाथसे वध होना सुनाया, भाव उसके सुनानेका यह था कि, त्रिपुरासुररूप पाण्डवोके लिये मेरी शकररूपसे चढाई हुई है कर्णके ऐसे अभिमानयुक्त वचन राजा शल्यको शल्यकी तरह प्रतीत हुए और बोला कि हे कर्ण ! ।

आत्मनिन्दाऽऽत्मपूजा च परनिन्दा परस्तवः ॥
अनाचरितमार्य्याणां वृत्तमेतच्चतुर्विधम् ॥ ४५ ॥
अ० ३९ ॥

अपनी निन्दा या अपना आपही पूजन, परकी निन्दा या परका वृथा स्तवन करना यह आचरण आर्य्यलोगोके नहीं हैं इत्यादि कहकर कर्णको राजा शल्यने कहा कि, यदि तुम्हारी पाण्डवोके साथ सग्रामकी इच्छा हो तो मैं आपका सारथि बनताहूँ कर्णने मजूर किया युद्ध होनेलगा, प्रसगसे फिर कर्णने पाण्डवोकी निन्दा करी तो राजा शल्यने एक वणिक्पुत्रके काकपालनका दृष्टान्त सुनाया अर्थात् जैसे काक वोलना नहीं सीखाथा वैसेही हे कर्ण ! तुमभी हो, कर्णको शल्यका कथन वहुत बुरालगा. दोनो परस्पर अवे तवे करनेलगे तो दुर्योधनने बीचमे पडकर दोनोको शान्तकिया. कर्णका पाण्डवोसे घोर युद्ध हुआ, कर्णने अनेक शूरवीर स्वर्गधामको पहुँचाये, शेषमे अर्जुनके कठोर वाणकी चोटसे उसको आपभी उनहीका मार्ग ग्रहण करना पडा. अर्थात् कर्ण भी इस असार ससार सुखको छोडकर वीर अर्जुनके बाणसे प्राणत्यागकर स्वर्गधाममे प्राप्तहुआ ।

इति कर्णपत्र ॥ ८ ॥

कर्णका मरण सुनकर धृतराष्ट्रको वडा शोक हुआ दुर्योधनके दुःखको देखकर कृपाचार्य्य वोला ।

न युद्धधर्म्माच्छ्रेयान्वै पन्था राजेन्द्र विद्यते ।
यं समाश्रित्य युद्ध्यन्ते क्षत्त्रियाः क्षत्त्रियर्षभ॥९॥
अ० ४८ ॥

सम्बन्धिबान्धवाश्चैव योद्धव्या वै क्षत्त्रजीविना ।
वधे चैव परो धर्मस्तथाऽधर्मः पलायने ॥ १०॥
अ० ४८ ॥

कि हे राजेन्द्र दुर्योधन ! क्षत्रिय पुरुषको युद्धधर्मके सिवाय और कोई कल्याणका मार्ग नहीं है. हे क्षत्रियश्रेष्ठ ! इस कल्याणमार्गके उद्देशसेही यावत् शूर-

वीरोंकी युद्धमे प्रवृत्ति होती है ॥ ९ ॥ क्षात्रधर्मसे, जीनेवाले पुरुषको युद्धसमय अपने सम्बन्धी या बन्धु नहीं देखनेचाहिये। किन्तु उपस्थित कोईभी हो सबके साथ युद्ध करना चाहिये, भाव यह कि युद्धमें यदि क्षत्रिय माराभी जायगा तो परमधर्मकी बात है परन्तु युद्धके नामसे भागकर छिपनेका प्रयत्न करना तो महापाप है ॥ १० ॥

इत्यादि कृपाचार्य्यके सदुपदेश सुनकर दुर्योधनके चित्तमें फिर लड़नेका उत्साह होआया शीघ्रही उठा और कहनेलगा।

गृहे यत्क्षत्रियस्यापि निधनं तद्विगर्हितम्॥
अधर्मः सुमहानेष यच्छय्यामरणं गृहे॥३२॥अ०५॥

कि, हे आचार्य्य! आपने कहा सो सत्यहै घरमे क्षत्रिय पुरुषका मरना बहुतही निन्दित है उसमेभी क्षत्रिय होकर घरमे खाटहीपर मरजाना और भी निन्दित है इत्यादि उत्साहके वचन कहकर दुर्योधनने युद्धको फिर चढाई करी, शल्यको अपनी सेनाका सेनापति नियतकिया. घोरयुद्ध हुआ. युधिष्ठिरके बाणसे शल्यभी गिरा उसको गिरा देखकर दुर्योधनको बडा भयहुआ रणभूमिको छोडकर एक जलके तालाबमे जाकर छिपबैठा, पाण्डवोने बहुत अन्वेषण करा परन्तु कहीं न मिला, शेषमे धनका लोभ देकर पाण्डवोने भीलोसे पूछा तो उन्होने वह तालाब बतलादिया भीमने वहा जाकर दुर्योधनकी खोजकरी तो एक कन्दरामे छिपबैठापाया, भीम देखकर चले आये, आकर युधिष्ठिरसे कहा युधिष्ठिरने कृष्णको कहा कृष्णने भीमको कहा कि उसको पकडकर युद्धभूमिमें लेआओ। भीम फिर उस तालावपर जाकर उसको पकड़कर लेआया, कृष्णने दुर्योधनसे पूछा कि, क्या अब युद्ध नहीं किया चाहते दुर्योधनने कहा अवश्य कियाचाहता हू परन्तु एक एक के साथ जुदा जुदा युद्ध होना चाहिये, शेषमें भीमके साथ दुर्योधनका गदायुद्ध नियत हुआ दोनों वीर गदा उठाकर मैदानमें निकले दोनोंहीमे कम कोई भी न था महाविकराल युद्धहुआ देखने वाले लोगोंकी चित्तवृत्ति भी ऐसे क्रूरयुद्धको देखकर थरथराई

कई दिन तक युद्धहोनेसेभी जब दोनोमे किसीको निर्बल न देखा तो श्रीकृष्णने भीमको दुर्योधनके ऊरु भेदनकी प्रतिज्ञा स्मरणकराई भीमने स्मरणकर दुर्योधनके गदासे ऊरु भेदनकिये तो वह हार कर गिरपडा, वलदेवने दुर्योधनके गिरनेसे हाहाकार किया और भीमको कहा कि, हे भीम! तैने वडा बुरा काम कियाहै दुर्योधनको तुम्हे मारना न था किन्तु युद्धसे व्याचलन मात्र करदेनाथा क्योकि राजाका मारना धर्मशास्त्रसे निन्दितहै बलदेवकी ऐसी वाणी सुनकर भीमने कुछ उत्तर न दिया परन्तु दुर्योधनने मरण समय श्रीकृष्णको महाकपटी तथा छलिया कहा, उसके उत्तरमे श्रीकृष्णदेवने दुर्योधनको अभिमानी तथा अधर्मी कहा इत्यादि वार्तालापके अनन्तर दुर्योधनने सेनापतिका अधिकार अपने गुरुपुत्र अश्वत्थामाको दिया और थोडीही देर पीछे आप देवयान मार्गसे अनेक देवोंके सन्मानपूर्वक देवलोकमें प्राप्तहुआ ।

इतिशल्यपर्व ॥ ९ ॥

ऐसेही रात्रिभी हुई घोरयुद्धसे श्रान्तहोकर पाण्डवोंने विश्रान्त होना चाहा शत्रुकंटकक्लेशसे मुक्तहोकर पाण्डवोने निर्भयहोकर शयन किया तो अश्वत्थामाने रात्रिमे उनके पुत्र मारडाले जिस समय द्रोण मराथा तो उसके दुःखसे दुःखितहुए दुर्योधनने महादेवका आराधनकर एक उससे (शक्ति) वरछी पाईथी श्रीकृष्ण तथा पाण्डवोंके सिवाय हरएक पर चलनेका उसमे महादेवजीने सामर्थ्य भराथा, वही बरछी पाण्डवो पर निरर्थक समझकर अश्वत्थामाने उनके पुत्रोंपर सार्थक करी, उनमें धृष्टद्युम्नके साथ द्रौपदीका अतिस्नेहथा उसके मरनेसे द्रौपदीको भारी खेदहुआ पाण्डवोंने यह सारा कर्तव्य अश्वत्थामाका निश्चयकिया और द्रौपदीके दुःखको देखकर भीमके चित्तमे अश्वत्थामाके मारडालनेका विचार हुआ अश्वत्थामा कुरुक्षेत्रसे भागकर गंगाकिनारे आय छिपा, भीमने उसका पीछा किया गगा किनारे खोजनेसे अश्वत्थामाको पाया तो उसकी अच्छीप्रारब्धसे वहां उन दोनोंको व्यासदेवजी मिल गये उन्होंने अपना अपना वृत्तान्त व्यासजीको सुनाया तो व्यासजीने भीमको गुरुपुत्र तथा ब्राह्मण कहकर अश्वत्थामाके मारनेसे घोर पाप

बोधन किया अन्तमें व्यासजीके कहनेसे भीमने अश्वत्थमाको छोडदिया और व्यासजीने एक मणि जो कि अश्वत्थामाके सदैव पास रहतीथी वह छोडनेके सतोपमें भीमको दिलवादी भीमका मणिसे पूजनकर अश्वत्थामा ससारसे उपराम होकर उत्तराखण्डको चलागया और पाण्डवभी भीमके रणक्षेत्रमे आनेसे युद्ध-क्रियाको परिशेपकर विश्रान्त हुये ।

इतिसौप्तिकपर्व ॥ १० ॥

युद्धभूमिमें दुर्योधनादिका विनाश सुनकर उसकी माता गाधारी तथा दुर्योधनकी विवाहिता स्त्रियॉ हस्तिनापुरसे चलकर रणभूमिपर अपने मृतपुत्र तथा पतिका सुखदेखनेको आपहुँची, युद्धक्षेत्रमें दुर्योधनकी लाशके समीप जाकर उन्होने अनेक प्रकारके करुणार्तस्वरपूरित शब्दोसे दुर्योधनके गुण स्मरणपूर्वक विलाप-किया, श्रीकृष्णदेवको साथलेकर पाण्डवोंने उन सबको आश्वासन दिया, गान्धारीसे युधिष्ठिरने कहा, हे मात ! हम पॉचो भी तेरे दुर्योधन जैसेही पुत्र हैं, आपकी आज्ञाका हमलोग कभी उल्लघन नहीं करेगे दुर्योधन भाईके मरनेका हमकोभी वडा शोक है परन्तु क्या करें भावी प्रवलहै किसीकी कुछ पेश नहीं जाती, अब आपको धैर्य्य धरना चाहिये इत्यादि वचनोसे गान्धारीको सतोप-देकर पाण्डवोने मिलकर दुर्योधनादि सभीसम्बन्धियोकी जो कि रणक्षेत्रमे प्राण देचुकेथे यथा योग्य दाहादिक्रिया करी ।

इति स्त्रीपर्व ॥ ११ ॥

पाण्डव विजयपताकाको फहराते हुये कुरुक्षेत्रसे हस्तिनापुरमें आये तो सबसे प्रथम धृतराष्ट्रको मिलनेगये परन्तु पुत्रशोकातुर धृतराष्ट्र उनसे प्रसन्नतापूर्वक न मिला पाण्डवोका विजय सुनकर उनको आशीर्वाद देनेके लिये व्यासजी नारदजी तथा और भी अनेक ऋपिगण आये, भरी सभामे नारदजीने युधिष्ठिरसे विशेप विजयका कारण तथा चित्तकी व्यवस्था पूछी तो राजा युधिष्ठिरने कहा ।

विजितेयं मही कृत्स्ना कृष्णबाहुबलाश्रयात् ।
ब्राह्मणानां प्रसादेन भीमार्जुनबलेन च ॥ १२ ॥

इदं मम महद्दुःखं वर्तते हृदि नित्यदा ।
कृत्वा ज्ञातिक्षयमिमं महान्तं लोभकारितम् ॥१४॥
सौभद्रं द्रौपदेयाँश्च घातयित्वा सुतान्प्रियान् ।
जयोऽयमजयाकारो भगवन् प्रतिभाति मे ॥ १५ ॥

अ० १ ।

कि, हे ऋषे ! यह विजय मैने श्रीकृष्णदेवके वाहुवलसे तथा ब्राह्मणोकी कृपासे और भीम अर्जुनके पराक्रमसे लाभ कियाहै ॥ १३ ॥ यह दुःख मेरे हृदयमे सदैव वना रहताहै कि, जो मैंने अपनी जातिका विनाशकरके अपने राज्यलोभको कियाहै ॥ १४ ॥ हे भगवन् ! सुभद्रा तथा द्रौपदीसे उत्पन्न होनेवाले प्यारे पुत्रोंको रणभूमिमे मरवाकर जो मेरेको यह विजय लाभहुआ है वह मेरी हारहीके सदृशहै ॥ १५ ॥

और मैंने अपने सहोदर भ्राता कर्णको मारा यहभी मैंने महा अपराध किया है। कर्णके मरनेका दुःख मेरेको रात्रिदिन तपाता रहताहै, धर्मके इत्यादि वचनोको सुनकर ऋषिमण्डलने युधिष्ठिरका आश्वासन किया. और सवने कहा कि, हे धर्मपुत्र ! अव आपको राज्यशासन करना होगा इसलिये उचित है कि, आप अपने पितामह भीष्मसे कुछभी सद् उपदेश ग्रहण करे, युधिष्ठिरने कहा मेरेको पितामहके सामने मुखदिखानेमे लज्जा आतीहै श्रीकृष्णदेव पूछें तो मैंभी सुनलू । युधिष्ठिरके कहनेसे कृष्णदेवने पितामहसे पूछा परन्तु पितामहने श्रीकृष्णकी अति प्रशसा करतेहुए कहा, हे देव ! कौन ऐसी वार्ता मेरेको याद है जो कि, आपको अविदितहो, धर्म, नीति, ज्ञान, वैराग्य योगादि अनेक सद्विद्याओके निर्माता तथा विधाता तो आपहीहैं इत्यादि स्वविषयक श्रद्धापूरित भीष्मके वचन सुनकर श्रीकृष्णदेवने भीष्मसे कहा कि, हे पितामह ! आपके मुखसे युधिष्ठिर सुना चाहता है, तो भीष्मने कहा कि, हे देव ! उसको स्वय सामने होकर पूछना चाहिये । इतना सुनकर युधिष्ठिर स्वयं हाथवाँधकर पितामहके सन्मुख उपस्थितहुआ श्रद्धा भक्तिपूर्वक उपस्थित हुए युधिष्ठिरको देखकर पितामहने अनेक इतिहासोसे तथा युक्तिप्रमा-

णोसे गर्भित राजधर्मका, आप्तधर्मका तथा मोक्षधर्मका उपदेशकिया उस भीष्मके त्रिविध उपदेश सुननेसे पाण्डवोके हृदयमे अनेकप्रकारका विकाश हुआ और परमसन्तोषको प्राप्त होकर राज्यकार्य्योंको यथोचित करने लगे ।

इति शान्तिपर्व ॥ १२ ॥

तत्पश्चात् भीष्मने युधिष्ठिरको अपनी प्रजाके साथ यथायोग्य वर्ताव करनेका उपदेश किया. तथा स्वर्णरजत गोभूमि आदिके दानका महत्त्व बोधनकिया और उसी प्रसगसे सर्वधर्मोंसे उत्तम तथा साररूप हरिनामको कहकर युधिष्ठिरको ' सहस्रनाम ' का उपदेश सुनाया भीष्मकी ऐसी अनुशासना सुनकर युधिष्ठिरको बहुतही धैर्य्य हुआ ।

इति अनुशासनपर्व ॥ १३ ॥

इत्यादि सदुपदेशोके करते हुए भीष्मका नियत समय उत्तरायण आय प्राप्त हुआ, उचित अवसर जानकर भीष्मने यथेष्ट प्राणोंका त्याग किया उससे पांडवोको बहुत खेद हुआ युधिष्ठिर व्याकुल हुआ । श्रीकृष्णदेवने उपदेशसे प्रबुद्ध किया और उपदेशकर यथायोग्य दाहादि क्रिया भी भीष्मकी उसहीके हाथसे करवाई । उसके पीछे व्यासदेवजी भी पाडवोंकी खबर लेने आये, युधिष्ठिरको उदास देखकर व्यासजीने उसको अश्वमेधयज्ञ करनेकी आज्ञा करी, युधिष्ठिरने ऋषिकी आज्ञाके अनुसार यज्ञका प्रारम्भ किया यथोचित क्रियाके पश्चात् दिग्विजयार्थ अश्वविसर्जन किया अर्जुनको उस अश्वका अनुगामी रक्षक नियत किया पूर्ववत् श्रीकृष्णदेव अर्जुनके सारथि बने यज्ञपूर्ति अश्व विसर्जित अश्वने यथेष्ट पृथिवीकी परिक्रमा करनी प्रारम्भ करी, चतुरगिणी सेना समेत अर्जुन उसके अनुगामी हुये अनेक राजाओंने उस अश्वको बाधा और युद्ध किया परन्तु अर्जुनने श्रीकृष्णदेवकी साहायतासे सर्वत्र विजय लाभ किया जिन्होंने युद्ध करना न मुनासिब समझा वह अर्जुनको आगेसे भेट लेकर उपस्थित हुए शेषमें अनेक राजा महाराजाओंके मण्डलको साथ लिये अर्जुन हस्तिनापुरमे लौटकर आये, विजित राजा महाराजा लोग नानाविध वस्त्र भूषण धन धान्यादि भेटको हाथमे लेकर महाराजा युधिष्ठिरको मिले उसनेभी सभीका

यथायोग्य सन्मान किया यज्ञकी अन्तिम आहुतिके पश्चात् श्रीकृष्णदेवकी अनुमतिसे महाराजा युधिष्ठिरने सम्पूर्ण मण्डलेश्वरोका यथायोग्य सत्कारकर उनको अपने अपने देश जानेकी आज्ञा दी इसरीतिसे दिग्विजयपूर्वक अश्वमेधयज्ञ सम्पूर्ण होनेसे महाराजा युधिष्ठिरका राज्य निर्भयहुआ ।

इति अश्वमेधपर्व ॥ १४ ॥

अत्यन्त निर्भय होकर धर्मराज राज्य करनेलगा ऐसेही शान्तिपूर्वक १६ वर्ष व्यतीतभी होगये परन्तु समय समयपर भीमके वक्रभाषणसे धृतराष्ट्र बहुतही दुःखित होगया, भीम उसको सुना सुनाकर यह कहा करता कि, स्याने लोगोका लज्जाको नेत्रधर्ममानना वास्तवमें सत्य है, नेत्रहीन पुरुषके लज्जाका लेश नहीं होता, निर्लज्ज पुरुष विना अपनी पेटपूर्तिके उचितानुचित भी कुछ नहीं देखता । इत्यादि भीमके तोदित वचनोको सुनकर धृतराष्ट्र एकान्तमे आह मार मारकर रोयाकरता जब कभी युधिष्ठिर उसको देखलेता तो वह उसको बहुतही दीनता तथा प्रार्थनापूर्वक आश्वासन कर धैर्य्य देता । युधिष्ठिर कहता कि, हे पितः ! आप दुर्योधनको स्मरणकर वृथा खेदित मत हुआकरे, मेरी आपके चरणोमे दुर्योधनसे भी अधिक भावना है भावीही ऐसी थी अन्यथा हम कब अपने भाईको मारा चाहतेथे आपको अब यही उचित है कि, आप अब बीती बातोको भूलकर एकान्तमे स्वात्मसुखको अनुभव करे । इत्यादि ऐसेही फिर चौथे पाचवें मित्रमण्डलको साथ लेकर भीम धृतराष्ट्रके महलमें आता तो उसको सुनाकर दूसरेको कहता कि, हे भाई ! भोगोकी तृष्णा इस जीवको बहुतही निर्लज्ज करदेतीहै, सर्वस्व विनाशके पीछे तृष्णाही इस जीवके जीवनका हेतु है, समय समयपर तृष्णाही शत्रुओंको मित्र-तथा मित्रोको शत्रुरूपसे भी दिखला देतीहैं, एक तृष्णाहीके आधारसे मृतप्राय पुरुषभी जीवितसा दीखपडता है, वाह ! वाह ! देवी तृष्णे ! तेरी क्याही महिमा है इत्यादि भीमके वचन सुनकर धृतराष्ट्र बीचही बीच जलता रहता परन्तु अपने दुःखका किसीके पास प्रकाश कदापि नहीं करता ऐसे दुःखकालमे धृतराष्ट्रका समाचार पूछनेके लिये उसके पास व्यासदेव आये तो उसने अपना सारा हाल उनको निवेदन किया, व्यासजीने धृतराष्ट्रको गगा,

किनारे ऋषिकेशमे या बदरिकाश्रममे रहनेकी सम्मतिदी. धृतराष्ट्र तैयारहुआ युधिष्ठिरने मार्गव्ययका प्रबन्ध पूर्णरूपसे करदिया घरछोडकर प्रथम धृतराष्ट्र कुरुक्षेत्रमें गया वहा जाकर मृतपुत्रोके नामसे पिण्ड प्रदानभी किये एक वर्षपर्यन्त वहा ही निवास किया. सालपीछे युधिष्ठिर फिर मिलनेको कुरुक्षेत्र गया यावत् राज्यवैभवके साथ एक मासभर वहा रहा और श्रद्धाभक्तिसे धृतराष्ट्रकी सेवाकर उसकी प्रसन्नता लाभकरी, मासपीछे युधिष्ठिर हस्तिनापुर लौटआया और धृतराष्ट्र, विदुर, सजय, गान्धारी तथा कुन्ती यह पॉचो हरिद्वारको चलेगये. वहां उनको फिर व्यासजी मिले धृतराष्ट्रने बन्धुदुःख व्यासजीसे कहा तो व्यासजीने उसको गगाकिनारे लेजाकर सभी बन्धुवर्गका दर्शनकराया और उपदेशसे भी आश्वासनकिया. ऐसेही व्यासजीके उपदेशोंसे सचेत होकर धृतराष्ट्र उक्त विदुरादि चारोके साथ कुटी बॉधकर गगातीरपर ऋषिकेशमे निवास करनेलगा कुछ दिन वहा रहे तो एकदिन रात्रिको अकस्मात् वनको आग लग उठी उससे सारा वन दग्ध होगया उसीमे धृतराष्ट्र, गान्धारी तथा कुन्ती येह तीनो जलकर जीर्णदेहके दु खसे मुक्त होकर देवसदनको प्राप्त हुए। विदुर सजय पीछे बचे सो वह दोनो वहा ही साधुलोगोके साथ रहकर अपना समय व्यतीत करने लगे। इनका सभी वृत्तान्त नारदजीने पाण्डवोको आनकर हस्तिनापुरमे सुनाया तो पाण्डवोके चित्तको अत्यन्त खेदहुआ ऐसी घटनाके पीछे उदास होकर जैसे तैसे १५ वर्षतक युधिष्ठिरने और राज्यकिया।

इति आश्रमवासपर्व ॥ १५ ॥

उधर द्वारकामें यादवोंने एक लड़केको स्त्रीवेष बनाकर उसके पेटपर लोहेकी छोटीसी बटली बाँधकर महर्षि दुर्वासाके सामने करके पूछा कि, ऋषे। इस सुन्दरीके गर्भसे क्या उत्पन्न होगा, दुर्वासाजी समझ गये कि, यह दुष्ट उद्धत होकर हमारी हसी कररहे हैं, उन्होने झट यही कहा कि, हे बालको! इसके पेटसे यादवोंके सारे वंशके निर्मूल करनेवाला उत्पन्न होगा. ऋषिकी ऐसी क्रोधमयी वाणीको श्रवणकर यादवोंके बालकोको भारी भय हुआ, आपसमें बैठकर विचार करनेलगे शेषमे सबने यह निश्चय किया कि, इस

लोहपात्रको घिसकर समुद्रमे फेकाजाय तो अच्छाहै उसी समय उसको घिसना आरम्भकिया सभी घिसडाला शेपमे एक थोडासा टुकडा बाकी रहा सो वह ऐसेही सागमे डालदिया परमात्माकी इच्छासे तथा महर्पिके तपोवलसे उस घसे लोहेसे तो प्रत्येकभागसे शर कुशा उत्पन्न हुई और जो शेपरहा वडा टुकडा एकहीं फैकदियाथा वह एक मत्स्यने खाया उसको एक माछी धीवरने पकडा खानेकेलिये काटा तो उसके पेटसे वह लोहका फल निकला, उसने तेज चमकीला जानकर अपने वाणके मुखपर लगाया उसीसे प्रतिदिन शिकार करनेलगा, ऐसेही कुछ कालके पीछे उक्त ऋपिके शापको भूलकर एकदिन समुद्रके किनारे जाकर यादवोने यथेष्ट मदिरा पान करी, मदान्ध होनेके पीछ परस्पर विवाद कर लडनेलगे तो शस्त्रोके स्थानमे उसी शर कुशाको उखाड २ कर एक दूसरेको मारनेलगे जो कि, उसी लोहचूनसे उत्पन्न हुईथी निदान परस्पर 'सुन्दोपसुन्द' न्यायसे थोडेही कालमे सभी यादवोकी समाप्ति हुई । शेप रहे श्रीकृष्णदेव सो उनकोभी उक्त धीवरने उसी वाणका प्रयोग किया कि, जिसके मुखके अग्र वही लोहका हिस्सा लगा था, श्रीकृष्णदेव अपनी इच्छाके अनुसार प्रभासक्षेत्रमे जो कि द्वारकासे तीस चालीस कोस के फासले पर है एक पीपलके पेडके नीचे टॉग पर टॉग रखकर शयन कियेथे. दूरहीसे शिकारअर्थी वधिकको श्रीकृष्णदेवका चमकता चरण देखपडा उसने हरिणकी आँख समझी, परन्तु था वह कृष्णदेवके पादका पद्म, ऐसे विपरीत ज्ञानसे उक्त लक्ष्य पर वधिकने निशाना वनाया वह वाण श्रीकृष्णदेवके चरणमें आकर लगा इसी मिससे महाराज अपने कृत्रिमकायको छोडकर परम स्वरूपको प्राप्तहुए, पीछे व्याधने समीप आकर बहुतही पश्चात्ताप किया परन्तु फिर वनही क्या सकताथा, महाराजके कृत्रिमशरीरको उसीने सन्मानपूर्वक जलप्रवाह किया, उधर यादवक्षय तथा कृष्णपरलोक पाण्डवोंने भी सुनपाया, हाहाकार करनेलगे अर्जुनको द्वारकामे भेजा वह श्रीकृष्णदेवकी स्त्रियोको लेकर हस्तिनापुरमे आताथा कि मार्गमे भीलोने अर्जुनसे सभी स्त्रिया खोसलीं, बहुत दुःखी होकर हस्तिनापुर आया तो कृष्णदेवको स्मरणकर हाय ! हाय ! कर रोनेलगा युधिष्ठिरने कारण पूछा तो अर्जुनने कहा कि, हे राजन् श्रीकृष्ण

देवकी कृपासे जिस मैंने सारी पृथिवीका दिग्विजय कियाथा तथा उसीकी सहायतासे जिस मैंने अनायासही अपने शत्रु दमन कियेथे । एव जिसकी कृपासे मैंने जहां तहां प्रतिष्ठा लामकरीथी । -

सोऽहं नृपेन्द्र रहितः पुरुषोत्तमेन ।
सख्या प्रियेण सुहृदा हृदयेन शून्यः ॥
अध्वन्युरुक्रमपरिग्रहमङ्गरक्षन् ।
गोपैरसद्भिरबलेव विनिर्जितोऽस्मि ॥ २० ॥

हे नृपेन्द्र ! वही मैं अपने सखा प्यारे सुहृद् तथा हृदयरूप पुरुषोत्तमसे रहित हुआ हृदय शून्य अर्थात् मरे सदृश होगयाहूँ, हे राजन् ! मार्गमें महाराजके स्त्रीवर्गकी रक्षाकरते हुए मुझको महामूढ गोपाल भीलोंने स्त्रीकी तरह जीत लिया और पोडश सहस्र स्त्री जो कि मैं साथ लिये आता था सभी खोसलीं ॥ २० ॥

तद्वै धनुस्त इषवः स रथो हयास्ते ।
सोऽहं रथी नृपतयो यत आनमन्ति ॥
सर्वं क्षणेन तदभूदसदीशरिक्तम् ।
भस्मन्हुतं कुहकराद्धमिवोप्तमूष्याम् ॥२१॥

भागवत—अ० १९ स्क० ॥ १ ॥

हे राजन् ! यह मेरा धनुपभी गाण्डीव वहीहै और इसमे चलानेवाले बाण भी वही हैं वही रथ तथा उसके घोडेभी वहीं हैं और उनके चलानेवाला रथीभी मैं वही हूँ इसीकारण समुदायके प्रभावसे सभी राजा लोग चारोतरफसे नमन किया करतेहैं परन्तु यह सभी एक श्रीकृष्णदेवसे विना अर्थात् उसके न होनेसे एक क्षणमात्रमें ऐसे असद् होगये कि मानों जैसे भस्ममे हवन करना या किसी मायावी पुरुपसे ऋद्धि लामकरना अथवा ऊपर भूमिमे वीजबोना सर्वथा निरर्थकही होताहै॥२१॥अर्जुनके इत्यादि विलाप युक्त अनेक वचन सुन-

कर-महाराज युधिष्ठिरने अर्जुनको बहुतही धैर्य्य बोधनकिया परन्तु श्रीकृष्ण-देवके वियोगाग्निसे दग्धहुआ अर्जुन का हृदयकमल फिर क्योंकर प्रफुल्लित होसकताहै थोडेही दिनोमे बन्धुवियोगसे व्यग्र हुए पाण्डव आपसमें एक दूसरेको उपरामताकी बाते सुनाने लगे, श्रीकृष्ण जैसे महापुरुषके वियोगसे पाण्डवोका सांसारिक सुखसे उदास होना न्यायहीथा अन्तमे उदास होकर युधिष्ठिरने राज्यतिलक अपने पौत्र तथा अभिमन्युके पुत्र परीक्षित को दिया ।

इति मौसलपर्व ॥ १६ ॥

पाण्डवोंने उदास होकर द्रौपदी समेत अपनी राजधानी हस्तिनापुरको छोडदिया और सारे भारतमे यथेष्ट विचरने लगे, तीर्थ यात्रा करते हुए अन्तमें हिमालयको चलेगये परन्तु तथापि श्रीकृष्णदेवके वियोगाग्निसे तप्त पाण्डवोंको हिमालयभी क्या करसकताहै महाबरफमे चलते २ शेषमें आपसमे भी उदासहुए एक दूसरेकी सारतक कोई नहीं पूछता है, सबसे आगे युधिष्ठिरहैं और सबसे पीछे द्रौपदी हैं पादत्राणसे विना पैदल चलनेकाहै और चलनेवाले राजकुमारहैं, मार्गहिमालय जैसे विकट पर्वतका है फिर उसमें भी साथमे एक राजकुमारिकाका निर्वहनहै यदि ऐसी दशाके होतेभी पाण्डव आपसमे उदास न होवे तो परस्पर मुखजोडके भी क्या करसकते हैं ऐसेही चलती २ सबसे पहिले द्रौपदी बरफमे गिरपडी भीमने युधिष्ठिरसे उसके गिरनेका कारण पूछा तो धर्मने कहा कि, इसका नीतिपूर्वक बर्ताव न था किन्तु अर्जुनसे सबसे अधिक प्रेम रक्खा करतीथी, उसके पीछे सहदेव गिरा तो फिर भीमने धर्मसे पूछा तो धर्मने सहदेवको बुद्धिका अभिमान बतलाया अर्थात् सहदेव मानताथा कि, मेरे जैसा बुद्धिमान् ससारमे नहीं है, ऐसेही उसके पीछे नकुल गिरा, फिर अर्जुन गिरा, पीछे भीम गिरा तो भीमने सबका कारण पूछा, धर्मने नकुलको अपने सौंदर्य्यका अभिमान बतलाया अर्जुनको एकदिन शत्रुवधकी प्रतिज्ञाहानिरूप दोष कहा और भीमको कहा कि, तुम खान पानादिके समय सबसे अधिक भाग लिया करतेथे इन पाचो दोषोंसे पाचोहीके पीछे गिरकर बरफमें गलगये और एक धर्मही अकेला दूरतक आगेको चलागया, ऐसे विकट स्थलमें

एक कुत्तेके सिवाय धर्मका साथ किसीने न दिया, वह कुत्ताभी धर्मकी परीक्षाके लिये धर्महीका रूपान्तर था, दूरतक जानेसे इन्द्र अनेक देवगणके साथ विमान लेकर आगेसे राजा युधिष्ठिरको लेनेको आया, विमानमे उपविष्ट होकर स्वर्ग प्रस्थान की प्रार्थनाकरी तो धर्मने कहा कि, मेरे चार भाई और एक द्रौपदी स्त्री यह पाच पीछे हैं, उनके आनेसे चलेगे, इन्द्रने कहा, हे राजन् ! आपके भाई सहित द्रौपदीके वहॉ जापहुंचे केवल आपहीकी प्रतीक्षा है, धर्मने कहा तो यह कुत्ताभी तो हमारे साथहीहै, इन्द्रने कहा कुत्तेके जानेकी वहा आज्ञा नहीं है, धर्मने कहा तो ऐसे नियमित स्थानमे मेरेको जानेकी आवश्यकता नहीं है इन्द्रने कहा उस उत्तम स्वर्गभूमिमें आपके पुण्यपुञ्जका आपको विशेष भोग होगा, धर्मने कहा तुच्छ भोग लोभ जो कि सदा कदापि नहीं रहसकता उसके पीछे मैं अपने साथीका साथ छोडना अपने धर्म तथा न्यायसे विरुद्ध समझताहू। इन्द्रने कहा महाराज कुत्तेका पुरुषसे क्या साथ है, धर्मने कहा साथ तो स्पष्टही है परन्तु पुरुष तथा कुत्तेका परस्पर विरोधभी तो कुछ नहीं, इन्द्रने कहा आपको अकेले जाना न स्वीकार हो तो मैं जाऊ धर्मराजने कहा मैं कुत्तेको छोडकर नहीं जासकता आप जाइये ऐसा सुनकर इन्द्र चलनेही लगाथा जो उसी समय धर्म-स्वरूप कुत्तेने अपना वास्तव स्वरूपधारण किया और धर्मस्वरूप धर्मपुत्र युधि-ष्ठिरको कठसे लगालिया।

इति महाप्रस्थानपर्व ॥ १७ ॥

इन्द्रादिदेवोसे सन्मानित तथा उक्त विमानारूढ होकर धर्मपुत्र स्वर्गमे पहुँचा वहां दुर्योधनको महा ऐश्वर्य्यमे मग्न देखा युधिष्ठिरने पूछा मेरे भाई भीमादि कहां हैं, इन्द्रने कहा वह तो यहा पर नरकविशेष है उसमें हैं, युधिष्ठिरने उनको देखना चाहा इन्द्रने दिखलादिये परन्तु कहा कि, आप को यहां रहनेकी आज्ञा नहीं आपको दुर्योधन सदृश ऐश्वर्य्य भोगका हुकम है, धर्मने कहा, ऊपर जानेके लिये हुकमकी पाबन्दी हो सकती है कि, अपने अधिकारसे कोई अनुचित अधिक न लाभ करले परन्तु नीचे रहनेके लिये हुकमकी कोई पाबन्दी नहीं है जो चाहे अपने दर्जेसे नीचे यथेष्ट रह सकताहै इसलिये मुझे-ऐसे स्वर्गकी दरकार नहीं है जहॉ मेरे भाई नहीं है. अपने प्यारे भाईयोके साथ रहनेसे मेरेको नर-

कभी स्वर्गसे सौगुण अधिक सुखका जनक है, युधिष्ठिरकी ऐसी गम्भीर गिरा श्रवणकर धर्म बहुतही प्रसन्न हुआ और कहा कि, हे पुत्र ! यह तेरेको नरकप्रदर्शन तेरे मिथ्याभाषण मात्रका फल है । महा पुण्यात्मा तथा धार्मिक तेरे भाई कदापि नरकको नहीं जासकते अब मैं आपको यही आशीर्वाद देताहूं कि, तुम अपने भाइयोके साथ दीर्घ कालतक स्वर्गसुखको अनुभव करते हुए शेषमे परमधामको प्राप्त होवो ।

इति स्वर्गारोहणपर्व ॥ १८ ॥

इस रीतिसे पण्डितजी महाराज कर्मका वेग राजा महाराजाओंकी भी बुरी दशा करडालता है तो इतर जीवोकी तो कथाही क्याहै ऐसे कहकर राजकुमारने राजसभामे अपने समुदित अर्थका बोधक एक छन्द पढा सो वह यह है—

छप्पय ।

कर्मवेग श्रीरामचन्द्र लख वनको लीनो ।
कृष्ण मात पितु कर्मवेग कारागृह दीनो ॥
हरिश्चन्द्र नृप कर्मवेगने कीनो दासा ।
चन्द्रहास प्रियपाल मदनको कीनो नासा ॥
कहों कहांलों कर्मकी पृथा पुरुष खोवे सभी ।
धूर मिलें साधन सकल कर्मवेग होवे जभी ॥ १ ॥

इति तृतीय विश्राम ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थ विश्राम ४.
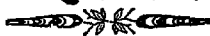
राजकुमारके मुखसे पूर्वोक्त गर्जित गिराको श्रवणकर पण्डितने मनमें विचारा कि इस अति दृढविश्वासी राजकुमारके निश्चयको विचालन करना साधारण कार्य्य नहीं है । (प०) हे राजकुमार ! यह पूर्वोक्त आपका यावत् कथन शास्त्रतत्त्वको न जानकर है अतएव अविचारित रमणीयहै । सावधान

होकर शास्त्रतत्त्वको श्रवणकर जो तेरेको निःसन्देह बोध होवे। प्रथम कर्म कर्म जो तुम पुकारतेहो उन कर्मोंका भेद श्रवणकर वह कर्म प्रथम सञ्चित, क्रियमाण, प्रारब्ध भेदसे तीन प्रकारके हैं। उनमेभी जो पूर्व अनेक जन्म जन्मान्तरमे करे वर्तमानकालमें फलके अननुमुखहै वे सञ्चित कहे जातेहैं। और जो वर्तमान जन्ममे कियेजावे वे क्रियमाण कर्महैं। एव वर्तमान शरीरमे फलोन्मुख कर्मोंका नाम प्रारब्धहै। उनमेंभी सञ्चितकर्म शुभाशुभ भेदसे दो प्रकारके हैं। और क्रियमाण कमभी विहित निषिद्ध भेदसे दो प्रकारकेहैं। पुरुषप्रवृत्तिके उद्देशसे वेदादि बोधितक्रिया विशेषका नाम विहित कर्महै ऐसेही पुरुषकी निवृत्तिबोधक वेदादि कथितक्रिया विशेषही निषिद्ध कर्महैं। उनमेंभी नित्य नैमित्तिक काम्य प्रायश्चित्तिक भेदसे विहित कर्म चार प्रकारके हैं। जिनके न करनेसे पाप हो और करनेसे फलविशेष न होवे, वे नित्यकर्म हैं जैसे स्नान सन्ध्या वन्दनादि जिनका किसी निमित्त विशेषको लेकर विधान होवे वे कर्म नैमित्तिक हैं। जैसे दान श्राद्धादि अथवा अवस्थासे या जातिसे या आश्रमसे या विद्यासे या धर्मसे या ज्ञानसे वृद्धपुरुषके आगमनसे उत्थानादि। इनमें पूर्व पूर्वसे उत्तर उत्तरको अधिक उत्तम लिखाहै, एव फलार्थविहित क्रियाविशेषका नाम काम्यकर्महै जैसे वृष्टिकामनावाले पुरुषके लिये शास्त्रविहित कारीरी यागादि हैं ऐसेही पापनिवृत्तिनिमित्त शास्त्रबोधित क्रियाविशेषका नाम प्रायश्चित्त कर्म हैं जैसे अभक्ष भक्षणसे वा अपेय पानसे द्विजको कृच्छ्रचान्द्रायणादि ऐसेही प्रायश्चित्त कर्म साधारणासाधारणभेदसे पुनः दो प्रकारका है। साधारण जैसे—यावत् पाप निवारणार्थ गगास्नान ईश्वरोपासनादि। असाधारण जैसे—कृच्छ्रचान्द्रायणादि। (राजकु०) पण्डितजी महाराज मेरे चित्तमें थोडीसी शंकाहै यदि कहो तो बीचहीमें छलूं। (प०) हे प्रिय! कैसी वह शकाहै पूछिये, (राजकु०) महाराज क्या गगास्नानसे भी पाप दूरहोतेहैं (प०) अवश्य होतेहैं क्यों कि, शास्त्रमे विधानहै। (राजकु०) महाराज क्या युक्तिशून्य शास्त्रको भी आप सत्यही माना करतेहैं। (प०) कभी नहीं। (राजकु०) तो फिर सावयवगंगाजलसे निरवयवपापोंकी निवृत्ति कैसे? सावयवपदार्थसे सावयवका तथा निरवयवसे निरवयवका विनाश लोकप्रसिद्ध है जैसे दण्डादिसे

घटादिका या ईश्वर स्मरणसे पापोंका इत्यादि सावयव नाम हिस्सोंसे बनेहुए कार्य्यका है । तथा निरवयव नाम विभाग शून्यका है । (प०) हे राजकुमार ! सावयवसे सावयवपदार्थकी ही निवृत्तिका नियम नहीं है. देखिये दण्डसे घट तथा उसके रूप दोनोंका विनाश होताहै तहां रूप निरवयव है, ऐसेही गगाजलभी सावयव शरीरके मलको तथा निरवयव पाप इन दोनोंको निवारण करसकताहै । ऐसेही निरवयवसे भी निरवयवका तथा निरवयव सावयव दोनों का विनाश होसकताहै । जैसे स्वामीके निरवयव शब्दसे सेवककी निरवयव विपरीत क्रियाका अथवा मत्रादि निरवयव शब्दोंसे निरवयवसर्पादि विष तथा सावयव शोथ इन दोनोंका विनाश देखनेमे आताहै ऐसेही सावयवसे केवल निरवयवका विनाशभी हो सकताहै । जैसे—औपधी सेवनसे ज्वरादिका । इस रीतिसे अनेक प्रकारका नाश्य नाशक भाव इस विचित्र ससारमे प्रतीत होताहै । उसमे भी जिसमे शास्त्र-रूप दृढ प्रमाण मिलसके उसका न मानना भूलके सिवाय और क्या कहसकतेहैं। (राजकु०) आपके उदाहरण कथनसे तो मत्र यत्रादि मे भी कारणता प्रतीत होतीहै अर्थात् मंत्र यत्रादिभी कार्य्यकर प्रतीत होतेहैं। (प०) लोकप्रसिद्ध पदार्थ का किसी एकके न माननेसे अभाव नहीं होसकता, आर्य्यलोग कुरानको तथा यवनलोग पुराणको नहीं मानते क्या वो नहीं है ? (राजकु०) गगा जलसे क्या सर्वसाधारणके पाप दूर होतेहैं या कि किसी अधिकारी विशेपके ? यदि सर्व साधारणके कहो तो अति अन्यायकी वार्ता है, क्योंकि ऐसे तो धमद्वेपी यव-नादि भी गगास्नानादि करके अनायासही आर्य्य पदको लाभ करसकते हैं। (पं०) हे प्रिय ! संसारमे पदार्थ प्रायः दो प्रकारके प्रतीत होतेहैं । केचित् वस्तु शक्तिगम्य हैं । जैसे अपनी शक्तिसे अधिक विष भक्षणानन्तर प्रबल औषधी न मिलनेसे प्राणिमात्रका मरणही होता है यथा जल वा अग्नि सबको शीत तथा उष्णही प्रतीत होतेहैं । अथवा सुखकी इच्छा प्रत्येक प्राणीके चित्तमे सदृश विराजमान है इत्यादि । और केचित् आप्त उक्त विश्वास गम्य हैं। जैसे—पाप, पुण्य ईश्वरसत्त्व वेदादि पुस्तकोंमे प्रामाण्य इत्यादि, इनसे फलाफल सबको नहीं होता, किन्तु यथार्थ वक्ताके वचनपर जिसको विश्वास है उसीको फल होसकता है दूसरेको नहीं; जैसे—एकही शीतउष्णसहनरूपा

क्रियासे संयमीको सिद्धि आदि सामर्थ्य तथा शरीर त्यागानन्तर शुभगति प्राप्त होतीहै। और असयमीको केवल शरीरक्लेश मात्रही होताहै। ऐसेही श्रद्धा विश्वासयुक्त पुरुषको गगास्नानादिसे पापनिवृत्तिरूप फल अवश्य होताहै। तथा श्रद्धाहीन पुरुषभी शारीरिक मलापहरण कर स्वच्छताको लाभ करसकताहै। यदि कोई यवनभी कदाचित् आप्त उक्त उपदेशसे श्रद्धा भक्तियुक्त होय तो उसकेभी पाप अवश्य दूर होसकतेहै। जिसकी श्रद्धा भक्ति नहीं है उसके नहीं होते। (राजकुमार) आपने कहा सो मैंने जानलिया अव अक्रतमे कहिये। (प०) हे राजकुमार! पूर्वोक्त यावत् कर्मोंका भेद पुरुषप्रयत्नजन्यहै। ससारमात्रमें कोईभी ऐसी विहित वा निषिद्ध क्रिया नहीं हैं जो कि, पुरुषप्रयत्नसे विना होसकें। और प्रयत्नहीका नामान्तर उद्योग है। जिसको तुम कर्मवेग नामसे पुकारतेहो वहभी इसी जीवका पूर्वकृत उद्योग है पूर्वउद्योगसे उत्पन्न हुए फलोन्मुख कर्मोंको तुम प्रवल प्रवल पुकारतेहो क्या कदापि सुयोग्य पिताके विद्यमान होते पुत्रको स्वाराज्य होसकता है? प्रारब्धकर्मउद्योगहीसे जन्मलाभकर किंचित् काल स्थायी होय सदा एक रस उद्योगको कदापि नहीं दवा सकते। प्रारब्धकर्मोंका भोगानन्तर नाश होताहै इसलिये किंचित् काल स्थायी हैं और उद्योगजीवात्माका गुण जन्म जन्मान्तरमें भी तुल्यरूपसे विद्यमान रहताहै. याते प्रारब्धसे प्रबल है और पूर्व जो आपने कर्मवेगमे उदाहरणरूपसे महाराज नलका तथा पाण्डवोंका उपाख्यान सुनाया वहभी विचार करनेसे हमारेही पक्षका साधक प्रतीत होताहै, हमको वहा भी उद्योगही की न्यूनता प्रतीत होतीहै यदि और विद्याओंकी तरह महाराजा नलने द्यूतविद्यामें भी उद्योगसे अभ्यास किया होता तो विमातृज भ्रातासे द्यूत खेलकर पराजित कैसे होता किन्तु जसे पीछे द्यूतविद्या को सीख कर उसी महाराज नलने फिर उस विमातृजको द्यूतहीमे पराजित किया, वैसे प्रथमही करलेता याते द्यतविद्याऽभाव प्रयुक्त उद्योगकी न्यूनता स्पष्टही प्रतीत होतीहै, ऐसेही महाराज युधिष्ठिरभी जैसे शस्त्रविद्यामें अग्रगण्यथे वैसेही द्यूतविद्यामें भी उद्योगी होते तो क्या दुर्योधनादिसे द्यूतविद्यामें पराजित होते? कदापि नहीं, याते हे राजकुमार! यह

दृढ निश्चयकर कि जहां जहां यत्न करनेसे भी कार्य्यकी सिद्धि यथावत् नहीं होती वहा वहा उद्योगही की न्यूनता है जिन अल्पबुद्धि पुरुषोंको स्वकार्य्य-सिद्धिके लिये यथावत् प्रयत्न करना नहीं आता उन आलसी निर्लज्जोका कार्य्य शेषमें यह उत्तर है कि (जो हमारी प्रारब्ध) वस्तुतः प्रारब्ध कुछ वस्तु नहीं उद्योगकी न्यूनताही को अशिक्षित लोग प्रारब्ध शब्दसे पुकारा करतेहैं ।

छप्पय ।

ध्रुव बालक उद्योगसाध निश्चल पद पायो ।
कर उद्योग नृसिंह दास प्रह्लाद बचायो ॥
उद्यम कर गज ग्राह काट निज दास उबारयो ।
कर उद्यम किल कंस वंश को मूल उपारयो ॥
इसी तौर केतक गिनों दासन हित हरि कीन जो ।
विन उद्यम नहिं कछु कियो आन जीवकी कथाको २

ऐसेही हे राजकुमार ! यदि उद्योग कुछ वस्तु न होता तो पॉच वर्षका वालक ध्रुव अपने पिता उत्तानपाद राजाकी गोदसे विमाताके उठानेसे कैसे क्रुद्ध होता और अपनी मातासे कैसे पूछता कि, हे मातः ! बडे कैसे वनाजाताहै और उसको माता कैसे कहती कि, हे पुत्र ! तपश्चर्य्यासे उच्चपद प्राप्त होताहै । औ वह कैसे मातृवचनपर विश्वासकर उच्च निश्चलपदको प्राप्त होता, यदि तुम्हारी तरह प्रारब्ध परही विश्वासी होता तो उसके भी यही कहने योग्य था, कि, विमाताने हमको पिताकी गोदमेंसे उठादिया है क्या करे हमारी प्रारब्ध, हे राजकुमार ! उद्योगी पुरुषके मुखसे यह शब्द कदापि नहीं निकलता कि, हमारी प्रारब्ध किन्तु कार्य्यकी पूर्णरूपसे सिद्धि तक अपने उद्योगहीकी न्यूनता मानता चलाजाताहै, यदि प्रारब्धही मुख्य होती तो वैसेही परमात्माभी जानते कि, हमारा भक्त प्रह्लाद स्वपितासे नानाविध क्लेशको प्राप्त होरहा है क्या करें उसकी प्रारब्ध तो कैसे अपने प्यारे भक्तकी नृसिंहरूप होके रक्षा करसकते याते

परमात्माभी नृसिंहरूपसे उद्योगहीकी प्रधानता बोधन करते प्रतीत होते हैं, ऐसेही गजभक्तका ग्राह काटना तथा कंसादिका नाश करना भी भगवान्का उद्योगहीकी प्रबलताको बोधन कररहा है, हे राजकुमार ! उद्योगियोंकी प्रथा कहांतक कहें, आपने एक टिट्टिभ पक्षीकी आख्यायिका नहीं सुनी जो कि प्रति दिन समुद्रके किनारेपर रहा करताथा और दैवात् उसके बच्चे समुद्रने बहालिये तो उसने प्रजा प्रेमाकुल होकर समुद्र शोषण करनेकी प्रतिज्ञा करली तो वे दोनों पति पत्नी अपने पक्ष समुद्रमें वारम्बार भिगोकर धूलिमें लोटनेलगे बहुतसे पक्षि-गणके उपदेश करनेसे भी वारण न हुए तो कई एक पक्षी उसकी सहायताभी करने लगे पक्षी प्रजाका दुःखवृत्तान्त गरुड भगवान्कोभी श्रवण हुआ शीघ्र जाकर समुद्रकिनारे अनेक पक्षिगणको व्याकुल देखा गरुडने समुद्रको एक पक्षकी झपट लगाई तो पीडितहो मूर्तिमान् बन हाथजोड आगे आन खडा हुआ, कहा कि, आज्ञा कीजिये दासने कौन अपराध करा है, गरुडने कहा कि, हमारी प्रजा तुम्हारे सम्बन्धसे क्यो दु.ख उठारही है तो उसी कालमे समुद्रने टिट्टिभ पक्षीके बच्चे लाकर दिये और अति दीनतासे गरुडजीके आगे अपनी न्यूनता निवेदन करी. इसी रीतिसे हे राजकुमार ! यदि उद्योगी पक्षीभी महान् भारी कार्य्यको करसकतेहैं तो पुरुष उद्योगीसे न होगे ? इसमे क्या कहना है। उद्योग पूर्ण तौरपर होना चाहिये कार्य्य अवश्यही होता है। देखिये पाचक पुरुष प्रतिदिन उद्योगसे पाक बनाताहै, यदि कुछ बीचमे प्रमाद न करे तो कदापि मन्द तथा अभक्ष्य नहीं बनता. ऐसेही शिल्पविद्या कुशल पुरुष प्रतिदिन अनेक प्रकारके विचित्र कार्य्य बनाताहै। यदि बीचमें प्रमाद न करे तो सर्वथा सर्वां-गपूर्णही उतरतेहैं। वैसेही कृपिकार प्रतिवर्ष कृषी पृथिवीमें बोतेहैं. प्रमाद न होय तो सदाही शुभ फला करतीहै. प्रमादका कारण अनुद्योगी पुरुषके अभ्या-सकी न्यूनताहै। और उद्योगी अभ्यासी पुरुषको तो प्रमाद होना संभवही नहीं।

इति कर्मविभागे चतुर्थो विश्रामः ॥ ४ ॥

अथ पंचमो विश्रामः ५.

(राजकु०) आपका कथन यथार्थ है परन्तु कई एक स्थलों मे व्यभिचारभी है जैसे पाचक पुरुष प्रतिदिन सावधानीसे पाक बनाताहै परन्तु जिसदिन खानेवाले पुरुषकी प्रारब्धमें वह भोजन न होय उस दिन कुत्सित जीवादिके सम्बन्धसे अवश्य अभक्ष्य होही जाताहै ऐसेही शिल्पकारभी अनेक प्रकारके कार्य्य बनाता है दैवात् किसी कार्य्यका विनाशभी होता है ऐसेही जब कृषिकारके भाग्य मन्द होते हैं तो उसकी खेतीभी वर्षासे या (जलोपल) गड़ोंसे नष्ट होती है अथवा मद होती है इसलिये जीवोकी प्रारब्धभी कुछ वस्तु अवश्य मानने योग्य है । (प०) हे राजकुमार ! तैने हमारे पूर्वोक्त सिद्धान्तपर सम्यक् दृष्टि नहीं दी अन्यथा ऐसी शका न होती हम जो यह कह चुके कि, जहां जहां कार्य्यका प्रतिरोध होता है वहां वहां ही सम्यक् प्रयत्न नहीं किया जाता भोजनस्थलमें यदि पाचक पुरुष सर्वथा सावधान रहे तो काकादि कुत्सित जीवोसे दूषित होनेकी कदापि सम्भावना भी नहीं हो सकती और शिल्पविद्याके उदाहरण शिल्प विद्यानिपुण यूरूपियन लोग साक्षी हैं उनसे पूछ देखो यदि वह कहें कि आधे कार्य्य हमारे सुधर जाते हैं और आधे प्रारब्धके वेगसे विनष्ट होजाते हैं तो हम भी मान लेंगे कि, प्रारब्ध बडी प्रबलहै, परन्तु यदि वे कहें कि एकही कार्य्यको हमने एक सहस्रवार किया तो अच्छाही होता रहा पर उसके पीछे एकवार फिर किया तो अच्छा न बना हम अमुक बातसे चूक गये इत्यादि तो ऐसे स्थलमें प्रारब्ध बिचारीने क्या किया, वे तो अपनी चूक आपही मानलेतेंहै (और चूक होनेमें अभ्यासकी न्यूनताही कारणहै) और अभ्यास उद्योगहीसे होताहै इसलिये उसीको विजयी मानना उचित है । परन्तु शोकहै कि विदेशी लोग उसीको अपनी भूल मानकर आगेके लिये उस भूलसे बचतेहैं और हमारे देशी लोग उसीको अपनी प्रारब्ध मानकर बारबार उसी मूर्खतामें पचतेहैं, विचारना चाहिये कि, यदि कोई कुशल धातु-

ष्कपुरुष एकही लक्ष्यको सहस्रवार भेदन करचुका होय उसके पीछे एकबार कदाचित् उसका निशाना चूकजाय तो उस चूकनेमें उसका प्रमादही कारण है किन्तु अति असम्भावित शशश्रृंगायमाण प्रारब्ध नहीं है शेष रहा वर्षादिसे कृषि आदिका प्रतिरोध सो वह भी विचारणीयहै कि वर्षाका अत्यन्तभावाभाव खेतीकी प्रारब्धसे है (१) अथवा खेतीवालेकी प्रारब्धसे है (२) वा जिन जीवोंका वह कृषिजीवनहै उनकी प्रारब्धसे है (३) वा जो जीव वर्षाके भावाभावसे प्राणरहित होजातेहैं उनकी प्रारब्धसे है (४) किंवा जिन जीवोंको वर्षा सत्त्वासत्वसे अत्यन्त सुख या दुःख हुआ है उनकी प्रारब्धसे है (५) अथवा राजाके पुण्य पापयुक्त वर्षादिका अत्यन्त भावाभाव है (६) किंवा यावत् समुदायकी प्रारब्धसे है (७) यदि किसी एककी प्रारब्धसे कहो तो विनिगमना[1]विरह अर्थात् तुम जिसकी प्रारब्धसे कहो तो उससे दूसरेकी हम कहेंगे तो तुम्हारे पास अपने पक्षकी सिद्धिके लिये कोई प्रबल युक्ति नहीं है यदि कहो कि, यावत् प्राणियोंकी प्रारब्धसे मिलकर वर्षादि कार्य्य होते हैं तो यह भी ठीक नहीं एक उपादानकारणसे वा निमित्तकारणसे एक कालमे विचित्र नानाकार्य्यका उद्भव शास्त्रसिद्धान्तसे विरुद्ध है । तथा लोकमें भी अदृष्टचरहै प्रकृतमें यावत् जीवोके अदृष्ट मिलकर वर्षादि द्वारा कतिपय जीवोंको सुख वा दुःखके हेतुहैं ऐसा कथन है परन्तु यह पूर्वोक्त विचारसे श्रद्धेय नहीं है। इस लिये हे प्रियदर्शन ! आपको यह अवश्य निश्चय करना चाहिये कि उद्योगके आगे प्रारब्ध कुछ वस्तु नहीं है केवल आलसी अनभ्यासी लोगोंकी लज्जाका प्रतिरोधक कल्पित शब्द मात्रहै, शीत, उष्ण, वर्षा, वायु आदि सर्वदा अपने समयके अनुसार परमेश्वरकी आज्ञा तथा इच्छा अनुरोधसे अनायास होते रहते हैं सामान्य रूपसे किसी २ शास्त्रकारने ऐसे स्थलमें जीवोके अदृष्टभी सहकारी मानेहैं परन्तु उद्योगकी प्रधानता सर्वतन्त्रसिद्धान्त है। (राजकु०) वर्षादिके करनेमे किसका उद्योग है। (प०) इस देशमें तो हमारे "यज्ञाद्भवति पर्जन्यो"

---

[1] निश्चित एक पक्षको कहनेवाली युक्तिका नाम विनिगमनाहै उसका विरह अर्थात् अभाव ।

[गीता--श्लो० १४--३] इत्यादि शास्त्रवचनोसे पुरुषकाही उद्योगहै क्योंकि इसका नाम शास्त्रमे उद्योगभूमि है और देशान्तरोमें सर्वत्र सर्वान्तर्यामी परमात्माका या तदधीन देवोंका उद्योगहै साधारणरूपसे उसमे जीवोंके अदृष्टभी कारणहैं । (राजकु०) यदि इस देशमेभी ईश्वरहीका या तदधीन देवोके प्रयत्न से वर्षादि मानलिये जायँ तो हानि क्याहै । (पं०) जिस वार्ताका शास्त्रने हितपूर्वक उपदेश कियाहै उसको देशान्तरोके उदाहरणोसे न मानना अपनी मूर्खताहै ऐसे तो पर्वतोंके स्वय झरने झरते देखकर मरुभूमिके मनुष्योको भी जलार्थ प्रयत्नशील नहीं होना चाहिये । और ऐसे विषयमें उनको किसीका कहना न मानना चाहिये । परन्तु ऐसा देखनेमे तो नहीं आता किन्तु जैसा जहां उचितहै वहां वैसा उपाय सब कोई करताहै इसरीतिसे बोधक शास्त्रभी व्यर्थ नहीं बनता क्योंकि वह इस देशकी आवश्यकताका बोधकहै (राजकु०) पूर्व आपने प्रारब्धका भोगानन्तर नष्ट होना कहा और उद्योग आत्माका गुण सर्वदा विद्यमान रहनेवाला माना तो क्या उद्योगकी तरह प्रारब्ध आत्माका गुण नहीं है ? । (पं०) हे प्रिय ! प्रारब्ध नाम अदृष्ट का है उसको भी तत्रकारोने आत्माका गुणही मानाहै । (राजकु०) तो फिर निर्बल सबलमे प्रयोजक कौन रहा ? (पं०) उनका स्वरूपही प्रयोजक है । देखिये प्रारब्धको कदापि कोई किसी इन्द्रियसे प्रत्यक्ष नहीं करसकता, इसीलिये तत्रकारोंने उसको सर्वथा अतीन्द्रिय पदार्थ मानाहै । और यत्नपुरुषकी प्रवृत्ति निवृत्ति तथा जीवन योनिभेदसे तीन प्रकारका है । रागबुद्धिवाले पदार्थमें पुरुषका प्रवृत्तिरूप प्रयत्न होताहै । और द्वेषबुद्धिवाले पदार्थमे निवृत्तिरूप पुरुषप्रयत्न होताहै । शेष रहा जीवन कारण सो वह पुरुषके श्वास प्रश्वासकी गतिसे अनुमेयहै अर्थात् जीवके श्वास प्रश्वासोंको भीतर बाहर खैचने फैकनेवाला कोई पुरुषप्रयत्न अवश्यहै । एव प्रयत्नके तीन अशोंमे दो प्रत्यक्ष हैं और एक अनुमेय है और अदृष्टकी शुभाशुभ भेदसे दो अश हैं सो वे दोनोंही अनुमेय हैं याते निर्बलहैं । प्रत्यक्षप्रमाण, अनुमानप्रमाणसे ज्येष्ठ होनेसे प्रबलहै इसीलिये

उसके विषयपदार्थभी अनुमित पदार्थोंसे प्रबलहींहैं । (राजकु०) पूर्व आपने प्रयत्नको नित्य मानाहै और प्रारब्धका भोगानन्तर नाश मानाहै। सो यह मन्तव्य आपका यथार्थ नहीं प्रतीत होता, क्योंकि दोनों आत्माके विशेष गुणहैं । इसलिये प्रायः तुल्य स्वभाववाले होने चाहिये । (प०) हमारा नित्यानित्य माननेसे यह तापर्य्य नहींहै कि. एकका विनाश होताहै और दूसरेका होताही नहीं किन्तु यह तात्पर्य्यहै कि, जैसे भोगानन्तर प्रारब्धसे प्रारब्धका नाश होताहै वैसेही यद्यपि तत्तत् कार्य्यानन्तर तत्तत् पुरुषप्रयत्न काभी विनाश होताहै। तथापि प्रयत्नत्वेन प्रयत्न मात्रके विनाशका सम्भव नहीं है क्योंकि ईश्वर प्रयत्नको तन्त्रकारोंने नित्य मानाहै और प्रारब्ध ईश्वर-की किसी शास्त्रकारको अगीकार नहींहै । इसलिये प्रयत्न नित्य भी है। (राजकु०) महाराज हमारा तो जीवके प्रयत्न तथा प्रारब्धमे विचारहै । आप ईश्वरको उदाहरणमे क्यो लातेहै। (प) हे प्रिय ! विचार तो हमभी जीवमात्रमे ही करतेहैं यह तो केवल तेरेको प्रारब्धसे अधिकदेश ईश्वरमे प्रयत्नका स्वाराज्य मात्र दिखलायाहै। तात्पर्य्य यह कि अधिकदेशमें स्वाराज्यवाला राजा जैसे न्यून देशवर्ति राजासे निर्बल कदापि नहीं होता अर्थात् सर्वथा प्रबलही होताहै वैसेही अधिक देशवृत्ति प्रयत्नभी कदापि कल्पित प्रारब्धसे निर्बल नहीं होसकता किन्तु सर्वथा प्रबलही रहता है। (राजकु०) महाराज अनेक प्राणी जन्मान्ध जन्मपंगु जन्मबधिर जन्मकुष्ठी होतेहैं । और अनेक प्राणियेंको यही रोग जन्मान्तर कुछ काल पीछे ग्रस लेतेहैं, ऐसे स्थलमे विना पूर्वप्रारब्धसे उनमें कौन कारणान्तर होसकताहै । (प) हे प्रिय ! दृढ होकर शास्त्रसिद्धान्तको श्रवण कर न्याय, मीमासा, साङ्ख्य, योग, वैशेपिक तथा वेदान्त ये छः शास्त्रहैं। उन छहों मेसे न्याय तथा वैशेपिककारने कार्य्यके उत्पादक कारण समवायि, असमवायि तथा निमित्त भेदसे तीन मानेहैं बाकी चारो शास्त्रवालोंने उपादान तथा निमित्त भेदसे दोही कारण मानेहैं। उपादानकारणही को न्याय वैशेपिक-कार समवायिकारण नामसे बोलतेहैं। केवल शास्त्रकी बोलीमात्रका भेदहै। जिससे जुदा होकर कार्य्य प्रतीत न होसके किन्तु कार्य्यमात्रमें अन्वयरूपसे कारण अनुस्यूत होय वह उपादानकारण है। जैसे घटरूप कार्य्यका मृत्तिका

है अथवा पटका तन्तु है, असमवायि कारणके लक्षण तथा उदाहरणको प्रकृतानुपयोगी होनेसे तथा सर्वतन्त्रसिद्धान्तसे असिद्ध होनेसे नहीं लिखाहै । कार्य्यसे जुदा रहकर कार्य्यजनकका नाम निमित्तकारण है. वह साधारणासाधारण भेदसे दो प्रकारका है । यावत् कार्य्यके प्रति कारण का नाम साधारण कारणहै जैसे ईश्वर ईश्वरका ज्ञान ईश्वरका प्रयत्न ईश्वरकी इच्छा काल जीवोंके अदृष्ट दिशा प्रागभाव प्रतिवन्धकाभाव ये नव कार्य्यमात्र के प्रति कारणहैं इसलिये साधारण कारण है । जो तत्तत् कार्य्यके प्रति जुदा जुदा कारण होय वह असाधारण कारण होताहै जैसे-घटादि कार्य्यके प्रति दण्डचक्रकुलालादिहैं तथा पटके प्रति तुरी वेम तन्तुवायादि हैं । अव प्रकृतमें विचार श्रवणकर अन्धता वधिरता मूकता पगुता कुष्ठिपनादि अनन्त रोग स्थूल शरीरमें प्रतीत होनेवालेहैं । आत्माके धर्म तो देहात्मवादी मतके सिवाय बनही नहीं सकते । और न किसी शास्त्रकारने मानेही हैं। (राजकु०) मैं अन्धहो । मैं वधिर हो । मैं पंगु हों । मैं कुष्ठी हों इत्यादि प्रत्ययो से तो यह धर्म जीवात्माहीके प्रतीत होतेहैं किन्तु शरीरके नहीं प्रतीत होते (प०) प्रत्ययोकी क्या कथा हैं प्रत्यय तो यहभी होतेहैं कि, मैं ब्राह्मण हू-मैं क्षत्रिय हू-मैं वैश्य हू- मैं शूद्र हूं-क्या कदापि यह आत्माके धर्म होसकतेहैं कभी नहीं. जिन प्रत्ययोंका शरीरही मे सिवाय अपने मुखके वा सिवाय स्वकृतचिह्नके कोई विवेचक नहीं है, वे प्रत्यय आत्माके धर्म हैं यह कहना तो अतिही विचारशून्य है, हा मेरे नेत्रोंसे दीख नहीं पडता, मेरे कर्णसे सुनाई नहीं देता, मेरा शरीर पंगु है, मेरा शरीर कुष्ठीहै यह प्रत्यय यथावत् हैं, याते यह निर्णय हुआ कि अन्धता आदि यावत् धर्म शरीर के हैं आत्माके नहीं उसमें भी यह विचारणीय है कि, शरीरके उपादान कारणकी न्यूनतासे अन्धता आदि यावत् रोग होतेहैं किम्वा निमित्तकारणकी न्यूनतासे, स्थूलशरीरका उपादानकारण मातापिताके रक्त वीर्य्य हैं, असाधारण निमित्तकारण माता पिता हैं साधारण निमित्त कारण पूर्वोक्त ईश्वरादि नव हैं परन्तु एक अंतिम प्रतिवन्धकाभावको त्याग कर सभी कल्पित हैं क्यों कि, कितने वादी ईश्वरको मानते हैं कितने नहीं मानते, वैसेही उसका ज्ञान यत्न इच्छा

भी हैं, जो ईश्वरहीको नहीं मानते, वह उसकी इच्छा तथा ज्ञानको क्या मानेंगे वैसे ही कालको कितने वादी मानते हैं कितने नहीं मानते, वैसेही अदृष्टकोभी कितने वादी नहीं मानते, दिक्कोभी कितने वादी नहीं मानते, प्रागभावकोभी कितने नहीं मानते, प्रतिबन्धकाभावकी कारणतामें भी भारी विवाद है परन्तु जो आचार्य्य इन नवको कारण मानते हैं वेभी साधारणकारण सामान्यरूपसे मानते हैं इस कल्पितसमुदायको विशेषरूपसे कारणता कौन सुयोग पुरुष मान सकता है, जो पदार्थ आपही सत्त्वासत्त्व सन्देहसे विवादास्पद होवे उसको विशेषरूपसे कारणता कैसे बनसकती है ? उसमें भी जो केचित् विचारशून्य पुरुषोंका साधारणकारण समुदायके भी किसी एक अंशपर केवल ईश्वरपर या उसकी इच्छापर या अदृष्टादिपर निर्भर है कि, जो होताहै सव ईश्वरही करनेवाला है या उसकी इच्छासे ही होताहै या जो हुआ हमारे भाग्यसे हुआ उनकी क्या प्रशंसा करे। ऐसे शास्त्रशून्य अधम विचार पुरुषोंके तो चाहो कोई सावधान बैठेके वस्त्र उतारले तो वे कभी नहीं बोलेंगे, क्योंकि उन्हें प्रारब्धपर दृढ विश्वास होचुकाहै, और सुयोग्य शास्त्रीयपुरुषोंका तो यह सिद्धान्त है कि यदि कार्य्यमें किसी प्रकारकी न्यूनता होय तो उपादानकारणका दोष है या असाधारण निमित्तकारणका दोष होवे है, प्रकृतमे अन्धतादिरोगोमे उपादानका दोष भी है जो जीव जन्म अन्ध वा बधिर वा पंगु उत्पन्न हुआ है उसके शरीरका कारण रक्त वीर्य्य स्वच्छ नहीं हैं, स्वच्छ न होनेमें माता पिताकी मन्दप्रज्ञता है किंवा गर्भरक्षा यथाविधि नहीं हुई तो भी बालक अंग भंग उत्पन्न होताहै, हे प्रियदर्शन राजकुमार! अधिक क्या कहूं यदि आयुर्वेदविधिविहित संपूर्ण क्रिया होय तो मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि, तेरेसेभी दश गुण अधिक सुंदरस्वरूप सन्तति प्रादुर्भूत होसकती है, गर्भमें अन्धता बधिरतादि दोषोंका होना केवल गर्भाधानमें मातृपितृप्रमाद है किंवा माता पिताके कुपथ्यभक्षणसे रक्तवीर्यगत दोष हैं यह निश्चय करके चित्तमें धारण कर। (राजकु०) महाराज जो पुरुष जन्मसे पीछे रुग्ण होजाते हैं उनकी क्या व्यवस्था है। (पं०) हे प्रिय! षोडश वर्षके अभ्यन्तर यदि अन्धतादि रोगाकुल होय तो प्रायः माता पिताका दोष है क्यों कि, उन्होंने कुपथ्य कुछ

भक्षणार्थ बालकको दिया उस भक्षणसे उसको रक्तविकार हुआ माता या खसरा (चेचक) शरीरमें व्याप्त हुआ उससे अन्धता या बधिरता प्रादुर्भूत हुई, षोडश वर्षसे ऊपर होय तो पुरुषका अपना प्रमाद है जो रोग चाहो करलेवो। (राजकु०) कितने लोग अतिपथ्यभी करते हैं तो भी रुग्ण ही दीख पडतेहैं। (प०) पथ्य भी रोगोत्पत्तिसे पूर्वही अपेक्षित है अन्यथा प्रथम तो अतितिक्त वा अतिकटु भक्षण करके वा अतिभोगादि व्यसनोंसे अर्शादि रोगकी उत्पत्ति करली पीछे पथ्य करते रहें तो कौन कामका, हां पश्चात् पथ्यसे भी रोग वृद्धिको प्राप्त नहीं होता परन्तु निर्मूल यथावत् औषधी विना होता नहींहै, हे प्रिय! यदि अकस्मात् रोगोंकी उत्पत्ति होय तो पतजलि आदि महर्षियोंके चरकादि पुस्तकोंके निदानप्रकरणही व्यर्थ होजावेगे याते यह निश्चय कर जो कुपथ्यके सिवाय रोगोत्पत्ति कदापि नहीं होती। (राजकु०) जो आजन्म संयमी हैं उनको भी रोग ग्रसेहै। (प०) मैंने आजन्मसयमी भी कुपथ्यके प्रभावसे विषूचिका मृत्युसे मरते देखे हैं।

इति कारणविचारे पञ्चमविश्रामः॥ ५॥

अथ षष्ठ विश्राम ६.

(राजकु०) महाराज! शुभ कुलमे जन्म तो पूर्वप्रारब्धसेही होता है। (पं०) शुभ कुल तुम किसको मानतेहो। (राजकु०) जो वर्णसकरशून्य ब्राह्मण वा क्षत्रिय वा वैश्यकुलमे होय। (प०) तो अनेक युगोंका ससार है यद्यपि पुरुष ऐसे कथञ्चित् मिल सकते हैं जो परस्त्रीगामी, नहीं हैं तथापि स्त्री पतिव्रता दुर्लभ है यदि वशपरपरामे एकभी स्त्री दुष्टा होय तो वर्णसंकर तो होचुका। परन्तु संसारमें तो प्रायः स्त्री दुष्टा है तो फिर कौन किस वश वा वर्णका है यह कैसे निश्चय होवे। जिस नाममात्र ब्राह्मण या क्षत्रिय कुलको तुम सबसे उत्तम मानते हो वह हमारेही भ्रातृवर्ग अनेक संज्ञामात्रके ब्राह्मण बिचारे कायस्थो वा कलवारोंके हुक्के भरने पर वा बिछाई करनेपर वा रोटी

बनाने पर भृत्य बने हैं. हे प्रियदर्शन ! ऐसी उच्चकुलीनता ईश्वर किसीको न देवे यह तो परम अधमता है । (राजकु०) तो फिर आप उच्चपदस्थिति कैसे मानते हैं । (पं०) हे प्रिय ! उच्च नीच भाव तो कालके भेदसे होता है किसीकालमे किसी गुणसे मान्य होताहै और किसीकालमें किसीसे, पूर्वकालमें तो यह ब्राह्मणादि शब्द अन्वर्थ सञ्ज्ञाके बोधक थे अर्थात् यौगिकव्युत्पत्ति लभ्य शब्द थे जैसे 'ब्रह्म' वेदका नाम है उसको जो अध्ययनकरे वह ब्राह्मण कहाता था और 'क्षत्र' राष्ट्रका नाम है उसके पालनमे जो साधु हो वह क्षत्रिय कहाता था, विश–कृषिकारक वा पशुपालक वा क्रय करनेवालेकी सञ्ज्ञा है उसीको ही वैश्य भी कहते हैं, शुच पवित्रताका नाम है उसको जो द्रवण करे अर्थात् त्यागे वह शूद्र कहाता था इस रीतिसे चारों वर्ण विभक्त थे, परन्तु वर्तमान कालमे तो चारों शब्द रूढी होगये हैं चाहो शूद्रोकाभी उच्छिष्ट भक्षण कर-जावे परन्तु शिखा सूत्र मात्रके अपने मुखकेही ब्राह्मण बने रहते हैं वैसे ही क्षत्रियादि भी दूसरेकी रक्षा तो दूर रही आपही मूषकतक जीवसेभी भयभीत होतेहैं यह प्रताप सब वर्णसंकरताहीका है यदि कदाचित् शुद्धवंशावली देशमा-त्रमें एकभी होय तो उसी कुलका एकही ब्राह्मण वा एकही क्षत्रिय देशमात्रकी रक्षाकेवास्ते बहुत है । (राजकु०) महाराज ! वीर्य्यका हाल तो माताही जाने परन्तु प्रचलित जो ब्राह्मणादि जातियाँ हैं वे तो यथार्थ हैं उनका व्य-त्यास तो नहीं दीखता । (प०) हे प्रिय ! यदि तुम देशान्तर भ्रमण करो तो तुमको जातिव्यत्यासका मर्म मिले, देखिये प्राचीन लोगोसे सुनाहै कि, श्रीकाशीजीमे प्रथम नवघर गंगापुत्रोके थे जैसे २ यात्रीलोगोंसे उपलब्धि देखी वैसे २ वृद्धिको प्राप्त होने लगे अर्थात् सहस्रों गोपालकभी गंगापुत्र बनगये, ब्राह्मणोंसे अधिक ब्राह्मण बनकर पुजवानेलगे, ऐसीही दशा यावत् तीर्थोंपर है, अंगरेज सरकारका राज्य है कोई अत्याचारका शासन देता नहीं जो चाहे सो ब्राह्मण तथा क्षत्रिय नाममात्रका बन सकता है । (राजकु०) तो फिर वर्तमान समयमे उत्तम कौन है ? (प०) द्रव्यबहुल पुरुष या, विद्याबहुल पुरुष, सो विद्या व्यावहारिक विद्या तथा पारमार्थिक विद्या भेदसे दो प्रकारकी है–पारमा-

र्थिक विद्याहीका नाम ब्रह्मविद्या है, उस विद्यावाला पुरुष सर्वोत्तम है, द्रव्य तथा विद्या उद्योग विना होते नहीं इसी वार्ताको आगे सविस्तर कहेंगे।

इति शुभकुलजन्मविचारे षष्ठो विश्रामः ॥ ६ ॥

अथ सप्तम विश्राम ७.

(राजकु०) सुन्दर स्वरूपवाला शरीर तो पूर्वकृत शुभ कर्मसे ही मिलता होगा। (प०) इसका उत्तर तो हम पूर्व करचुके हैं कि, यदि आयुर्वेदकी शिक्षापूर्वक खानपानादि व्यवहार स्त्री पुरुष दोनोंका होय तो निश्चय ही ऐसी संततिको उत्पन्नकरेंगे कि, जिसके अवलोकनसे प्राणीमात्रके नेत्र तृप्त न होवें, तो फिर कल्पित अदृष्टोंके माननेका कौन काम है। (राजकु०) महाराज! अनेक पुरुष आयुर्वेदका नामभी नहीं जानते परन्तु उनकी संतति अतिसुन्दर उत्पन्न होती है, वहां पूर्व भाग्यविना कौन कारण बनसकता हैं। (पं०) यदि किसीकी घुणाक्षरन्यायसे संतति सुन्दर भी होय तोभी नियतकारण व्यर्थ नहीं होसकते, जैसे-यदि तुम किसी मित्रको अपने गृहमे बुलाया चाहो परन्तु वह विनाही बुलाये अकस्मात् कालपर पहुँचे तो क्या वह अपने प्रयत्नसे विनाही आया है कदापि नहीं, उसने आनेके वास्ते यथायोग्य प्रयत्न अवश्य किया है, परन्तु न्यूनता इतनी है कि, उसको निश्चय नहीं है कि, मेरे प्रयत्नका यह फल होगा परन्तु स्पष्ट लोकमें यह व्यवहार होता है कि, आइये आप तो मेरी प्रारब्धसे आपही आगये। वैसेही आयुर्वेदसे विनाभी यदि अकस्मात् उतनाही प्रयत्न होजाय तो कुछ बाधक नहीं संतति अवश्य ही शुद्ध सुन्दर होगी परन्तु भेद इतनाही शेष रहा कि विधिपूर्वक चलनेवालेकी सन्तान नियमसे स्वच्छ होगी, इतरकी कथंचित् होगी। (राजकु०) महाराज तत्तत् देशमे जो तत्तत शरीर अवयवकी न्यूनता वृद्धि वह कि प्रयुक्त है, जैसे-पञ्जाब देशमे अन्ध अधिक हैं, पूर्वदेशमें अण्डकोशवृद्धिवाले अधिक हैं, नेपालमे निम्ननाकवाले अधिक हैं, चीनमें प्रायः श्मश्रू (दाढी) रहितपुरुष हैं, यूरूपमें गौरवर्ण प्रायः

हैं इत्यादि । (प०) इसका उत्तर प्रारब्धवादीके मतसे क्या है ? (राजकु०) वह तो यह कहेगा कि जिसको प्रारब्धने जैसा करना है वैसेही देशमें जन्म देगी। (प०) तो फिर तत्तत् न्यूनतायुक्त उस उस देशके सर्व जन होने चाहिये अर्थात् पजाबमें सभी अन्धे होने चाहिये, पूर्वदेशमें सबके अण्डकोश वृद्ध होने चाहिये, इत्यादि और ऐसा तो है नहीं बहुतलोग नीरोगभी तत्तत् देशमें विद्यमान हैं। (राजकु०) जो लोग प्रसिद्ध तत् देशीयरोगसे रहित हैं । उनके पुण्यविशेष रोगकी अनुत्पत्तिमे सहकारी हैं याते उनको रोग नहीं हुआ । (प०) ऐसे पुण्यविशेषोंने द्वितीय देशमें जन्मही क्यों न देदिया । (राजकु०) कुछ उस भूमिका भोगविशेष कल्पना करेंगे । (प०) काहेको शास्त्रविरुद्ध और अनुभवविरुद्ध कल्पना करनी । (राजकु०) तो फिर आप किसका दोष मानते हैं। (पं०) हम तो पूर्व कहचुके कि, कुपथ्य यावत् रोगोंका मूलकारण है, जैसे—पञ्जावमें रक्त (खून) विकारकी वस्तु अधिक खानेसे शरीरमे व्रण होनेसे पुरुप अन्ध होता है, पूर्वमे जल वातुल है। और वस्तुभी यदि वातुलही सहकारी मिलजायँ तो अवश्य जल या वायुनाडीद्वारा अडकोशमें वा जांघोंमे उतरजावेगा अडकोशवृद्धि प्रायः अधिक विषयासक्त पुरुषहीकी होती है, परन्तु पूर्वही इस रोगकी अनुत्पत्तिहित जो पुरुप दड युद्धादि शरीरचेष्टा करा करते हैं उनको यह रोग कदापि नहीं होता ऐसे ही नेपालमें भी यद्यपि वैद्योंने निर्णय नहीं किया परन्तु कोई एक ऐसी औषधी अवश्य है जिसके भक्षणसे गर्भाधानकालहीमें नाक निम्न होजाताहै। किंवा कोई एक अन्न ऐसा अवश्य होगा, जिसकी माताने उस अनिर्णीत अन्न औषधीको नहीं खाया उनके नाक यथावत् सुन्दर हैं । चीनदेशमें श्मश्रूके अभावमें भी अन्न औषधीही कोई एक कारण है । ईश्वर अंगरेज सरकारका राज्य यथावत् स्थिर रक्खे थोडेही कालमे इन सभी बातोंका निर्णय होजावेगा और यूरोपदेशमें शीत अधिक है और खानेकी वस्तु चावलादि श्वेतपदार्थ हैं याते सब लोग गोरे हैं, दूर काहे जाते हो शीतप्रभावहीसे काश्मीरनिवासी सभी गोरे हैं, इसी तौर उपादानकारण किंवा निमित्तकारणकी विचित्रतासे कार्य्य विचित्र स्वयही होते हैं कतिपय तन्त्रसिद्धान्तसिद्ध कल्पित प्रारब्धके माने विना कौन हानि है, प्रत्युत प्रारब्ध के मानने से देशकी इतनी

हानि है कि, कितने सुयोग पुरुष प्रारब्धके भरोसे पर बैठे हैं और परिवारको उपार्जनकर खिलना तो दूर रहा आपही प्रतिदिन क्षुधापीडित रहतेहैं।(राजकु०) कितने रोग औषधी करनेसे भी शात नहीं होते याते जानाजाताहै कि, कुछ प्रारब्धवेग भी प्रबलहै । (पं) प्रियदर्शन ! यदि सुशिक्षित वैद्यके हाथसे औषधी खाई जाय तो शत रोगोमे से एक रोग चाहो न भी दूर होय तो भी एकोनशत तो अवश्य ही दूर होंगे । उस एकके न दूर होनेमें भी वैद्य ही की न्यूनता है उसने निदान रोगका नहीं पहचाना याते औषधीने अपना बल नहीं दिखलाया तत्तत् रोगकी शास्त्रविहित तत्तत् औषधी अवश्य ही रोगनाशक हैं इसमे कुछ भी सन्देह नहीं है ।

इति सुन्दरस्वरूपादिविचारे सप्तमो विश्रामः ॥ ७ ॥

अथाष्टम विश्राम ८.

(राजकु०) कितने अकस्मात् जलमे डूबजातेहैं । कितने पृथिवीमें दब जातेहैं । कितनोंको अग्निदाह होता है कितनोकी सर्पादिजीवोंसे मृत्युहोवे है । कितनोको सिंहादि जीव भक्षण करतेहैं क्या यह विचित्रता प्रारब्ध से विना होसकती है । (पं०) जो जीव जलमें डूबतेहैं वहां भी उद्योगहीकी न्यूनता है । यदि कोई पुरुष तरण योग्य अल्पजलमें डूबाहै तो वहा उसका तरणविद्याको न जाननाही उद्योग की न्यूनता है, यदि समुद्रादि दीर्घजलमें डूबाहै तो वहां जलयान वहन करनेवाले पुरुषोंके उद्योगकी न्यूनता है यदि वे सुशिक्षित होवे तो जलमे डूबने की सम्भावना ही नहीं होती । देखिये यदि यूरोपदेशनिवासियोंका कदाचित् समुद्रमे जहाज डूबजावे तो वह लोग सूक्ष्मविचारसे उसके निमित्तका अन्वेषण करतेहैं । विचारकर ऐसा यत्न करतेहैं कि, फिर उस कारणसे कदापि नहीं डूबनेपावे, परन्तु यदि हमारे देशके व्यापारी महात्माका जहाज डूबै तो वह सिवाय प्रारब्धसे कुछ दूसरी वार्ताही नहीं करता, केवल मन्तव्यही का भेद है । परन्तु किस मन्तव्यमे देशको अधिक लाभ होसकता है यह विद्वान्लोग कृपाकर सोचे और

प्रकाश करै जिससे देशका उपकार होय, हे प्रिय ! ऐसेही जो पृथिवीके भागके नीचे कूपादि खननकालमे या गृह आदि रचनाकालमे या गृह आदि विनाशकालमे दबजातेहैं--यदि वह अधिक आयुः हैं तो उनकीही अल्प प्रज्ञताहै क्योंकि उन्होने प्रथम नहीं सोचा कि यह गृह या कूपादि गिरनेवालेहैं। और यदि अल्प आयुहैं अर्थात् बालकहैं तो उनके रक्षकोंकी वा मातापिताकी मूढता है हमने तो सिद्धात की वार्ता तुझे कहदी इस देशके मूढलोग अपनी मूढता से कार्य्य नाशकर प्रारब्धके शिर मलाकरते हैं। (राजकु०) एक पुरुषसे मैंने सुनाथा कि, कूपखननकालमे कूपके ऊपरसे मिलजानेसे एक पुरुष नीचेही दब गया तो दूसरे साथके पुरुषोंने उसके मरनेका निश्चय किया याते मृत्तिका दूर कर उसको न निकाला परन्तु षट्मास पीछे उसी भूमिमे समीपही जब उन्होंने द्वितीय कूप निकाला तो उसने नीचेसे उच्चस्वरसे कहा धीरे २ मट्टी निकालो, लोग भयभीत हुए बहुत शब्द उसका सुना तो उससे प्रश्न उत्तर करने से निश्चय हुआ कि, अमुक पुरुष है धीरे से निकाला तो अति कोमल शरीर युक्त जीवित पुरुष निकला, लोगोने उसे पूछा कि तुमने इतने दिन नीचे क्या भक्षण किया ? तो उसने कहा कि मेरे को यथार्थ ज्ञान तो नहीं परन्तु ऐसा प्रतीत होता था कि, जैसे प्रतिदिन दुग्ध का कटोरा पान करता हूं। कुछ दिन पीछे वही पुरुष फिर बलिष्ठ हुआ और यथावत् कार्य्य करने लगा तो कहिये ऐसे स्थलोमें प्रारब्धविना कौन रक्षक होसकता है और कौन दुग्धके कटोरे पहुँचा सकता है। (प०) प्रथम तो यह वार्ता ही असम्भवसी प्रतीत होती है क्योंकि षट्मास भूमि नीचे दबनेसे कोई जीने को सिवाय योगीके समर्थ नहीं यदि कदाचित् आप्त पुरुष ने देखा है उसने ही आप को कहा है तो ऐसा होसकता है कि, जिस स्थलमे वह दबाथा वहां से स्वास बाहर जानेका छिद्र अवश्य होगा और विचारशून्य होकर उसने मृत्तिका भक्षण करी होगी, जिसकी धारणशाली प्रज्ञा न रहे उसको मृत्तिका क्या और दुग्ध क्या। (राजकु०) क्या मृत्तिका भक्षणसे पुरुष जीसकताहै। (प०) मृत्तिकाहीसे तो जीता है। (राजकु०)महाराज जीव मो अन्नोदकसे जीतेहैं।(प०) हे प्रिय ! उदक

तो उसके पास भी बहुतथा और अन्न नाम तो खाने की वस्तुका है जिस जीव को जो खानेका अभ्यास पडजाय उसके वास्ते वही अन्न है । मृत्तिका भक्षणकरकेभी ससारमे सर्पादि अनेक जीव जीते हैं दुग्धके कटोरे की वार्ता को बुद्धि नहीं मान सकती । (राजकुमार०) मैने सुना एक गर्भवती किसी यवनकी स्त्री मरगई प्रसूत होनेहीको थी परतु यवनों ने पृथिवीमे दबा दी रात्रिको उसी शव को शृगालने निकाला तो उसके पेटसे जीवित बालक निकला, प्रातः लोगोंने देखा बालकको उठा लाये यथावत् उस बालक ने अपनी आयु भोगी, कहिये ऐसे स्थलोमें सिवाय प्रारब्धके उद्योग क्या कर सकता है । (प०) हमारा यह सिद्धांत नहींहै कि, उसका उद्योग उसीहीके भोगके वास्ते है किन्तु जैसे एक पिताके उद्योगसे कितने पुत्रादि खातेहैं वैसेही बालक के जीनेमे शृगालका उद्योगही कारणहै यहि वह न निकालता तो कदापि बालक न जीता प्रारब्धपापिनी तो उस अनाथ को दबाही चुकी थी, परन्तु उद्योग की कृपासे उसकी जान बच गई । (राजकु०) प्रारब्धहीने शृगालसे उद्योग करादिया ऐसा माने तो क्या क्षति है । (प०) क्षति तो देशका सत्त्वनाश मात्रहै इससे अधिक क्या होगा परन्तु साक्षात् कारणता सम्भवे परपरा कारणता कल्पितवस्तुमे माननी कुछ स्वच्छ प्रज्ञता नहीं है । घटकार्य्यके प्रति दण्डमें कारणता सबने मानी है किंतु उसमें रहनेवाले कल्पितधर्म विशेष दण्डत्वमें नहीं, एव प्रारब्धवादी की मानी हुई कल्पित प्रारब्ध विना उद्योगसे ससार मात्र में किसी स्थलमे-भी भोग नहीं दे सकती और उद्योग तो देखिये प्रारब्धशून्यजो देहात्मवादी उनको अनेक विध भोग देरहा है । (राजकु०) न मानने की वार्ता भिन्न है परन्तु प्रारब्ध तो नास्तिक कीभी हीतो ही है । (प०) क्या जो उसको न माने उसको भी जा चिपटतीहै । अतिनिर्लज्ज है, देखिये सुशील कुलीन हमारा उद्योग कोई प्राणी ऐसा नहीं जो उसको न माने, और उसको न चाहे, और जिसके अभावसे लोग शव पुकारने लग जातेहै जिसका प्राणी मात्रमे स्वाराज्य है ऐसे प्यारे उद्योग की तुलना यह अल्पकालोत्पन्ना अल्पदेशवर्तिनी अल्पगृहभिखारिणी सरल स्वातविडम्बिनी आर्य्यावर्तविषूचिका निद्राकी ज्येष्ठभगिनी उद्योगानुगामिनी बिचारी प्रारब्ध कहां लेसकतीहै । हे प्रियदर्शन ! ऐसेही अग्नि

दाह भी प्रायः मन्दबुद्धि पुरुषोंहीको होता है । सिवाय प्रमादके दावानल की तरह ग्रामोंमें स्वय अग्नि कदापि नहीं लगसकती अग्निदाह का मूलकारण केवल हुका है । यह भी एक आलसी पुरुषोका सर्वस्वहै प्रातः उठ कर मानों स्मरणीय ईश्वर है । समुख बैठा कर मानो सुचारु उपदेशक गुरु है । उपदेशानभिज्ञ पुरुषको साथही फिट् फिट् शब्द भी पुकारे है । इस महात्मानेभी सूली सहार ईसासेभी अधिक चेले मूडे हैं ॥ इसने कितने ग्राम जलादिये कितने पशु पक्षी जलादिये कितने पुरुष जलादिये और अल्प वस्तुका जलाना तो क्या कठिन है । हे प्रिय ! ऐसेही सर्पादि जीवभी प्रथम पुरुपको कुचेष्टा विना कुछ नहीं कहते, देखिये यह वार्ता लोकविदित है कि, बालकको सर्प नहीं काटता सोते पुरुपको सर्प नहीं काटता । (राजकु०) हमने कितनोंको सुना सोतेको सर्पने काटा । (पं०) उस सोये पुरुषका कुछ अग सर्पसाथ आघात हुआ होगा अन्यथा सर्प कदापि नहीं काटता, अपने हाथसे जो विष खाय कर प्राणत्यागे उसको प्रारब्धने मारा यह कहना कौन बुद्धिमत्ता है । हे प्रिय ! ऐसेही सिंहादि जीवोंकोभी जान, प्रायः विना कुचेष्टा से सिहादिभी कुछ नहीं कहते हां इतना तो लोकमे देखते हैं कि, मूढता से लोक मृत्युके मुखमे पढजातें हैं परन्तु केचित् फिर उद्योग की कृपासे बचभी जाते हैं ॥ (राजकु०) महाराज क्या मरणभी प्रारब्धसे विना वन सकताहै । कोई जन्मता ही मरजाता है कोई शतवर्षजीवी है । (प०) हे प्रिय ! जो वस्तु उत्पत्तिवाली है उसका नाशभी अवश्यही होता है इस नियमको तो सर्वविज्ञजन मानतेही हैं । शरीर कार्य्य हैं याते अवश्यही नाश होनेवाले हैं, शेष रहा कालका विचार सो यत्नसे अधिक न्यून होसकता हैं । देखिये साधारण आयुः वर्तमान कालमें शतवर्षकी लोकमे विदित है ॥ उसमें सयमी लोग उससे भी अधिक जीते हैं । और असंयमी मध्यपाती ही होते हैं । अति बालकके मरनेमे दोष माता पिताका और द्वादश वर्षसे ऊपर मरजाय तो प्रायः बालकका ही दोष है, पथ्य आदिके अभावसे शरीरका नाश हो जाता है । और अष्टागयोगयुक्त योगी अपनी इच्छासे शरीर त्याग कर सकता है चाहो सहस्र वर्ष आयु करलेवे

परन्तु शरीर जर्जरीभूत होजाता है याते योगी लोग स्वय त्याग देते हैं! यम, नियम, आसन, प्रत्याहार, प्राणायाम, धारणा, ध्यान, समाधि यह योगके आठ अग हैं इन आठोमेसे एक भी जिस प्राणीमे विद्यमान है वह सुखपूर्वक दीर्घ आयु जीसकता है अन्यथा पेटपोषी पुरुष प्रतिदिन जन्मो और मरो कौन वारण करे है । और जीवकी मृत्यु प्रारब्धसे ही होतीहै यह निर्लज्जताका शब्द भी उनहीके मुखसे शोभायमान होता है ।

देखिये 'माधवनिदान' नामक चिकित्सा के पुस्तक मे लिखा है कि विषूचिका रोग अर्थात् हैजे की बीमारी उन महात्माओं को होती है जो खाने का सयम नहीं रखते ।

न तां परिमिताहारा लभन्ते विदितागमाः ॥
मूढास्तामजितात्मानो लभन्तेऽशनलोलुपाः॥१३॥

माधवनि० ।

अर्थात् परिमिताहार करनेवाले शास्त्रीपुरुषोको यह विषूचिका रोग कदापि नहीं होता किन्तु असयमी मूर्खों को जो कि खानेमे लोलुप हैं उनही को अवश्य करके होता है इति ॥ १३ ॥

यदि पुरुष प्रारब्धके वेगसे विषूचिका से मरता तो उनको यह लिखने योग्यथा कि जो पुरुष अतिमन्दभागी है वह अति अल्पही आयु मे विषूचिका की बीमारी से मरता है, याते जानाजाता है कि, चिकित्साशास्त्रवाले ऋषियोंकाभी यावत् प्राणियोको यावत्रोगों का निदान बतला कर उस निदानसे उद्योगसे बचानेका तात्पर्य्यहै । (राजकु०-) यह पुरुष अपने मरणकालसे विनाही प्रमादसे मरजाताहै ऐसा कहीं किसी प्राचीन महापुरुषने भी मानाहै । (पं०) हां महाराजा धृतराष्ट्रके प्रति सनत्सुजातने प्रसंगसे कहा है कि, "प्रमादं वै मृत्युमहं ब्रवीमि" अर्थात् प्रमादही इसजीव के मरण का मूल है इत्यादि । ऐसेही धृतराष्ट्रने विदुरसे भी पूछा है ।

धृतराष्ट्र उवाच ॥

शतायुरुक्तः पुरुषः सर्ववेदेषु वै यदा ।
नाप्नोत्यथ च तत्सर्वमायुः केनेह हेतुना ॥ ९ ॥

विदुर उवाच ॥

अतिमानोऽतिवादश्च तथाऽत्यागो नराधिप ।
क्रोधश्चात्मविधित्सा च मित्रद्रोहाश्च तानि षट् १० ॥
एते एवासयस्तीक्ष्णाःकृंतंत्यायूंषि देहिनाम् ॥
एतानि मानवान्घ्नन्ति न मृत्युर्भद्रमस्तु ते ॥ ११ ॥

मा० उ० प० अ० ३७ ॥

कि हे विदुर! वेदशास्त्रमे इस पुरुष की आयु सौवर्षकी लिखी है परन्तु कोई पुरुष भी सौवर्ष जीता क्यो नहीं अर्थात् प्रथम ही मरजाते हें ॥ ९ ॥ विदुरने कहा, हे राजन्! अतिअभिमान, अतिवाद, अतिकृपणता, अतिक्रोध, अतिआत्मप्रशसा तथा मित्रद्रोह ये छ· ॥ १० ॥ इस पुरुष की आयु काटनेके लिये तीक्ष्ण तल्वारें हैं। ये छः ही पुरुषका विनाश करती है किन्तु मृत्यु नहीं करता ॥ ११ ॥

इत्यादि अनेक वचनो मे प्रमादसे इसजीवका मरण लिखाहै। (राजकु०) अनेक महापुरुष कि, जिनमे प्रमादके या अभिमान अतिवादादिके लेशकी भी सम्भावना न होसके ऐसे भी शतजीवी नहीं हुए हैं। (प०) हे प्रिय! जो जिसके सन्मानके योग्यहै उसके लिये वही महात्माहै। मेरेको यहां किसी के अच्छे बुरे कहने का तात्पर्य्य नहीं किन्तु योगीके सिवाय जो अल्पायुमे मरता है वह अवश्य प्रमादहीसे मरता है। एक योगी पुरुष जब चाहे शरीर छोड सकता है चाहो सौवर्षसे भी अधिक जीवे या छोटेपनेमे ही देह छोडे उसके अधीनहै, यह योग विद्याका प्रभावहै वह विद्या भी केवल उद्योगहीसे लाभहोतीहै और मैं सच्चा महात्माभी उद्योगी योगी ही को समझताहू अन्यथा इतरोंमे प्रमादादिकी भी सम्भावना होसकती है, और प्रमादी तथा अभिमानादि

दोपयुक्त पुरुष को शिशुपाल की तरह मरना कौन दूरहै अर्थात् ऐसे पुरुषके श्रीकृष्णदेव परमेश्वर भी प्रतिकूलही होजाता है । (राजकु०) अनेक स्थानोमें प्राचीन शास्त्रोंमे अल्पमृत्युभी तो इस जीवका लिखाहै । (पं०) उस प्रमाद ही का नामान्तर अल्पमृत्यु है, वह प्रमाद कोई आज उत्पन्न नहीं हुआ है किंतु अनादि है इसलिये उसका लेख प्राचीन ग्रन्थोंमे मिलेभी तो हानि क्याहै । (राजकु०) क्या अपनी इच्छासे विषादि खाके मरना भी प्रमादहै । (पं०) महाप्रमादहै, जो पुरुष ऐसे मरता है वह प्राप्तसमय पर क्रोधादि वेगके रोकनेमें प्रमादके प्रभावसे असमर्थ होता है । ऐसे स्थलमे भी उद्योगी पुरुषके प्रयत्नसे सम्यक् उपाय औषधी आदि मिलने से अनेक बच भी जाते हैं । (राजकु०) अनेक जीवोंके दूसरे के हाथसे प्राण निकलतेहैं । (पं०) हे प्रिय ! हरएक जीवके मरनेका विचार तो कठिनहै इस परमेश्वर की विचित्र रचनामे विचित्रजीवोंके भेद तथा उनके जन्म मरणकी दशा भी विचित्र ही है, जैसे सर्प काकादि जीव सहस्रवर्ष तक भी जीसकतेहैं और उनके शरीर पर अवस्था का प्रभावभी बहुत कम प्रतीत होताहै परन्तु यही यदि अपनी नीचतासे किसी सुयोग्य पुरुपसे विरुद्धाचरण करे तो उसके हाथसे उसी समय मरणलाभ करतेहैं, ऐसेही गौ भैंसादि जीवोंकी तीस पैंतीस वर्षकी आयु है इससे प्रथम उनका मरणभी प्रमादसे या विरोधी जीवसे होताहै । एवं भेडी बकरी कुत्तेआदिकों की दश पंदरह वर्षकी उमर है इतने ही कालमे ये बूढे होकर मरजाते हैं इत्यादि रीतिसे भिन्न भिन्न जीवो की जीवन मरण स्थिति भी भिन्न भिन्न प्रकारकीहै इस नरदेहीके विना यावत् जीव तो सर्वथा प्रमादके पुतलेही हैं इसलिये उनका विचार हमारे प्रकृत नहीं है किन्तु पुरुष का मरण दूसरे के हाथसे दो तरह का होता है । प्रथम धर्मयुद्धमें जैसा कि, कर्णभीष्मादिकोंका अपने या अपने स्वामीके स्वत्वसरक्षणार्थ रणभूमिमे सम्मुख होकर शत्रुके प्राण लेने या देनेका नाम धर्मयुद्ध है और दूसरा अपराधसे मरणहै जैसे सीताके साथ छलकर रामके बाणसे मृत्यु होनेवाले मारीचका, यहां प्रथम मृत्युकी शास्त्रमे प्रशसा है इसलिये उत्तमहै और द्वितीय मृत्युका शास्त्रमें निषेध है इसलिये अधमहै परन्तु ये पूर्वोक्त सभी

मरण उद्योगसाध्य हैं इसलिये उसीका विजय है, हे प्रिय ! यह आपही का प्रश्न एक समय ऋषिलोगोंने मिलकर भृगुजीके आगे कराया तो उसका उत्तर उसने—

अनभ्यासेन वेदानामाचारस्य च वर्जनात् ॥
आलस्यादन्नदोषाच्च मृत्युर्विप्राञ्जिघांसति ॥ ४ ॥

मनुः अ० ५ ॥

अर्थात् वेदोंके पठन पाठन छोडने से शौच स्नान सन्ध्यादि सदाचारके न करनेसे महाप्रमादी तथा आलसी होनेसे श्राद्ध या तेरहिये आदिका अन्नखानेसे ब्राह्मणोंकी अकालमृत्यु होती है इत्यादि वचनोसे दियाहै, स्पष्ट भाव इसका यही है कि, उद्योगहीन पुरुष अकालमृत्युसे भी मरजाताहै इत्यादि शेष रहा पूर्ण आयुपर मरना सो जैसे—तेलके अभाव से दीपक स्वयं शान्त होताहै अथवा जैसे परिपक्व होकर पेड से पत्रपुष्पादि समयपर स्वयं गिरजाते है किंवा जैसे वस्त्र जीर्ण होकर स्वय फट जाताहै वैसेही यह शरीरभी जीर्ण हुआ अपने समयपर स्वय गिरजाताहै ।

इति मरणादिविचारेऽष्टमो विश्रामः ॥ ८ ॥

अथ नवम विश्राम ९.

(राजकु०) महाराज ! राज्यादि ऐश्वर्य को प्राप्त होना तो विना भाग्य से कैसे होसकताहै । (प०) हे प्रिय ! यह तो तुम निश्चय करो कि, जो जो उच्च पदको प्राप्त होताहै सो उद्योगहीसे होताहै शेष रहा राज्यप्राप्ति का विचार सो श्रवण कर, जिस पुरुषको राज्य की अपेक्षा होय धर्मशास्त्रोक्त गुणोको सम्पादन करे वह अवश्य राजा होगा महर्षि याज्ञवल्क्यने अपने धर्मशास्त्रमे लिखा है—

महोत्साहः स्थूललक्षः कृतज्ञो वृद्धसेवकः ।
विनीतः सत्त्वसम्पन्नः कुलीनः सत्यवाक्छुचिः ॥१॥

अदीर्घसूत्रः स्मृतिमानक्षुद्रोऽपरुषस्तथा ।
धार्मिकोऽव्यसनश्चैव प्राज्ञः शूरो रहस्यवित् ॥ २ ॥
स्वरन्ध्रगोप्ताऽन्वीक्षिक्यां दण्डनीत्यां तथैव च ।
विनीतस्त्वथ वार्तायां त्रय्यां चैव नराधिपः ॥ ३ ॥

राजधर्मप्रकरणे ।

कि, जिसके चित्तमे अति उत्साह होय ॥ १ ॥ तथा जो अतिदाता होय ॥ २ ॥ परकृत उपकार अपकारको कभी न भूले ॥ ३ ॥ तपोवृद्ध तथा ज्ञानवृद्ध पुरुपोका सेवक होय ॥ ४ ॥ अतिनम्र होय ॥ ५ ॥ सम्पत्ति-विपे तथा विपत्तिविपे हर्प विपाद रहित को सत्त्वसम्पन्न कहते हैं ॥ ६ ॥ जिसके मातापिता शुद्ध वशके तथा शुभाचरण युक्त हो वह कुलीन कहलाता है ॥ ७ ॥ जो सदा सत्य बोले वह सत्यवाक् कहिये है ॥ ८ ॥ जो जला-दिसे शरीर को तथा ईश्वरस्मरणादिसे मनको शुद्ध रक्खे वह शुचि है ॥ ९ ॥ जो अवश्यकरणीय कार्य्यों के आरम्भ मे तथा आरम्भ किये कर्मों की समाप्ति मे विलम्ब न करे वह अदीर्घसूत्री है ॥ १० ॥ जो ज्ञात अर्थको न भूले वह स्मृतिमान् है ॥ ११ ॥ असद्गुणो के द्वेपी को अक्षुद्र कहते हैं ॥ १२ ॥ पर-दोपको न कीर्तन करनेवाले को अपरुप कहे हे ॥ १३ ॥ वर्णाश्रम धर्मअन्वित-को धार्मिक कहते हे ॥ १४ ॥ व्यसनशून्यको अव्यसन कहते हें ॥ १५ ॥ वे व्यसन मनुके धर्मशास्त्र मे अष्टादश प्रकार के लिखे है–

यथा ।

मृगयाऽक्षा दिवास्वप्नः परिवादः स्त्रियो मदः ।
तौर्यत्रिकं वृथाघातः कामजो दशको गणः ॥ १ ॥
पैशुन्यं साहसं द्रोह ईर्ष्यासूयाथ दूषणम् ।
वाग्दण्डजं च पारुष्यं क्रोधजोऽपि गणोऽष्टकः ॥२॥

अर्थात् शिकार खेलना ॥ १ ॥ शतरञ्ज चौपडादि खेलना ॥ २ ॥ दिनको सोना ॥ ३ ॥ परकी निंदा करनी ॥ ४ ॥ स्त्रियां ॥ ५ ॥ शराब ॥ ६ ॥ अनेक विध नाच ॥ ७ ॥ गायन ॥ ८ ॥ तथा वीणादि वाद्य ॥ ९ ॥ व्यर्थ दूसरेको पीडित करना ये कामसे उत्पन्न होनेवाले दश गण हैं ॥ १० ॥ चुगली करनी ॥ ११ ॥ अतिसाहस करना ॥ १२ ॥ द्रोह करना ॥ १३ ॥ ईर्ष्या ॥ १४ ॥ परगुणोमे दोषारोपण करना ॥ १५ ॥ परको दूषित करना ॥ १६ ॥ मुखसे गारी निकालना ॥ १७ ॥ निर्दय चित्त होना ॥ १८ ॥ ये आठ गण क्रोधसे उत्पन्न होनेवाले हैं ॥ ये अष्टादश व्यसन हैं ॥ ये राजामे न होने चाहिये।

वैसेही गम्भीर अर्थ धारण करनेवाले का नाम प्राज्ञ है ॥ १६ ॥ शूर नाम निर्भयका है ॥ १७ ॥ गुह्य रखने योग्य अर्थ को जो गुह्य रक्खे उसका नाम रहस्यवित् है ॥ १८ ॥ शत्रुके प्रवेश करनेके मार्गको जो रोके उसका नाम स्वरन्ध्रगोप्ता है ॥ १९ ॥ वेदान्त विद्याको जाननेवाला ॥ २० ॥ तथा नीतिशास्त्र को जाननेवाला ॥ २१ ॥ अनेक प्रकार की धनोपार्जनकी वार्ताके जाननेवाला ॥ २२ ॥ तथा वेदत्रयका जाननेवाला ॥ २३ ॥ नराधिप होता है। अर्थात् पूर्वोक्त तेईस गुणका उत्कर्ष जिस पुरुषमे है वही राजा है । और यह गुण यावत् उद्योगसाध्य है ॥ याते उद्योगी पुरुष राजा हो सकता है। (राजकु०) तो महाराज ! उद्योगी पुरुष यथेष्ट उद्योग कर गुणसंपादन करके राज्यपदको क्यों नहीं प्राप्त होते । प० प्रियदर्शन ! इसमे कारण दो हैं। एक तो यथावत् उद्योग करनेके मार्गको न जानना । दूसरे पुरुषान्तरके उद्योग से प्रतिबध्य प्रतिबन्धक भावको प्राप्त होना । जैसे—पाठशालामे एक श्रेणी के पचास लडके परीक्षार्थ नियुक्त किये जावे उनमे से जो हरएक बातमे १०० नम्बर पावे वही सर्वाग्रणीयोत्तीर्ण होवे है । बाकी सभी लडके नम्बरभी पातेहै, परीक्षोत्तीर्णभी होते हैं परन्तु जिस प्रतिष्ठा को सबसे अधिक नम्बर पानेवाला लाभ करता है, उस प्रतिष्ठा को न्यून नम्बर पानेवाले लडके कदापि लाभकर नहीं सकते । अब उसकी प्रतिष्टा मे तथा अधिक नम्बर पाने मे दत्तचित्त होकर उसका अभ्यासही कारण है, और अभ्यास उद्योग विना होवे नहीं। वैसेही पूर्वोक्त गुणो में जो सबसे उत्तीर्ण है वही महाराजा है । जो न्यून गुणो-

वाले हैं वह छोटे राजे हैं। (राजकु०) वर्तमान कालमें हमारे देशमें महाराजा कौन है। (प०) सरकार गवर्नमेण्ट (राजकु०) तो फिर गवर्मेण्टमें तो पूर्वोक्त यावत् गुण नहीं घटते कैसे महाराजा हुए। (प०) कौन गुण गवर्नमेण्टमे नहीं। (राजकु०) वर्णाश्रम धर्मअन्वित को धार्मिक कहतेहैं यह आपका चौदहवाँ गुणहै सो गवर्नमेण्टमें नहींहै क्योंकि गवर्नमेण्टका न कोई वर्ण है न आश्रम है। (प०) प्रियदर्शन ! यह वार्ता, तुम अपनी कल्पनासेही कहते हो कि, किसी शास्त्र को मानके। (राजकु०) लोग ऐसेही कहते हैं हमभी कहतेहैं। (पं०) लोग अशास्त्री पशुप्राय हैं उनके कहने का कौन प्रमाणहै। तो फिर शास्त्रमे क्या व्यवस्था है। (प०) शास्त्रमात्रमे गुणकर्मके अनुसार वर्णव्यवस्था है। (राजकु०) शास्त्रके एक द्वय वाक्य यदि कृपाकर सुनावें तो आनन्द होय। (प०) हे प्रिय ! पाण्डवोंके प्रसगमे युधिष्ठिर ने जो सर्पको कहेथे उनको स्मरण करो तथा और भी श्रवण करो इसी श्रीभगवद्गीताजीके ४ अध्यायके १३ श्लोकमे भगवान् इसी वार्ताका परम प्रियभक्त अर्जुन को उपदेश करतेहैं।

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।

अर्थात् श्रीकृष्णदेव कहते हैं ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, तथा शूद्र ये चार वर्ण हमने गुण कर्मोंके विभागसे रचे हैं। श्रीकृष्णदेव हमारे सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् सर्वसृष्टिके कर्ता हर्ता परमेश्वरका अवतार हैं उन्हों ने केवल भारतभूमि मात्रको ही बनाया देशांतरों को नहीं बनाया ऐसा तो हम भूलके भी मान नहीं सकते किंतु सर्वदेशोको तथा खण्डब्रह्माण्डोको उसी कृष्ण परमात्माने बनाया है यही सर्व आर्योंका मतव्य है, तो फिर समदर्शी कृष्ण परमात्मा केवल भारतमात्रमे वर्णव्यवस्था बनावे यूरोपादि देशोमे तथा सूर्य्य चन्द्रादि लोकोंमें न बनावें इसमे क्या विनिगमक है। याते हे प्रियदर्शन ! उसी कृष्ण परमात्माके बनाये गुणकर्मोंके अनुसार यूरोपादि देशोमे भी ब्राह्मण क्षत्रियादि विद्यमान हैं, जैसे—ब्राह्मणोंके शमदमादिगुणोवाले अनेक ब्राह्मणहैं और क्षत्रियोंके शौर्यादि गुणोंवाले अनेक शूरवीरहैं इत्यादि। (राजकु०) ईश्वर स्वतन्त्रहै क्या जाने उसने भारत मात्र

मे ही चार वर्ण बनाये हो । (प०) भारत मात्रमे बनानेका ईश्वरको कौन प्रयोजन है । (राजकु०) महाराज ! यह कर्मभूमि है इस भूमि पर वर्णाश्रमके अनुसार कर्मों को करके पुरुष परम पदको लाभ करेहैं दूसरीमें नहीं याते वर्णविभाग इसी भूमि में परमात्माने किया । (प०) तो क्या यूरोपादि देश फलभूमियाँ हैं वहां क्या किये पुण्य पाप का फल नहीं होता ? (राजकु०) क्या जाने महाराज कुछ पता नहीं लगता । (प०) तो फिर हे प्रिय ! शास्त्रके अनुसार तुम हमारे वचनपर विश्वास करो गुणकर्म के अनुसार चारो वर्ण ईश्वर की सृष्टिमात्रमें हैं । स्वस्ववर्णानुसार किये कर्मका फलभी यथावत् होवे है । (राजकु०) महाराज ! कितने पुरुषो में पूर्वोक्त कतिपय गुणोके अभावसे भी राज्यपदवी देखी, जैसे—महाराजा रणजीतसिंह पजाव का राजा वेदको नहीं जानताथा । (प०) हे प्रिय ! पूर्वोक्त गुण चक्रवर्ती राजाके हैं । जिसमें जितने कम उतनाही वह कम राजा होगा परन्तु उनमे भी शूरता, दातृत्व, मैत्री, अव्यसनता इत्यादि गुण प्रधानहैं । इनके होनेसे वेदत्रयज्ञातृत्वादि गुण न भी होवें तो क्षति नहीं । देखिये महाराजा रणजीतसिह यद्यपि वेदत्रयज्ञाता न था परन्तु स्वसत्त्वकालमे शूरतामे एकही था तथा दाता भी एकही था, मित्रभावनिर्वाहक भी एकही था इत्यादि अनेक गुणोंसे महाराजा पूर्णथा, याते उसके सत्त्वकालमे यथावत् राज्यप्रवन्ध रहा तदनन्तर पूर्वोक्त गुणोंसे विपरीत गुणोवाले तुच्छबुद्धि पुरुषो ने यावत् राज्यकार्य्यों को नष्ट भ्रष्ट करा तो गवर्नमेण्ट सरकारने कृपाकर आप नानाविध क्लेश उठाकर भी महाराजा की प्रजाको आगेसेभी आराममे बसाया, दूसरे राजाके राज्यमें राज्यातरके पुरुषोंका कुछ भी जोर नहीं होता यह वार्ता अत्यत प्रसिद्ध है परन्तु महाराजाका एक लालसिह नामक सरदार तीर्थयात्रार्थ श्रीकाशीजीमें एकसौ सिक्खोके साथ आया तो देखा कि, विश्वनाथके दरवाजेके सामने मुसलमान लोग हिंदुओको दुःखी करनेके निमित्त जोरसे गोमास वेच रहे हैं, सरदारको देख कर अति रज हुआ और सिक्खोंको हुकुम कतल करदेनेका किया कोई पदरह या वीस यवन मारडाले किसीने पूछा भी नहीं कि, किसने मारे और क्यो मारे परन्तु यह प्रताप सारा महाराजकी अंगरेज सरकारके

साथ मैत्री का है अन्यथा सौका सौही पकडा जाता, याते हे प्रिय ! कोई भी शुभ गुण यावत्जीवोंसे अधिक होना चाहिये वहीगुण अवश्य राज्यपदको देगा राजा नाम सर्वोत्कृष्ट प्रतिष्ठित पुरुषका है। सो देखिये गृहमात्रमें अधिक गुणयुक्त पुरुषकी गृहमात्रमे प्रतिष्ठा, ग्राममात्र मे अधिक गुणयुक्तपुरुष की ग्राममात्रमे प्रतिष्ठा देशमात्रमे अधिक गुणयुक्त पुरुष की देशमात्रमे पूजा, परन्तु राज्यके वास्ते पूर्वोक्त गुण अपेक्षितहैं। (राजकु०) महाराज ! अपने भाग्यसे कितने महा-निर्गुण मूर्ख भी राजा बनजातेहैं। (प०) हे प्रिय ! पूर्वोक्त गुणो मे जिसमे एक भी न हो वह राजा कदापि नहीं होसकता और तुमने भी न देखाहोगा। (राजकु०) महाराज ! जिसका बाप राजा होय उसको अपने पिता की गादी अवश्यही मिलजातीहै चाहे कुछ भी गुण न होय और पुरुषार्थ की तो क्या कथा है चाहो सोये को दिन भर होश न आवे परन्तु तौ भी अपने पिता के स्थान पर पुत्रही बैठेगा, न कि, कोई और उद्योगी। (प०) हे प्रिय ! एक उत्तर तो हम पूर्व देचुके हैं कि, यह नियम नहीं है जो दूसरेका उद्योग दूसरेके काम न आवे कई एक कार्य्योंमें एकका उद्योग कितनों के काम आसकता है, जैसे-- भोजन का बनाना, एकके बनानेसे एक सौ आदमी भोजन करसकते हैं, और कितनेक स्थलोंमे उसका उद्योग उसी पुरुष को काम देता है दूसरे को नहीं, जैसे--भोजन का खाना, चैत्रके खाने से मैत्र को कुछ लाभ नहीं है उसको पृथक् भक्षणरूप उद्योग करनाही पडता है, तैसेही यदि पिता के उद्योग से कुछ पुत्रको मिल भी जाय तो उद्योग से विना ही पुत्र को मिला यह नहीं कह सकते उसका पिता उद्योग करचुका है, उससे पुत्र यदि गुणज्ञ होय तो पिता के राज्यादि कार्य्योंको यथायोग्य करके उद्योगसे सुखलेवे अन्यथा निर्गुण व्यसनी राजकुमारको मत्री लोग शीघ्रही मार डालते है याते हे प्रिय ! निश्चय कर पूर्वोक्त गुणयुक्त ही राजा होता है अन्यथा कदापि नहीं। (राजकु०) महाराज ! यदि उद्योगही से राज्यादि प्राप्त होतेहैं तो आपभी किसी देशके राजे उद्योगसे क्यों नहीं बन जाते। (प०) हे प्रिय ! प्रथम तुम यह बताओ गुरु बडा होता है कि, चेला। (राजकु०) महाराज ! गुरु बडा होता है। (प०) तो फिर हम उद्योगसे विद्या सपादन करके

राजाओंके गुरु तो बन चुके अब राजा बननेको क्या अब पतनका उद्योग करे। (राजकु०) महाराज! कथन करने की वार्त्ता पृथक् है परन्तु विना भाग्य से राज्यैश्वर्य्य का मिलना अतिदुर्घट है क्या उद्योगसे पुरुष आकाशमें उड सकता है वा चन्द्रको पकड सकता है किंवा समुद्र तर सकता है कदापि नहीं, जो कुछ भाग्यमे है वही होताहै। (प०) क्या प्रारब्धसे पूर्वोक्त आकाशगमनादि कार्य्य करसकता है। (राजकु०) हां देखिये अपने भाग्य से पक्षी आकाशही मे उडा करतेहैं तथा भूरिभाग्ययुक्त जीव चन्द्रलोकही मे निवास करतेहैं और महामत्स्यादि अनायास समुद्र तरसकते है। यह रचना सारी प्रारब्धहीकी है। कदापि उद्योगी पुरुष समुद्रादितरणार्थ मत्स्यादि नहीं उद्योगसे बनसकता (प०) हे राजकुमार! हमारा तात्पर्य यह है जो सम्भव क्रिया ऐसी कोई नहीं जो पुरुषउद्योगसे न होवे, और असम्भव क्रिया को तो तुम्हारा प्रारब्धकर्म को प्रेरके फल देनेवाला ईश्वरभी नहीं करसकता जीवों की क्या कथा है। (राजकु०) कौन ऐसी क्रिया है जो ईश्वरभी न करसके। (प०) क्या तुम्हारा ईश्वर दूसरा अपने जैसा ईश्वर बना सकता है कदापि नहीं, क्या यदि चाहे तो मरसकता है सोभी नहीं, क्या यदि चाहे तो अपवित्र हो सकता है सोभी नहीं, तो फिर पुरुष मात्र से असम्भव कार्य्यका निदर्शन देकर प्रारब्धको सिद्ध करना केवल हठमात्र है। और यदि बुद्धिपूर्वक यत्न होय तो पूर्वोक्त तुम्हारे कहे असम्भव कार्य्यभी पुरुष करसकता है। समुद्रतरणार्थ देखिये जहाज अग्निबोटादि जलयान मत्स्यादिजीवो से भी शीघ्र चलते हैं, सो केवल पुरुषप्रयत्न का प्रताप है। आकाशमे गमनार्थ भी यान विद्यमान हैं। अमेरिकादेशनिवासी उद्योगीपुरुषो ने बनाया है और हे प्रिय! ईश्वर अंगरेज सरकारके राज्यको चिरपूर्वक रक्खे, आशा है कि, चन्द्रादिलोको के गमनार्थ भी यन्त्र बनेंगे और लोग चन्द्रादिलोकोमे आया जाया करेंगे। (राजकु०) महाराज! मैंने कितनों को देखा कि, अतिनीतिनिपुण भी प्रारब्ध केरो राज्यभ्रष्ट हुए। और कितनोंको देखा कि, कुछभी जिनको ज्ञान नहीं उनको अकस्मात् राज्य मिला। (प०) हे प्रिय! पूर्वोक्त गुणोंकी न्यूनता से राज्यभ्रष्ट होना

सम्भवहै परन्तु पूर्वोक्त गुणयुक्त पुरुषको कोई भी राज्यभ्रष्ट करने की इच्छा नहीं करता, क्यो कि दातृत्वशक्ति से सर्व वशीभूत रहतेहै। और शौर्य्य गुण से यावत् भयभीत रहते हैं तो फिर राज्यभ्रष्ट करनेकी किसकी सामर्थ्य है। और अकस्मात् आकाशसे गिरता राज्यपद मैंने तो किसीको आज तक देखा नहीं जो जो राज्याधिकारी होगा उस उस पुरुष का प्रापणीय राज्यपदके साथ आवश्य कोई एक विशेप सबध अपेक्षित है। अनेक पुरुषों में जिसका सबध अधिक अतरग है और पूर्वोक्त गुणयुक्त भी है तो अवश्य वही राजा होगा, यदि अंतरंगसम्बन्धवाले पुरुपसे बहिरगसम्बन्धवाले पुरुषमें पूर्वोक्त गुणों का आधिक्य होय तो वही होगा गुणोंके आगे सम्बन्धकी अन्तरगता अन्यथा सिद्धहै। उनमेसे यद्यपि राज्यसम्बन्ध तो पुरुपप्रयत्नसाध्य नहीं तथापि पूर्वोक्त गुण तो यत्नसम्पाद्य हैं याते यत्नशाली पुरुप राज्यपदको प्राप्तहोवे है कुछ दोप नहीं। (राजकु०) महाराज! क्या शूरतादि गुणभी यत्नसाध्य हैं। (प०) हा अवश्य यत्नसाध्य हैं जिसका शस्त्रविद्या मे अभ्यास है वह एकही युद्धकालमे एकसौ पुरुषके वास्ते बहुत है। शस्त्रविद्याभ्यासी पुरुप सिहके आगे अनभ्यासी सैकडों शृगालों की तरह दौडते जाते हैं। और भेडियोंकी तरह गले कटालेते हैं। (राजकु०) महाराज! इस विचित्र संसारमे कितने पुरुष दत्तक होकर राज्याधिकारी होते हैं। और कितने अज्ञात कुल गोत्र अकस्मात् निर्वंश राजाको प्राप्त होकर राज्याधिकारी होते हैं, याते यह रचना सारी प्रारब्धकी ही प्रतीत होती है। (पं०) हे प्रिय! दत्तक या अज्ञात कुल, गोत्र पुरुष यदि राज्याधिकारी होय भी जाय तो भी पूर्वोक्त गुणशून्य राज्याधिकारी रह सकता है? कदापि नहीं याते पूर्वोक्त गुणो ही की प्रधानतासे राज्याधिकारी है यही यथार्थ है और गुण विना उद्योगसे सम्पादन होते नहीं। (राजकु०) तो भी प्रारब्धने तो अपना वेग दिखला दिया, पीछे चाहो उद्योग की न्यूनतासे भ्रष्ट ही होजाय। (पं०) तो फिर कल्पितशेष तुम्हारी प्रारब्ध मुख्य और प्रबल तो न रही। उद्योग विना अपना भोग भी न दे सकी। (राजकु०) हम कल्पना करेंगे कि, उसकी प्रारब्धमें उतना कालही राज्यपद था सो होचुका पीछे से भ्रष्ट होगया (प०) तुम तो कल्पना करोगे और हम स्पष्ट देखते हैं,

कि दुराचार से राज्याधिकारी नष्ट भ्रष्ट होते हैं, यदि तुम मनसे रज्जुमे सर्पकी, ठूँठमें चोरकी कल्पना करो और दूसरा पुरुष स्पष्ट रज्जु, ठूँठको ही देखे तो कौन यथार्थावगाही होगा ? (राजकु०) दृष्टान्तमें तो रज्जु, ठूँठके देखने-वाला ही यथार्थ देखता है, परन्तु दृष्टान्त विषम है । (प०) क्या विषमता है ? (राजकु०) रज्जुसर्पादिकी तो केवल मिथ्या कल्पना है, रज्जुमे सर्प तथा ठूँठमे चोर तो कालत्रयमे कभी हुआ ही नहीं और प्रारब्ध तो पूर्वकृत भोगोन्मुख कर्मोंका नाम है यातें दृष्टान्त विषम है । (प०) क्या तुम स्मरण करसकते हो, कि हमने अमुक जन्ममे, अमुक योनिमे, अमुक कालमें अमुक शुभ या अशुभ कार्य्य किया था जिसका यह फल है । (राजकु०) स्मरण यद्यपि नहीं करसकते तथापि वर्त्तमान फलभोगसे पूर्वकृत कर्मोंकी कल्पना कर सकते हैं । (प०) तो बस, कल्पित तत्त्वधर्म दोनोंमें तुल्य है दृष्टान्त विषम नहीं । (राजकु०) महाराज जब प्रारब्ध ने भोग देना होता है आप उद्योग करवा-लेती है । (प०) तो फिर उद्योग स्वतत्र तो न हुआ जैसा प्रारब्ध करवा-वेगी वैसाही होगा । (राजकु०) इसमे क्या सन्देह है । (प०) तो फिर पूर्व जन्मजन्मातरमें प्रारब्धसे किये पापकर्मका वर्तमान जन्ममे दुःख फल तथा पापान्तर करनेमें प्रवृत्ति बलात्कारसे होगी वैसेही पूर्व जन्म जन्मान्तरमे प्रार-ब्धसे किये पुण्यकर्मका वर्तमान जन्ममे सुख तथा पुण्यान्तर करनेमें प्रवृत्ति भी बलात्कारसे होगी । (राजकु०) हो वो दोष क्या है । (प०) दोष तो यही है, कि पापी जीव सदा पापकर्मोंकोही करते तथा भोगते रहेंगे और पुण्यी पुरुष पुण्योंको ही करते तथा भोगते रहेंगे । अर्थात् पापी जीवका पापसे निःसरण तथा पुण्यात्मा पुरुषका पुण्यसे उद्धरण कल्पकोटि में भी होना दुर्घट होगा । (राजकु०) ऐसेही रहो. विचित्र ससार है अनेक पुण्यवान् भी हैं तथा पापी भी हैं । (पं०) तो फिर पुण्यो से उत्कृष्ट गतिकी तथा पापोंसे अधोगति की अवधि कहां तक रहेगी । (राजकु०) पुण्योकी अवधि स्वर्ग है और पापोंकी अवधि नरक है । (पं०) तो फिर अनन्तकोटि युगोंसे यह ससार है पाप पुण्यको मूल सूदवत् नित्य वृद्धिको प्राप्त होनेसे अद्यावधि पुण्यवान् जीव स्वर्गही में होने चाहिये और पतित जीव नरकहीमे होने चाहिये, यह मध्यपाती

कैसे प्रतीत होते है ? (राजकु०) महाराज ! पुण्य पाप की गति अति सूक्ष्म है, अल्पज्ञ जीव यथावत् जान नहीं सकता परन्तु तथापि व्यवस्था लगानेके लिये कल्पना होसकती है, जैसे—कृषिकार अपने खेतमे ९ सेर अन्नका बीज बोवे है और कितने मन अन्न को पैदा करे है । अग्रिम सालको फिर उसी अन्नमेसे पाच सात सेर बोवे-है शेष भक्षणके काममे लावे है वैसेही पुण्यवान् या पापी जीवभी पुण्य या पापरूपबीजको बोवे है, जन्मातरमे तत्प्रयुक्त बहुत सा सुख वा दु खरूप फल भोग करे है । और जन्मातरमे पुन: भोगार्थ बीजवत् पुण्यवान् जीव पुण्यको बोवे है और पापी पापको याते अतिशीघ्रतासे स्वर्ग वा नरक को जीव जा नहीं सकता । (पं०) तो फिर कैसे स्वर्ग वा नरक को जीव जासकता है । (राजकु०) पुण्य अधिकसे स्वर्गको और पाप अधिकसे नरकको । (प०) तुम्हारी व्यवस्यासे तो पुण्योकी वा पापोकी अधिकता होनेका कोई मार्ग नहीं है । (राजकु०) हम यह कल्पना करेगे कि, पुण्यात्मा जीव प्रतिजन्म थोडा थोडा अपने पुण्योंको बढाता है और ऐसेही पापीभी प्रति जन्म अपने पापको बढाता है । (प०) हे प्रिय ? तुम्हारी इस कल्पनामे तीन दोष हें प्रथम तो यह कि, थोडे २ पुण्य वा पापके प्रति जन्म अधिक होनेसे भी अनन्त कालका ससार है कोई एक काल अवश्य ऐसा आना चाहिये कि, जिस कालमे यावत् जीव स्वर्ग वा नरकहीमे प्रविष्ट होंगे, स्वर्गीको स्वर्गसे निकलनेका तथा नारकीको नरकसे निकलनेका पीछे कुछ उपाय नहीं रहेगा । द्वितीय तुमने कहा कि, जीव प्रतिजन्म अपने पुण्य वा पापको वढाता है सो प्रयत्नसे बढाता है किवा स्वयमेव बढते हैं यदि यत्नसे वढाता है तौ तो हमारा ही मत सिद्ध हुआ विना यत्नसे पाप और पुण्यभी न बढसके, यदि कहो कि, स्वयमेव बढते है तो उनका स्वयमेव बढना स्वभाव है कि, किसी कारणान्तर की अपेक्षा करते हें यदि स्वभाव कहो तो स्वभाववादी नास्तिकमत प्रवेशप्रसग होगा । यदि कोई कारणान्तर कहो तो सो भी चेतन मानोगे वा जडमानोगे यदि चेतन मानोगे तो चेतनभी स्वाश्रित यत्नसे वृद्धिमे हेतु है किवा सत्तास्फूर्तिमात्रसे यदि यत्नसे कहो तो हमारे पूर्वोक्त उद्योगका स्वाराज्य सिद्ध हुआ क्यों कि, यत्नहीका नामान्तर उद्योग है यदि सत्ता-

स्फूर्ति मात्रसे वृद्धिमे हेतु चेतन है ऐसा मानो तो चेतनको व्यापक होनेसे सर्वत्र विद्यमानता भी है तथापि कारणान्तर सहकारताके विना केवल सत्ता-स्फूर्ति मात्रसे चेतन किसीभी वस्तुका कारण लोकमे दृष्टिचर नहीं है और कल्पनाका स्वभाव है कि, दृष्टानुसारिणी अदृष्ट वस्तुकी कल्पना होतीहै, यदि जड वृद्धिमे कारण है ऐसा मानों तो जड वस्तु भी चेतन आश्रित पुण्य पापादि धर्मोकी न्यूनाधिकतामें हेतु अदृष्टचर है। तृतीये-प्रति जन्म पापी पापको वा पुण्यात्मा पुण्यको वढाता है सो क्या इच्छापूर्वक वढाता है वा स्वभाव-सिद्ध? यदि इच्छापूर्वक कहो तो ससारका यह नियम है कि, जीव मात्रकी प्रवृत्ति सुखके उद्देश्यसे होती है तो फिर पुण्यवर्द्धक पुरुष तो स्वर्गरूप सुखके उद्देश्यसे प्रतिजन्म पुण्यका वर्द्धक भी होय, तथापि आपकी कल्पनामे पापी भी पापकी वृद्धिके लिये प्रतिजन्म इच्छा करता है और वढाता है यह भी महा-अद्भुत है। क्या पापी जीव भी अपनी इच्छासे नरकको जाना चाहते हैं. कदापि नहीं। और इच्छा होभी जाय तो भी हमारे यत्नका स्वाराज्य तो सिद्धही रहा, क्यो कि, यह शास्त्रका लोकानुसारी नियम है कि, 'जानाति, इच्छति, यतते, अर्थात् पूर्व जीव वस्तुको जानता है पीछे उसकी इच्छा करता है तदनन्तर उसकी प्राप्तिके निमित्त यत्न करता है यदि स्वभावसिद्ध कहो तो स्वभाववादी नास्तिकमत प्रवेशप्रसग होगा और कोई काल ऐसा भी मानना पडेगा कि, जिस कालमें यावत् जीव स्वर्ग वा नरक को प्राप्त होंगे। (राजकु०) ऐसा काल मानभी लेवे तो क्या दोप है। (प०) विद्यमान ससारका उच्छेद ही दोष है और शास्त्रविरुद्ध कल्पनाभी है मीमासा-शास्त्रका सिद्धान्त है कि, "नहि कदाचिदनीदृश जगत्" अर्थात् ऐसा काल कोई भी नहीं है जो जगत् इसीतरह विद्यमान प्रवाहरूपसे जिस कालमें न होय। (रा०) महाराज ! यह मीमांसाशास्त्रका सिद्धान्त तो जगत्के अनन्त कालसे प्रवाहरूपकी दृष्टिसे है अन्यथा अनेक श्रुति स्मृतियोमे जगत् की उत्पत्ति तथा प्रलयका वर्णन है उन सभीसे मीमांसाकी परिभाषाका विरोध होगा देखिये-" यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद्विजिज्ञासस्व तद्ब्रह्मेति " अर्थात् जिस परमेश्वरसे यह प्राणी उत्पन्न

होकर जीवन को लाभ करते हैं तथा प्रलयकालमें जिस परमेश्वर मे प्रवेशको लाभ करते हैं उस परमेश्वरको तू जाननेकी इच्छा कर वही ब्रह्म है इत्यादि अर्थके अनेक श्रुतिवचनोंमे जगत्की उत्पत्ति तथा प्रलयका कथन स्पष्ट है। ऐसेही और भी अनेक आर्ष ग्रन्थोमे ससारकी उत्पत्ति प्रलयका प्रसंग है याते सबसे विरुद्ध मीमासासंकेतका अर्थही अनादि तात्पर्य्यसे दीर्घकाल परत्व मानना उचित है, और प्रकृतमे यह सिद्ध हुआ कि, यदि कोई काल ऐसा आ भी जावे जो यावत् जीव स्वर्ग तथा नरकमे चले जावे और ससार उच्छेद होजावे तो कुछ दोपरूप नहीं है प्रत्युत शास्त्रानुसारी उत्तम कल्पना है। (पं०) हे प्रिय ! मीमासाके नियमका जैसा तुमने अर्थ कल्पना किया तथा श्रुतिका जो तुमने अर्थ करा सो वैसेही रहो अच्छा है परन्तु प्रलयकालमें जीव स्वर्गमें वा नरकमे पडजाते हैं केवल इस मध्यवर्ती जगत्के उच्छेदहीका नाम प्रलय है यह शास्त्रका सिद्धान्त नहीं है किन्तु स्वर्ग नरकादि यावत् लोक प्रलयकालमे विनाशको प्राप्त होते हैं ऐसा शास्त्र का सिद्धान्त है सो श्रवण कर प्रथम प्रलय नाम त्रैलोक्य विनाश का है सो नित्य प्राकृत नैमित्तिक आत्यन्तिक भेदसे चार प्रकारका है नित्यप्रलय नाम सुषुप्ति अवस्थाका है । सुषुप्तिमे भी यावत् कार्य्य प्रपंचका प्रलय होवे है याते प्रलयव्यवहार शास्त्रमे है (१) द्वितीय प्रलयकार्य्य ब्रह्मविनाश निमित्तक है। कार्य्यब्रह्म नाम आदिसृष्टिकर्त्ता ब्रह्माका है उसके नाशसे यावत् कार्य्यजातिका नाश होवै है (२) तृतीय प्रलय ब्रह्माके दिन पूरे होनेसे होता है। सत्ययुगादि युगोंकी एक सहस्र चौकडी बीतने से ब्रह्माका एक दिन होवे है। ऐसेही सहस्र चौकडी युगप्रमित कालतकही रात्रि रहेहै (३) चतुर्थ प्रलय ब्रह्मज्ञानसे होवे है (४) इस रीतिसे चार प्रकारका प्रलय शास्त्रमे कहाहै सो चारो प्रकारके प्रलयमें स्वर्गादिकोंका स्थिरपना सम्भवे नहीं। (राज०) प्रलयकी व्यवस्था जैसे आपने कही वैसेही होय तथापि पुण्योका वेग स्वर्गावधि तथा पापोंका वेग नरकावधि रहे तो दोष क्या है। (पं०) दोप तो कुछ नहीं परन्तु हम पूछते हैं तुम्हारे सिद्धान्तमे पापी शुभगति को किसी प्रकारसे प्राप्त होसकता है कि नहीं। (राज०) हो सकता है यदि पापी भी आगेको शुभ कर्म करे तो शुभ गति होगी। (पं०) शुभ

कर्मको तो पूर्वले पाप करनेही नहीं देते यह तुम सिद्धान्त करचुके हो। (राज०) महाराज है तो वार्ता यहीं सत्य कि पापकर्म सर्वथा शुभकर्ममें प्रतिबन्धक होतेहैं क्योंकि, लिखा है [श्रेयांसि बहुविघ्नानि] अर्थात् कल्याण मार्ग बहुत विघ्नयुक्त होता है। तथापि कदाचित् दैवात् पूर्व जन्मजन्मान्तर के शुभ पुण्य लेशसे पतित पुरुष को भी सत्यशास्त्र का श्रवण तथा साधु पुरुष का संग होय तो उसके अनेक जन्म जन्मातरके पाप छूट जातेहैं और शीघ्रही वही पतित पुरुष उत्तम पदको लाभ करेहै। यही व्यवस्था मैने कई एक आप जैसे महानुभाव महात्माओंके मुखारविन्दसे श्रवण करी है। (प०) हे प्रिय! सत्यशास्त्र कौन है और साधु पुरुष कैसा होता है। (रा०) मैंने जितना श्रवण किया है सो आपकी सेवामें निवेदन किया सत्यशास्त्र कैसा होताहै तथा साधु पुरुष कैसा होताहै, आप कृपा कर श्रवण करावें मैं आयुपर्य्यन्त स्मरण रक्खूंगा। (प०) हे प्रिय! श्रवण कर मैं तुमको सक्षेपपूर्वक सुनाता हूं सत्यशास्त्र नाम वेदान्तशास्त्रका है वेदान्त नाम उपनिषद् का तथा तदनुसारी शारीरक भाष्यादि ग्रन्थोंका है। यद्यपि अपने २ घरमे न्याय वैशेपिकादि सभी सत्यशास्त्र हैं तथापि यथावत् रीतिपूर्वक पक्षपात त्यागकर मतमतान्तर देखनेवाले पुरुषको वेदान्तशास्त्रही अधिक सत्य प्रतीति होवेहै। यावत् शास्त्रोंके तात्पर्य्यका कथन संक्षेपसे आगे उत्तरार्द्धमें करेंगे। और साधुका लक्षण पद्मपुराणमे लिखा है—

"निर्वैरः सदयः शान्तो दम्भाऽहंकारवर्जितः।
निरपेक्षो मुनिर्वीतरागः साधुरिहोच्यते" ॥ १ ॥

अर्थात् जिसका किसीके साथ वैर न होय जो परदुःखसे दुःखी होनेवाला अति दयालु होय, जो अतिशान्तचित्त होय जिसमे दंभका तथा अहंकार का लेश न होय जिसको कुछ किसीकी इच्छा न होय जो विचारशील होय जिसका किसीके साथ स्नेह विशेप न होय उसका नाम साधु शास्त्रकारोने कहा है॥१॥ ये गुण जिस पुरुषमें या स्त्री में होवें वे ही साधु वा साध्वी है। कुछ कपडे

काषाय करलेने का तथा शिरोमुण्डन करालेने का नाम साधु नहीं है इत्यादि। और भी अनेक प्रकार के साधुके लक्षण पुराणोंमें लिखे हैं वे विस्तारभय से लिखे नहीं परन्तु पूर्वोक्तगुणयुक्त पुरुषमें ही ग्रन्थान्तरकथित गुणोंका भी समावेश होता है याते पृथक् कथन करनेका प्रयोजनभी नहीं है, सो हे प्रिय! ऐसे सज्जनों का सग तथा सत्यशास्त्र का श्रवणावलोकन बिना उद्योगी पुरुषसे होवे नहीं याते उद्योगही सर्वथा प्रबल है। (राजकु०) पूर्वकृत शुभकर्मलेशसे सत्संग तथा सत्यशास्त्र का श्रवण होजाय तो उद्योग व्यर्थ है। (पं०) तो फिर पूर्व शुभ कर्मभी किसी उसतेभी पूर्व शुभ कर्मने करवाया सो भी किसी उसते भी पूर्वने ऐसे पूर्व पूर्वसञ्चारिणी अनवस्था होगी, याते हे प्रिय! निश्चय कर जो सत्यशास्त्रके श्रवणकी तथा साधुपुरुषके सगकी तथा राज्यादि सम्पत्की प्राप्तिकी तो क्या कथा है क्रिया मात्र उद्योग से विना होवे नहीं। (राजकु०) क्रिया तो परिच्छिन्न द्रव्यमे रहती है उसमे उद्योग का क्या काम है (पं०) क्रिया परिच्छिन्न द्रव्यमे रहती है यह तो यथार्थ है परन्तु चेतन के यत्न विना किसी जड परिच्छिन्न पदार्थ मे क्रिया होती नहीं यह शास्त्रका सिद्धान्त है। (राजकु०) विचित्र ससार है कितने पदार्थ चेतन के सम्बन्ध से क्रियायुक्त होतेहैं, जैसे—घट पटादि और कितने स्वयमेव क्रियावान् हैं, जैसे—अग्नि; वायु आदि सूर्य्य चन्द्रादि,। (प०) हे प्रिय! जिस परिच्छिन्न पदार्थ में क्रियार्थ पुरुषप्रयत्न का सभव होय वहां तो पुरुष प्रयत्नहीसे क्रिया होती है और जहां न सम्भव होय वहां वेदानुयायी वृद्धोंने सर्वान्तर्यामी परमात्मा के प्रयत्न से क्रिया मानी है, जैसे-सूर्य्य, चन्द्र, वायु, अग्नि यह महाभूत किसी मनुष्य विशेष की आज्ञासे किंवा प्रयत्नसे भ्रमण नहीं करते और क्रियावाले तो दृष्टि पडतेहैं याते ऐसे महाभूतों के प्रेरणेमें परमेश्वर का प्रयत्नही कारण है इसीलिये श्रुतिमें ऋषियों द्वारा श्रवण होता है "भीतोऽस्माद्वायुर्वाति भीतोऽस्मात्सूर्य्यस्तपति" इत्यादि याते हे प्रिय! यह निश्चय कर कि, क्रियामात्र विना उद्योग से होती नहीं याते उद्योगही परम गुरु सर्वकार्य्य का साधक है, मिथ्याकल्पित प्रारब्ध कुछ भी नहीं करसकती। (राजकु०) महाराज! मैंने सुना कि, श्रीगंगाजी के किनारे पर एक छोटासा राजा था उसकी प्रथम पत्नीमेंसे एक पुत्र हुआ कुछ काल पीछे

द्वितीय राणीमे द्वितीय पुत्र हुआ तदनन्तर राजाका देह पात हुआ राज्याधिकार ज्येष्ठ पुत्रको हुआ कुछ काल पीछे उसी नूतन राजाकी विमाता अपने वैधव्यको न सह सकी किसी राज्यकार्य्याधिकारी पुरुषान्तर के साथ व्यभिचार करनेलगी, राजाने अतिदुःखित होकर विमाता को दासी द्वारा बहुधा शासना दी विमाता को दासीमुखसे राजाकी बातें सुन अति खेद हुआ और राजाके मारडेने का यत्न किया, सूपकार को कह कर भोजन मे विष देदिया थोडेही काल मे राजा बेहोश होगया तो विमाता ने शीघ्रही उसके जलादेने का प्रयत्न किया गंगाकिनारे जलाने को लेगये चिता पर रख शीघ्रही अग्नि लगादी अंगरेज सरकार के भयसे वह जलनेभी नहीं पाया जबतक शरीरके बालादि जले तो शीघ्रही गंगामे प्रवाह करदिया दैवात् उसको श्रीगंगाजीकी कृपासे विषके असरके पीछे होश हुआ, हाथ पाँव हिलानेलगा किनारे पर एक साधु की कुटी थी उसने जीवित पुरुष जानकर निकाल लिया औषधी सेवन कराकर कुछ कालमें साधुने उसके शरीर को यथावत् किया पूछा तो उसने सारा हाल अपना साधुसे कहा तो साधुने कहा तुम अब घर जाओ तो वह बहुत कहनेसे अपने ग्राममे गया वहाके लोगों ने उसको प्रेत समझा कुछ सन्मान न किया और जिन्होंने जानभी लिया कि. यह वही है वहभी उसकी विमातासे डरते उसमे सच्चा न देवें राज्यपर तो तभीसे उसका विमातृज भ्राता नियत होचुकाथा बहुत निर्णय हुआ कितने लोग कहे कि. वही है कितने कहे कि, यह नहीं है इसी वार्ता का मुकदमा अंगरेज सरकार के गया तो भी कुछ निर्णय न हुआ उसने अपनी स्त्रीके गुह्यस्थल के कुछ पते दिये तो उसकी स्त्रीको देख ठीक मिले तो सरकार ने जाना कि. यह वही है तो मुकदमा जीतनेवालाही था कि, उसकी विमाता ने दो चार लाख रुपया जजसाहब को देदिया उसका मुकदमा खारिज होगया उस राजकुमारने सुना है कि. अति कठिनतासे अपना जीवन पूरा किया सो ऐसी २ अनेकविधकी जीवों की विचित्र दशा को देखकर बलात्कारसे हमारे मनमें आता है कि, प्रारब्धका वेग अतिप्रबल है जो कि. राजकुमार को भी अतिप्रयत्नसे भी राज्याधिकार नहीं मिला। (पू० । हे प्रिय ! उद्योगही का विजय होताहै यह तो तुम हमारे सिद्धान्तको

अच्छीतरह जानतेही हो, शेष रहा यह विचार कि, अत्यन्त उद्योग करनेसे भी राजकुमारादिकोंको राज्यादि पदका न प्राप्त होना सो ऐसे स्थलमे हम यह कहते हैं कि, यथावत् उद्योगका स्वभावहै कि, कार्य्यकी सिद्धदशाको दिखलाना जिस स्थलमे उद्योगी के उद्योगसे उलटा करनेवाले उद्योग उपस्थित हैं वहां कार्य्यसिद्धिकारक उद्योग के सिवाय विरोधी उद्योगो का विनाशक भी एक उद्योग अपेक्षित है यदि वह न होगा तो कार्य्यसिद्धिकारक उद्योग चाहो मुद्दत पडारहो अपने करणीय कार्य्यके अन्तको कदापि प्राप्त न होगा, प्रकृत में राजकुमार को पूरा उद्योग करने न आताथा यदि राजकुमार पूरा उद्योगी होता तो विमाता चाहो कैसी ही नष्टा भ्रष्टा थी परन्तु उसके साथ विरोध न करता, यदि विरोधभी करा तिसपरभी यदि उद्योगी होता तो धोखेसे विषको कदापि न खाता, तिसपर भी यदि उद्योगी होता तो मुकदमा के वख्त चाहो करजाभी उठाता परन्तु रुपये का सकोच न करता अधिक उद्योग उसकी विमाताका था उसका विजय हुआ तो भी हमारे उद्योगही का विजय है कुछ दोष नहीं ।

इति राज्यप्राप्तिविचारे नवमो विश्रामः ॥ ९ ॥

अथ दशम विश्राम १०.

(राजकु०) महाराज ! कितने पुरुषों को जमीन मे गडाहुआ धन मिल-जाता है कितने पुरुष साधारण गुणयुक्त अपनी प्रारब्धसे खूब पुजवाते है । और कितनों के दश दश लडकी लडके होतेहैं कितने बिचारे एक २ को सहकते हैं क्या यह विचित्र रचना प्रारब्ध की नहीं तो कौन कर सकता है (प०). हे प्रिय ! प्रारब्ध की विचित्रतासेही जीवोको विचित्र लाभालाभ होवो, हम ईसाई तो नहीं जो प्रारब्ध ही को न माने परन्तु भेद इतना है कि, मुख्यता प्रारब्ध की नहीं किन्तु कार्य्यमात्रकी सिद्धि उद्योग हीसे होती है, यदि कोई पुरुष कुछ यत्न न करे खाली प्रारब्ध के भरोसेपर बैठे तो उसको चार दिन

जीना भी कठिन पड़जाय और हमने जैसे अन्य पुरुषके उद्योगमें अन्यके विरोधी उद्योगको प्रतिबंधक मानाहै वैसेही अन्य पुरुष के उद्योगमे अन्यकी मूढता को सहकारी भी मानते है, जैसे—हमको रस्ते में चले जाते या अकस्मात् जमीन में गडा धन मिला तो हमको तो थोडे ही उद्योग से मिलगया वस्तुत: वह उतने उद्योग का फल नहीं है लोकमे कितने वर्ष उद्योग करनेसे उतना धन मिलता है जो कि, उठाने मात्रके उद्योग से मिलगया परन्तु ऐसे २ स्थलोमे हम मार्गमें धन खानेवाले पुरुष की या जमीनमे दबानेवाले पुरुषकी मूर्खता को भी अपने उद्योग के सहकारी मानते हें और अल्प गुण युक्त पुरुष जो पुजवाते हैं वे क्या सचमुच अपने गुणको दिखलाके पुजवातेहैं कि, दगा फरेबसे पुजवाते हे यदि सच्चे गुणसे पुजवाते हैं तो वह थोडा गुणभी कुछ न कुछ जीवों को अवश्य उपकार पहुँचाता होगा सो ठीकही है उस पुरुषने यत्नकरके गुण सीखा है दुनिया का उपकार करता है और आपभी लाभ उठाता है इसमे प्रारब्धकी माईका क्या है और यदि वह दगा फरेब से पुजवाता है तो तौ भी हमारा मत तो सिद्धही रहा कि, उसने यत्नसे पुजवाया परन्तु तथापि ऐसी नीचता का उद्योग करना सभ्य-पुरुषो का काम नहीं है और सतति उत्पत्ति के विषय मे हम पूर्व कह चुके हैं कि, यदि पुरुष का पुरुषत्व धर्म और स्त्री का स्त्रीत्व धर्म यथार्थ बना है तो पुत्रादिके पैदाहोनेमें कुछभी सदेह नहींहै केवल परस्पर ससर्गमात्रका उद्योग अपेक्षित है और यदि दोनोने मूढतासे अपने २ धर्मको नष्ट भ्रष्ट करलियाहै तो सम्भव नहीं है कि, प्रारब्धका पिताभी आयकर पुत्रादि उत्पन्न करलेवे। (राजकु०) महाराज ! विद्या तो ससारमें अनेक प्रकारकी है सो तो प्रारब्धही से आती होगी देखाजाता है कि, एकही पाठशाला मे एकही अध्यापक गुरुके पास अनेक छात्र पढते हें तथापि कोई शुभ प्रारब्धवाला ही विद्या के परपार तत्त्व को पाताहै अन्यथा अनेक खाली श्रम उठाते हैं । (प०) हे प्रिय ! तुमने यह तो ससार में प्राय: देखाहोगा कि, जितने स्त्री पुरुष पैदा होते हैं कोई भी मातृगर्भसे साथ ही विद्याको लेकर आजतक न पैदा हुआ है और न आगे होगा, शेषरहा न्यूनाधिक विद्या का होना सो इस का

यह विचार है कि, ईश्वर की सृष्टिमें प्रायः यावत् प्राणी तीन विभाग से विभक्त हैं प्रथम उत्तम हैं, द्वितीय मध्यम हैं, तृतीय अधम हैं, जो जीव स्वकीयारब्ध कार्य्यको अपरजीवोंकी अपेक्षा से शीघ्र करे और प्रतिष्ठित लोगोंकरके प्रशंसनीय करे वह जीव उत्तमकोटिका है (१) और जो जीव स्वकीय करणीय कार्य्यको कुछ विलम्बसे करे और कृतकार्य्य की कोई एक कलाभी ऐसी न्यूनरहे कि, जिसको सिवाय उत्तम कोटि जीवके कोई न जानसके ऐसे कार्य्यकर्ताको मध्यम कहतेहैं (२) और जिस जीवसे बुद्धिपूर्वक करणीय कार्य्य बहुत कालतक करनेसेभी न होसके वे जीव अधम कोटिके, हैं (३) सो इस रीति से उत्तम पुरुष अति अल्पकालही मे सुशिक्षित होकर सांसारिक प्रतिष्ठा को लाभ करते हैं। और मध्यम भी अपनी शक्तिके अनुसार कुछ अच्छेही स्थानको प्राप्त होते हैं परन्तु अधमो को कुछभी नहीं आता खाली श्रम उठाते हैं, स्पष्टरूपसे उत्तम मध्यम अधम की परीक्षा यह है कि, जिसको स्वकीय पाठकसे श्रवण कर के फिर उसी विषय को किसी सहकारी पुरुषान्तर से श्रवणकी अपेक्षा न होवे वह उत्तम है (१) और जो गुरुसे श्रवण करके पुरुषांतरसे श्रवण की अपेक्षा रखता है वह मध्यम है (२) और जिस पुरुष को स्वकीय पठनीय विषय कई एक पुरुषो से श्रवणकरनेसे भी नहीं आता वह अधमहै (३) सो उनमे उत्तम मध्यम कोटिके पुरुष विद्याके अधिकारी हैं, अधमको विद्याका अधिकार नहीं है अधम को कार्य्यान्तर करना योग्यहै जो कि, बुद्धि से सम्बन्ध न रक्खे केवल शरीरायाससाध्यही होवे सो पूर्वोक्त रीतिसे प्रत्येक पुरुषको योग्यहै कि, प्रथम अपने दरजेको सोचे कि, मैं कौन दरजेका हूँ अपने दरजे के अधिकार से प्रवृत्त हुआ पुरुष कदापि हानि को प्राप्त न होगा। (राजकु०) महाराज! आपने ईश्वरकी सृष्टिमात्रके जीवोके तीन दरजे करदिये सो मेरी समझमे नहीं आते मेरे को तो केवल पुरुषोंहीमे अनेक प्रकारके प्रतीत होतेहैं। (प०) हे प्रिय! विचित्र ससारमें अनेक प्रकारके जीवहैं यह तुम्हारा कथन है तो सत्य परन्तु तथापि हम प्रत्येक पुरुष का दरजा जुदा जुदा तो रख नहीं कसते याते तीन भेद ही ठीकहैं, प्रायः स्पष्टरूपसे तीन विभागही प्रतीतभी होतेहैं। (राज०) यदि लोकमे तीनही

कोटि के पुरुष हैं तो परीक्षा कालमे अनेकविध नवर क्यो पाते हैं अर्थात् उत्तम श्रेणीवालोको सबको एक नंबर हीपाना चाहिये तैसेही मध्यम श्रेणीवालों को भी एक जैसाही सबको नवर पाना योग्यहै अन्यथा एक दरजे की हानि होगी। (प०) हे प्रिय! एकश्रेणीके पाठकोंके प्रायः तुल्यही नवर होने चाहिये परन्तु यदि कदाचित् एक उत्तम पाठक के द्वितीय उत्तम पाठक से चार पांच नवर कमती भी होवे तो भी उस उत्तम पुरुष की उत्तमताको दूर नहीं कर सकते क्यो कि, भ्रम[1], प्रमाद, विप्रलिप्सा, तथा इन्द्रियापाटव येह चार जीवके दोष हैं सो जीवहीमें रहते हैं।

यदि भ्रमसे वा प्रमादसे किसी एक उत्तम पुरुषने विपरीत लिख पढ दिया और दूसरे उत्तमसे चार नवर कमती पाये तो इतने से उसकी उत्तमता की हानि नहीं होसकती परन्तु यदि वह अधिकही कम नम्बर को पावे तो वह अपनी उत्तमता को भी खोय लेता है और उत्तीर्ण भी नहीं होता और यह तो तुम्हारेको निश्चयही होगा कि, उत्तम कोटिवालो में भी सबसे प्रथम वह होगा कि जिसने अधिक अभ्यास किया होगा ऐसीही रीति मध्यमकोटिवालोंमे भी जानने योग्य है और यह भी नीतिशास्त्रमे लिखा है कि, "विद्याभ्यासानुसारिणी" अर्थात् विद्या अभ्यास से होती है और अभ्यास उद्योगी पुरुषही करसकते हैं याते उद्योगही का सर्वथा विजय है। (राजकु०) यह भी तो नीतिशास्त्रही का कथन है कि, " बुद्धिः कर्मानुसारिणी " अर्थात् जैसे जीवने पूर्व कर्म करे होवे उनके अनुसारही पुरुष की बुद्धि होती है। (प०) हे प्रिय! यह तो तुमको भी निश्चय है कि, प्रथम उत्पन्न अवस्थामें जीवको किंचित् भी ज्ञान नहीं होता पश्चात् जैसे २ जिस कालमें जिस देशमें जिस वर्गमें जो जीव वृद्धिको प्राप्त होताहै वही जीव उसी कालके अनुसार उसी देशके अनुसार उसी अपने सजातिवर्गके अनुसार यथाक्रम ज्ञान बुद्धिशिक्षादिकोको ग्रहण करताहै अर्थात् जिस कालमें जिस देशमे जो जीव पैदा होयकर वृद्धिको प्राप्त

---

[1] भ्रम नाम वस्तु अन्तरमें वस्तुअंतरकी प्रतीतिका है जैसे शुक्तिमें रजतकी प्रतीतिहै। प्रमाद नाम भूलनेका है, विप्रलिप्सा नाम लोभ का है। इन्द्रियापाटव नाम मन्दान्धतादिकाहै।

होय उस काल के अनुसार उसी देशकी भाषा उस जीवको अनायाससे ही प्राप्त होती है तथा अपने बन्धुवर्ग की विद्या भी उसको अल्प श्रमसे ही प्राप्त होती है। यह वार्ता लोकविदित है कि, स्वर्णकी पूरी बुद्धि स्वर्णकारही को होती है, रत्नो की पूरी बुद्धि रत्नविक्रेताहीको होतीहै ऐसे ही जिस २ व्यवहारमे जो जो प्रवृत्त है उस २ कार्य्यको पूरी बुद्धि उसी जीवकी होती है दूसरेको नहीं, तो फिर बुद्धि कर्मों के अनुसार होती है यह तो हमभी मानतेही हैं क्यों किलोकमें यही वार्ता दिखाई देती है परन्तु तुमने कर्मों के साथ पूर्व शब्द कहां से जोड दिया श्लोक में तो खाली कर्म शब्द है पूर्व पर का नामहीं नहीं सो लौकिकानुभव से देखा जाता है कि, जैसे जीव कर्म करे वैसीही बुद्धि होजाती है कदापि हलालखोर की दयावाली बुद्धि नहीं होती तथा रकके पुत्रको राज्यऐश्वर्य्यका स्वप्नभी नहीं आता, एव धार्मिक पुरुष की बुद्धि कदापि परस्वत्वापं हरणवाली नहीं होती इत्यादि अनेक उदाहरण ससारमे विद्यमान हैं जिनते स्पष्ट प्रतीत होता है कि, जीवकी बुद्धि वर्तमानकर्मानुसारिणी ही होती है, पूर्व कर्म केवल दीपप्रकाशवत् पूर्वोक्त रीति से सहकारी मात्र हैं मुख्यता उद्योगहीकी है। (राजकु०) आपने कहा तीन प्रकारके पुरुष का विभाग सो तो पूर्व कर्म के ही अधीन है अपनी इच्छा से कदापि कोई उत्तम, मध्यम, अधम नहीं बन सकता। (प०) हे प्रिय ! उत्तमसे उत्तम तथा नीचसे नीच जैसा जिसने बनना होय अपनी इच्छाहीसे बनसकता है, तात्पर्य्य यह जिसने उत्तम बनना होय वह पुरुष दृढ यत्नसे सत्पुरुषों के सगद्वारा उनके सत्य भाषण सदुद्योग सत्प्रेमादि सद्गुणोको धारण करे, और जिस ने अधम बनना होय वह पुरुष नीचों के सगद्वारा उनके असत्य भाषण आलस्य अकारण द्वेषादि गुणोको यत्नसे सपादन करे। (राजकु०) जिस पुरुष को सत्पुरुषों के सग करने मात्र की बुद्धि नहीं है वह पुरुष कैसे उत्तम हो सकता है और उसका उद्योगभी क्या कर सकता है (प०) हे प्रिय ! हमारा यह तात्पर्य नहीं है कि, घृत, चीनी, मैदा से मिठाई बनतीहैं परन्तु उद्योगी पुरुष चाहे तो वालू, जलको मिलाकर भी मिठाई बना सकता है, हमारा तो यह सिद्धान्त है कि, "वस्तुसत्वे हि क्रिया प्रसीदति " अर्थात् कार्य्ययोग्य वस्तु में क्रिया लाभदायक होती है यदि

जिस पुरुषमें किंचित् भी विचारशक्ति नहीं तो वह सत्पुरुषों के सगसे कुछ लाभ भी नहीं उठा सकता (राजकु०) उसके विचारशक्तिशून्य होने में तो पूर्व प्रारब्धही कारण है। (पं०) यह तो हम पूर्व कह ही चुके हैं, कि, एक पुरुष की कार्य्यसिद्धिमे उसी के उद्योग की अपेक्षा होय यह तियम नहीं है. देखिये राजा की स्वराज्यसिद्धि में राजाको तथा उसके सहकारी सुशिक्षित सेना मन्त्री आदिकोंके उद्योगकी अपेक्षा है. ऐसे २ स्थलों मे एक के अभावसे वस्तु सिद्धि में दूसरे का प्रयत्न व्यर्थ होजाता है। ऐसेही पुरुष के विचारशक्तिके अभावमें हम सामान्यरूपसे प्रारब्धको कारणभी मानते हैं परन्तु मुख्य रूपसे माता पिताके उद्योगाभावहीको कारण मानते हैं, हम पूर्व कह चुके कि, चिकित्साशास्त्रानुसार आहार विहारादि करनेवाले पुरुष की सतति कदापि विचार-शक्तिशून्य नहीं होती परन्तु कुपुरुषसगति सत्पुरुष संगतिका यह स्वभाव है कि, विचारशक्तिको न्यूनाधिक करसकती है। (राजकु०) यदि प्रारब्धसे विद्या न आती होय तो पशु पक्षिआदिकोंके तो कहीं कालेज स्कूल विद्या सीखनेके बने दीखते नहीं परन्तु देखिये कैसे २ अपने रहनेके स्थान बनाते हैं। (पं०) तुमको यह कैसे निश्चय हुआ कि, वह शिक्षापाते हैं कि नहीं, हम तो पुरुषों की शिक्षाको देखकर अनुमान करते हैं कि, विचित्र कार्य्यरचना की शिक्षा पशुपक्षियोंमें भी होती होगी और यदि पुरुषोको प्रारब्धसे विद्या आती होय तो पाठशाला कालेजादि बनानेका कौन काम है जिसको चाहे तुम्हारी प्रारब्ध घर बैठेकोही तालीम देजायगी, परन्तु ऐसा आजतक कोई देखा तो नहीं याते यत्नहीकी मुख्यता है जिसने यत्न किया उसीने अभिलषित अर्थको पाया इसमें रचक भी सदेह नहीं है।

इति विद्याप्राप्तिविचारे दशमो विश्रामः ॥ १० ॥

अथ एकादश विश्राम ११.

(राजकु०) महाराज ! इस विचित्र ससारमें कितने जीव विद्युत्पातसे मर-जाते हैं तथा कितने प्राणी परस्पर रेलादि यानोंके टक्कर खाजानेसे मरजाते हैं और कितने जीव अकस्मात् विषादि भक्षणसे मरजाते हैं। ऐसी विचित्र रचना

प्रारब्धके मुख्यरूपसे माने विना नहीं बनसकती । (पं०) हे प्रिय ! मरजाते हैं इस वार्ताका तो उत्तर हमारे पास कोई नूतन नहीं, हम कहचुके कि, जो बनावट है सबका विनाश होगा किसीका चार रोज पीछे और किसीका दो रोज आगे, यह दोष केवल हमारे उद्योगपरही नहीं है विचारो तो तुम्हारी प्रारब्धपरभी तुल्यही है यदि कोई मरनेवाला होय और हम तुमको कहे कि, तुम तो प्रारब्धको अधिक माननेवालेहो जरा इसकी प्रारब्ध आगे प्रार्थनापूर्वक कह दो कि, दो चार दिन और जीता रहनेदेवे तो क्या तुम्हारा कहा उस मरनेवालेकी प्रारब्ध मानेगी या नहीं यदि मानलेवे तो हम उसीको प्रवल मान लेवे । (राजकु०) महाराज ! क्या प्रारब्धके कहीं कान आँख हैं जो हमारी प्रार्थनाको सुनले प्रारब्ध तो जन्म जन्मान्तर कृत भोगोन्मुख कर्मोंका नाम है जबतक उनकी भोगोन्मुखता रहती है तबतक शरीर नहीं छूटता जब भोगोन्मुखता नहीं रहती तब शरीर छूटजाता है । (प०) कहीं ऐसा तो नहीं होता जो एकही शरीरमे रहनेवाले इन्द्रिय प्राणादि तुम्हारी प्रारब्धके साथ लड जाते होवे और प्रारब्ध विचारी अकेली शीघ्रही उस शरीरको छोडना चाहती होवे । (राजकु०) नहीं महाराज ! प्रारब्ध तो इन्द्रियादि समुदायकी भी पोषक है उसका विवाद उनके साथ काहेको होगा । (पं०) सो ठीक परन्तु जहां तहा उद्योग पतिकी क्यों अपेक्षा करती है रॉड कह क्यों नहीं देती जो इतना चिर यह बीमार रहेगा या अवश्य मर जायगा तुमलोग मेरेसे विरुद्ध परिश्रम मत करो । (राजकु०) महाराज ! क्या प्रारब्धका कहीं मुख है जो कहदेवे परन्तु हां दुःख सुख भोगकी वार्ता तथा शरीरत्यागकी वार्ता यदि प्रारब्धके वेगको जाननेवाले देवज्ञोंसे यथेष्ट दक्षिणा देकर पूछी जावे तो वे सभी बतला सकते हैं फिर चाहो कोई श्रम करे चाहो न करे (पं०) ऐसे पूरे २ भूत, भावी, वर्तमान हालको कहनेवाले ज्योतिषी क्या इस संसारसे निःशेष होचुके हैं कि, कोई वर्तमान कालमे भी विद्यमान हैं । (राजकु०) महाराज ! इस अनादिप्रवाहाकार ससारमे कदापि किसीविद्याका निर्मूल होसकता है ? (पं०) तो फिर ऐसा एक कोई दैवज्ञ इस राजसभामें बुलवाइये जो परीक्षा करीजावे । (राज०) बहुत अच्छा मैं वर्तमान राजदैवज्ञोंको बुलवा देता हूं

ऐसा कह कर भृत्यको आज्ञा दी कि, श्रीयुत पण्डित गणपति ज्योतिषीजीको तथा पण्डित रामनाथ दैवज्ञजीको और पण्डित काशीनाथ शास्त्रीजीको शीघ्र राजसभामें बुलालावो भृत्य शीघ्र ही जाकर बुला लाया राजसभामे यथायोग्य स्थानोपर बैठके पण्डित गणपतिशास्त्रीजीने उच्चस्वरसे राजकुमारको आशीर्वाद देकर कहा हे राजकुमार मनोहरसिंह ! ईश्वर तेरेको मनोहर बनाया रक्खे जो हमलोग प्रतिक्षण देखकर आनन्दलाभकरे और कुछ विशेष जो होय सो आज्ञा कीजिये। (राजकु०) व्यासजीने ज्योतिषी लोगोको स्मरण किया था इस लिये मैंने आपलोगोंको श्रम दिया । (ज्योतिषी) पण्डित जी क्या आज्ञाहै । (प०) आपलोगोका नाम दैवज्ञ है क्या आप दैव का हाल सब कह सकतेहैं ? (ज्योतिषी) हां यथाशक्ति कहसकते हैं। (प०) आपके यथाशक्ति शब्दका अर्थ तो हम नहीं समझ सकते परन्तु हम पूछते हैं कि, आप ग्रहादि शोध कर जीव मात्र का आयु, नाश, हानि, लाभ कह सकते हैं या नहीं (ज्योतिषी) क्यों नहीं अपनी विद्या के अनुसार हम कहही सकते हैं। (पं०) तो फिर शीघ्र ग्रहादि शोध कर बतलाओ कि, यह जो पिंजरे के भीतर सारिका है सो कितना काल और जीवेगी (ज्योतिषी जी मनमे) हे दैव ! यदि हमने ग्रहादि शोध शाध के कुछ मन माना काल कह भी दिया तो, यह पण्डित इसी काल में सारिका को मरवा देवैगा क्यो कि, राजकुमार इसकालमें इसके हाथमे है । और यदि हम कहे कि, यह अभी मरेगी तो सो भी ठीक नहीं कौन जाने कब मरेगी (ज्योतिषी ऊपरसे) महाराज ! पशुपक्षियोंकी वार्ता भिन्न है परन्तु जन्मकालमे यदि हम किसी पुरुष के पूर्णरूपसे ग्रह शोधे तो मिथ्या नहीं होगा (प०) बहुत अच्छा यह कह कर उसी काल मे राजकुमार को कहकर एक ऐसी स्त्री बुलाई जो कि, कलहीको प्रसूता होनेवाली थी वह निर्द्धना थी एक सौ रुपये पर उसका गर्भ मोल लेलिया और ज्योतिषीजीके सामने करदी कहा कि, कहिये दैवज्ञजी यह गर्भस्थ बालक बाहर आकर कितना काल जीवेगा (ज्योतिषी मनमें) हे ईश्वर ! यह तो वैसीही फँसावटकी बात अबभी है जिसको हमने पूर्व टालाया (ऊपरसे) ऐसी फँसावट के स्थान

पर हम कुछ नहीं कह सकते क्यों कि, उभयथा हमको झूठाही होना पडेगा। (प०) तो फिर आप कैसे बतलाया करतेहैं। (ज्योति०) जहां कोई श्रद्धा भक्ति से पूछे और यदि कोई एक आध बात झूठीभी होय तो भी हमारा दोष तो माने परन्तु हमारे शास्त्रको सच्चाही माने ऐसे भक्तो को हम बतला देतेहैं। (प०) जैसे:चाहो बतलावो हमने तो केवल राजकुमार को शिक्षा देनी है प्रसगसे तुमलोगोंकोभी बुलालिया है। (राजकु०) महाराज-! क्या ज्योतिषशास्त्र सर्वथा मिथ्याही है। (प०) हे प्रिय ! इस शास्त्र के दो भाग हैं एक गणित, द्वितीय फलित, उसमे प्रथम भागमे तो किसी को सन्देह ही नहीं है अर्थात् सर्वसाधारणको माननीय है और सत्यहै और द्वितीय भागको तर्कनिपुणलोग यथावत् नहीं मानते घृणाक्षरन्याय से कितनी बाते सत्य भी होजाती हैं और कितनी बाते सर्वथा मिथ्या होती हैं। परन्तु बुद्धिमान् ज्योतिषीकी बताई बाते अधिक सत्य हो होती हें क्यों कि, वह सोच समझ के मनका ढगा लगाता है। (राजकु०) महाराज ! जो शास्त्रके अनुसार शोधके बतलाया जाय उसमें मनके ढगका कौन काम है। (प०) हे प्रिय ! मूढ ज्योतिषी का शास्त्रके अनुसार बतलाना भी दुःखहीका कारण होता है इसपर मैं तेरेको एक लोकप्रसिद्ध आख्यायिका कहताहू. श्रीकाशी जीसे पढ कर चार पण्डितोने देशान्तर भ्रमण करने की इच्छा करी उनमें एक आयुर्वेद जानता था द्वितीय वैयाकरण था तृतीय नैयायिक था चतुर्थ ज्योतिषी था चारो ही शास्त्रतो जानते थे परन्तु विचारशक्तिशून्य थे चारोंने मिलकर मताकिया कि, किसी राजधानी मे चलना चाहिये श्रीकाशीजीसे सिद्धयोग शुभमुहूर्त, शोधकर चले मार्गमे कुछ दूरपर छोटीसी राजधानी मिली चारोंने चाहा कि, राजासे भेट होय परन्तु भोजन प्रथम करलेना चाहिये तो आयुर्वेदी को तीनोने कहा कि, आप जाकर निरोग्यसा शाक चार पैसे का लेआवे तो ठीकहै आयुर्वेदी निघण्टु को हाथमे लेकर शाक खरीदने गया अनेक शाक देखे परन्तु गुण पाठमिलानेसे निर्दोष कोई भी दिखाई न दिया, शष नींम के पत्ते चार पैसे के ले आया मट्टीकी हंडिया में डाल अग्नि पर रक्खा जब उसका पाक होनेलगा तो वैयाकरणने कहा यह हडिया क्या

अशुद्ध शब्द बोलती है लकडी की चोटसे तोडडाली शेष नैयायिकको घृत-लेने भेजा तो वह मार्गमे घृतपात्र का आधाराधेय भाव सोचने लगा घृत गिर गया शेष जैसे तैसे भोजन किया और तीनोने मिलकर ज्योतिषीजीसे कहा कि, आप राजा के मिलने का मुहूर्त शोधें तो ज्योतिषीजीने बहुत सोच कर रात्रि को १२ बजे का मुहूर्त निकाला निदान वार्तालाप करते मुहूर्तकाल आयपहुँचा चारो उठकर राजमन्दिर को चले देखा तो चारो ओर किले के दरवाजे बन्द पाये निदान एक जलनिर्गम मार्गसे भीतर चारो ने प्रवेश किया सिपाहियोंने चोर जान चारो को पकडा प्रातःकाल राजदर्बारमे चारों पेश कियेगये राजाने शकलदेख कर जानलिया कि, यह बिचारे हमारे देशके भोले भाले पण्डितहै राजाने पूछा आपलोग रात्रिको कहां जाते थे उन्होने कहा हजूर की मुलाकातके वास्ते जाते थे आपके सिपाहियो ने नहीं जाने दिया राजाने कहा हमारी मुलाकात दिनको करलेते उन्होने कहा हम शास्त्री लोगहैं चाहो प्राणान्त क्यों न होजावे परन्तु शास्त्रविरुद्ध क्रिया नहीं करसकते हमारे शास्त्रसे जिसकालमें मिलने का मुहूर्त निकला हम चलदिये आपके सिपाहियोंने न मिलने दिया सो आपको दोष हमको क्या हमने तो शास्त्रानुसार चेष्टा करनी चाहो भलीहोय चाहो बुरीहोय राजाने मनमे सोचा कि, यह बिचारे अतिसूधे हैं जो हमको ही दोषभागी बनातेहैं अपनी बुद्धिपर दोष नहीं लाते, निदान राजाने चारों को कुछ दक्षिणा देकर बिदा किया और ईश्वर से प्रार्थना की कि, हे पूर्णपरमात्मन्! यदि ऐसेही हमारे देशके लिखे पढे लोग होंगे तो हमारे देश का क्या हाल होगा, याते हे प्रिय मनोहरसिंह! तुम हमारे सदुपदेश पर निश्चय करो कि, जो ससार मे बियाहै सबका बुद्धिसे सम्बन्धहै जो बुद्धिमान् है वह थोडा पढाभी बुद्धिपूर्वक काम करताहै और जो विचारशक्तिशून्य पुरुषहै उसके ज्योतिषशास्त्रकी तो क्या कथाहै यदि सिद्धि भी उसके पास होय तो वह काम में नहीं लासकता।

इति ज्योतिषशास्त्रतः प्रारब्धविचारे एकादशो विश्रामः॥ ११॥

अथ द्वादश विश्राम १२.
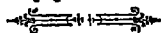
(राज०) महाराज ! विद्युत्पातसे मरणादि कितने प्रश्न मेरे शेष हैं उनका उत्तर कृपाकर कहें। (पं०) हे प्रिय ! मेघस्थित सघर्षोत्पन्न अग्निविशेष का नाम विद्युत् है सो प्रायः मेघमण्डलमे ही रहती है यदि अकस्मात् उसका भूमिपर पतनभी होय और, उससे किसी मन्दिर को वा वृक्षको वा किसी प्राणीको हानि पहुँचे तो तुम प्रारब्धमुख्यवादी तो साफ यही कहोगे कि, इसकी प्रारब्ध विद्युत्पातहीसे मरनेकी थी परन्तु उसमें मै यह पूछता हूं कि, क्या विद्युत्पात तुम्हारी प्रारब्ध पिशाचीका जीवोंकी हिंसाकेलिये शस्त्रहै यदि है तो फिर यावत् जीवो का उसीसे विनाश क्यों नहीं करती। (राज०) महाराज ! क्या शस्त्रधारी के पास एकही शस्त्र होताहै जो एकही मे यावत् जीवोका वध करे नानाविध शस्त्रोंसे नानाविध प्रहार होताहै जिसकी जैसी प्रारब्ध उसका उसी शस्त्रप्रहारसे मरण होताहै। (पं०) हे प्रिय ! सत्यहै परन्तु सोचना चाहिये कि, जैसे-शस्त्री पुरुष का शस्त्र किसी स्थलमे निष्फल होजाताहै अर्थात् बाध्य वस्तुका बाधक नहीं होता क्या वैसेही आपकी प्रारब्ध के शस्त्र भी किसी स्थल में निष्फल होतेहैं या नहीं यदि होतेहैं तो, प्रारब्ध का वेग प्रबल कदापि नहीं होसकता अर्थात् जैसे एक वीर अपने शत्रुके वधार्थ शस्त्रको छोडे परन्तु उस शस्त्रको मार्गही मे शत्रु अपने शस्त्रसे दो टुकडे करदेवे अर्थात् उस शस्त्रके बलको रोक देवे तो वह शस्त्र अबाध शस्त्र नहीं कहलाता वैसेही यदि प्रारब्ध के वेगसे चले विद्युत् आदि शस्त्र किसी न किसी का वध नहीं करे तो निष्फलही कहना होगा और हम तो सहस्रों स्थलों में विद्युत्पात को निष्फल देखतेहैं। (राज०) महाराज ! यह तो नियम नहीं है कि, पुरुष पशु आदि के मरनेसे ही विद्युत्पात सफल होताहै अन्यथा निष्फलहोगा देखिये भूमण्डल मे चौरासी लक्ष जीवयोनि पुराण-प्रख्यात हैं विद्युत्पातसे अवश्य किसी न किसी को हानि पहुंचती है। (पं०) उद्योगसे विद्युत्पातसे रक्षा भी होसकती है कि, नहीं। (राज०) कदापि नहीं। (पं०) तो हे प्रिय ! यही उपदेश वर्तमान कालके यूरोपदेशके

विद्वानोंको मनादेवो तो हमभी मानलेवें परन्तु देखिये वेह लोग अपने मकानोंमें विद्युन्निवारक ताम्रपत्र लगाते हैं इस वार्ताका निर्णय उनहीं लोगोंने किया है कि, ताम्रधातु, मे विद्युत् बाध नहीं होता अर्थात् ताम्रधातुमें विद्युत् अधिक है उससे विद्युत् आन्तरके बलका बाध होता है ॥

इति विद्युत्पातविचारे द्वादशो विश्राम॰ ॥ १२ ॥

अथ त्रयोदश विश्राम १३.

(राजकु॰) महाराज ! रेलादियानोंके टक्कर खानेसे जीव मरजाते हैं सो तो प्रारब्धहींसे है। (प॰) हे प्रिय ! इस प्रारब्ध शब्दमे इतनी बडी गुंजा-यश है कि, पुरुष चाहो अपनी मन्दबुद्धिसे वा प्रमादसे वा नीचतासे कितनी भी हानि करदेवे परन्तु सबका उत्तर कहसकता है कि, इन जीवोंकी प्रारब्ध परन्तु रेलोंके टक्कर खानेसे साफ प्रतीत होता है कि, प्रमाद तारबाबूका है यदि प्रमाद न करके परस्पर तारदेकर लायन साफ रक्खे तो कदापि रेलोंकी टक्कर नहीं लगती । (राजकु॰) महाराज ! उन जीवोंकी मृत्युने तारबाबूसे प्रमाद करवाया होगा। (प॰) तो फिर सरकार रेलोंकी टक्करमे तारबाबूको सजा क्यों देती है तुम्हारे मतसे तो तारबाबूका दोषही नहीं। (राजकु॰) महाराज ! उसकी प्रारब्धमे भी तो सजा पानी लिखी ही होगी। (प॰) वाहवा यह तो व्यवस्था आपने उत्तम लगादी है. हे प्रिय ! तुम्हारे उत्तरपर मेरेको एक आख्यायिका स्मरण हुई है सो मैं तेरेको सुनाताहूँ एक तुम्हारे जैसा दृढप्रारब्धवादी कोई काजीथा एक उसका अतिचचलसा लडका था वह एक दिन किसी नवाबके घरमें गया उसके घरमें एक पिंजरेमें तोता रक्खा था उसके साथ खेलने लगा गरज उसने तोतेको मारडाला नवाबके नौकरने उसे खूब पीटा वह रोता २ अपने बापके पास आया काजी साहब बेटेको साथ लेकर नौकरपर शिकायत करने आये नवाब साहबने नौकरको बुलाकर पूछा

तो नौकरने काजीके लडकेका कसूर बतलाया तो काजीने नौकरसे कहा कि, अरे भाई तोतेकी तकदीरसे तो मेरे बच्चेके हाथसे मरनाही लिखाथा पर तैंने मेरे बेटेको बेगुनाह माशूमको क्यों मारा है, तो नौकरने कहा कि, काजी साहब जीवोंकी तकदीरोंका दफ्तर आपहींके घरमे होवे यह बात तो है ही नहीं जैसे तुमने कहा कि, तोतेकी किसमतमे मरनाही लिखाथा वैसे मैंभी कहता हूँ कि, आपके बेटेकी किसमतमें मेरे हाथसे थोडा पीटाजाना भी लिखाही था नौकरका माकूल जबाब सुनके नवाबने थोडा हँस दिया और काजी साहब निरुत्तर होकर घरको चले आये, सो हे प्रिय ! पूर्वोक्त तुम्हारा उत्तर तो तुम्हारे जैसे प्रारब्धवादियोंके वास्ते ही है जो उद्योगको मुख्य मानते हैं उनकेवास्ते ऐसा उत्तर हास्यका स्थान है और थोडासा यहा यहभी विचारणीय है कि, तारबाबूकी प्रारब्धने रेलमे मरनेवाले जीवोकी प्रारब्ध द्वारा तारबाबूको फल दिया है (१) किंवा मिलके दिया है (२) किंवा स्वतंत्र दिया है (३) यदि द्वारा कहो तो सो भी ठीक नहीं यदि उनकी प्रारब्ध उसके फलमें द्वार होगी तो उन जीवोके फलमें उस तारबाबूकी भी प्रारब्धको द्वार होनाचाहिये, यदि मानों तो परस्पराश्रय दोष होगा सो दोष कार्य्यका प्रतिबन्धक है याते दोनोका निरोध होना चाहिये यदि मिलके कहो तो सो भी ठीक नहीं प्रारब्ध नाम पूर्वकृत धर्माधर्मका है सो जिसके अंतःकरणमें रहते हैं उसीको फल होता है यह शास्त्रका सिद्धान्त है याते प्रत्येक अंतःकरणमे होनेवाले पूर्व कर्म जीवोको कदापि सभूय फल नहीं देसकते और यदि मिलके फल देते भी होवे तो सब को एकसा फल होना चाहिये । (राजकु०) महाराज ! कर्मफल तो मिल-हीके देते हैं परन्तु भेद इतनाही है कि, जिस स्थलमे यावत् जीवोंको सम भोग होता है तहां सबकी सम प्रारब्धकी कल्पना होती है जैसे कतिपय ब्राह्मणोको एक पंक्ति भोजन किंवा सम दक्षिणा अथवा सम दंड, और जहां न्यूनाधिक भोग होवे वहा प्रारब्धभी न्यूनाधिक ही मिली तो भोग वैसा हुआ यही कल्पना कीजाती है प्रकृतमे कितने रेलके नीचे आतेही मरगये कितनोंके अधिक चोट लगी कितनोंको कम चोट लगी कितनोंको कुछभी नहीं हुआ याते जाना जाताहै

कि, इन जीवों की प्रारब्ध न्यूनाधिक थी यदि तुल्य होती तो तुल्य भोग होता। (पं०) हे प्रिय ! तुमने व्यवस्था तो उत्तम लगाई है परन्तु विचारणे योग्य है कि, प्रत्येक जीवके अत:करणमे या जीवमे रहनेवाले पाप पुण्य सम वा न्यूनाधिक कदापि मिलसकते हों ऐसा सभव नहीं, यदि मिलभी सकते हैं तो क्या एक किसी अंत:करण या आत्मामें एकत्र सब होजाते हैं वा जुदा जुदा ही मिले रहतेहैं यदि एकमे कहो तो शास्त्रविरुद्ध है किसी शास्त्रकारने ऐसा माना नहीं जो एक आत्माके गुण दूसरे में चले जावे यदि कहो कि, जुदा जुदा ही मिलेरहते हैं तो भी बने नहीं, प्रथम तो जुदा जुदा और मिले-रहते हैं यह शब्द ही परस्पर विरुद्ध हैं; कितने जीवोका कर्मसमुदाय यदि जुदा जुदा है तो मिल नहीं सकता यदि मिलाहै तो जुदा जुदा नहीं रहसकता। (राज०) महाराज ! यह वार्ता तो लोकप्रसिद्ध है जैसे तीन सौदागरो ने मिलकर छ:लाख रुपये का व्यापार करा उसमेंसे एकका १ लाख है दूसरेका दो लाख है तीसरेका तीन लाख है तीनोंने मिलकर व्यापार में लगादिया साल पीछे हिसाब किया तो उनको छ:लाख रुपया व्यापार मे बचगया तो उन्होने रुपये के हिसाब से एक लाखवालेको बचतकाभी एक ही लाख दिया वैसेही दो लाखवालेको वा तीन लाखवाले को उनके रुपयेके मुताबिक हिस्सा दिया। इस दृष्टान्त में जैसे रुपया जुदा जुदा भी है और जैसे मिलके काम करदेता है वैसेही जीवों के प्रारब्धकर्म जुदा भी रहे और मिलके कार्य्या-रम्भ भी करें तो हानि नहीं । (प०) हे प्रिय ! व्यवस्था तुमने अच्छी करी परन्तु विचारणीय है कि, जैसे तीन सौदागरोने रुपयों को मिलाकर काम किया तो मुनाफेमे रुपया मिला वैसेही प्रत्येक जीवके आत्मामें वा अत:करणमें रहनेवाले पाप पुण्य कदापि एकत्र नहीं होसकते याते दृष्टान्त विषम है, और वार्ता भी है यदि जीवो के पाप वा पुण्य ही हानि वृद्धिके देनेवाले हैं तो सजादेनेवाले हाकिम को वा इनाम देनेवाले हाकिम को भी उलटा पाप और पुण्य मानना चाहिये अर्थात् तारबाबूकी प्रारब्ध ने तथा रेलमें मरनेवालों की प्रारब्धने तो मिलके रेलको टकरादिया और

इसबात के बिना बूझे जिस हाकिमने तारबाबूको सजा दीहै वह पापी होगा। (राजकु०) महाराज ! इन्साफ करनेवाले को पाप नहीं होता यह वार्ता धर्मशास्त्रके पद पदसे प्रसिद्ध हे और यदि उसको सजा न कोई देवे तो उसकी प्रारब्ध का भोगभी तो पूर्ण नहीं होता याते सजादेनेवाले को पाप नहीं है और प्रसन्न होकर इनाम देनेवाले को पुण्यभी नहीं है । (प०) हे प्रिय ! तुमने अच्छा कहा परन्तु तुम्हारे देशमे जो लोग साधु ब्राह्मणो को खिलाते पिलाते हैं उनको पुण्य होता है कि, नहीं ? (राजकु०) यह सब लोग श्रद्धा भक्ति से तथा पुण्यबुद्धि से खिलाते हैं याते पुण्यही अवश्य होता है। (प०) यहां उलटी व्यवस्था कैसे खानेवाले तो सभी कहतेहे हमने अपनी प्रारब्ध का भोग खाया है। (राजकु०) दोनोका कहना यथार्थ है जितने जीव पेदा हुएहैं पूर्वजन्मवादी के मतसे खान पानादि प्रारब्ध से शून्य तो कोई कह ही नहीं सकते, शेष रहा खिलानेवाले का विचार सो उसको ईश्वर उसकी शुभ क्रिया का फल देगा। (पं०) शुभ क्रिया का क्या फलहै । (राज०) सो तो आपभी जानते ही हैं कि, शुभ कर्म करने से उस कालमे प्रसन्नचित्त होताहै और आगेको शुभ वासना उत्पन्न होतीहै और शुभ अदृष्ट उत्पन्न होताहै ऐसेही अशुभ कर्म से अव्यवहित उत्तरकालमें दुःख तथा आगे को बुरी वासना तथा मलिन अदृष्ट उत्पन्न होताहै । (पं०) हे प्रिय ! तुम्हारी कही व्यवस्थाहीसे तारबाबू को सजा देनेवालेको पाप वा पुण्य अवश्य होना चाहिये ; देखिये क्रिया ससारमे तीन प्रकार की हें एक शुभहै, दूसरी अशुभहै, तीसरी निरर्थकहै, शास्त्रविहित क्रिया शुभ होतीहै, जैसे—अग्निहोत्रादि उससे अवश्य पुण्य होताहै, शास्त्रनिषिद्ध क्रिया अशुभ होती है, जैसे—परद्रव्यापहरणादि उससे अवश्य पाप होताहै, जो शास्त्रसे प्राताप्राप्त न होवे सो निष्फल क्रियाहै जैसे जलताड़नादि. सो इन क्रियाओमें सजादेनेवाले हाकिमकी कौन क्रिया है। (राज०) क्रिया तो उसकी शास्त्रविहितहै क्यो कि, शास्त्रमे अनेक स्थलोंमें प्रमादी को दण्ड लिखा है। (पं०) तो फिर शास्त्रानुसार क्रियाकारी हाकिम को पुण्य होना चाहिये । (राज०) अवश्य पुण्यही होगा (प०) हे प्रिय ! तुम तो प्रारब्धवादी हो, तुम्हारे

मतसे तो जो कुछ रेलके परस्पर टक्कर खानेसे नुकसान हुआ सब प्रारब्धने किया यहां तक कि, तारबाबूको प्रमादभी प्रारब्धने अपना भोगदेनेकेलिये करवादिया तो फिर उससे उलटा समझकर दण्ड देनेवाले हाकिम को तुम्हारे मतसे पुण्य कैसे होगा? उलटा पाप होना चाहिये. और हमारे मतसे तो पुण्य होता है, क्योंकि तारबाबूने प्रमाद करा उससे बहुत जीवो का अपकार हुआ उसको शासन करनेवाला शास्त्र हमारे तो अनुकूलही है, यदि उसको दण्ड न दिया जाय तो आगेको फिर वह ऐसाही करेगा इसलिये दण्ड देकर उसको पूरा उद्योगी करना हमारे शास्त्रका मुख्य तात्पर्य्य है याते हे प्रिय! तुम निश्चय करो कि, जिस जिस कुकर्मका दण्ड शास्त्रने विधान करा है तहां शास्त्रका केवल जीवको शुभ उद्योगमे प्रवृत्तकरनेमे तात्पर्य्य है । (राजकु०) महाराज ! कितने खोटी प्रारब्धवाले विषादि भक्षणसे मर जातेहै सो प्रबल प्रारब्धके विना अपना आप बुरा कौन करसकता है । (प०) हे प्रिय ! जिस स्थलमे विष दूसरे पुरुषने दूसरेको शत्रु समझ के दी है वहा तो यदि शत्रु उस विषसे मरा तो हमारे उद्योगहीका विजय है, और जहा जिसने विषादि आपही भक्षण कराहै वहाभी जिस दुःखसे दुखित होकर उसने विष भक्षण किया है उस दुःखको उसने मरणदुःखसे अधिक समझा होगा याते अपने मरण को आप विष खाया इसमे हमारे उद्योगकी हानि नहीं है । (राजकु०) महाराज! भला तीव्र प्रारब्ध विना कोई आप मरा चाहता है? (प०) हे प्रिय ! यदि प्रारब्ध तुम्हारी सच्ची हो तो विना यत्न विना खरीदे विना मुखमे पाये विष उसके पेटमें चली जाय और उसको मार डाले तो हम तुम्हारी प्रारब्ध को मानें कि, इसने काम किया और यदि वह अपने मरणके वास्ते बडे यत्न से छिपाके विष लाता है और उद्योगसे दुःखी होकर खाता है तो प्रत्यक्षप्रमाणसिद्ध उद्योगसे विष भक्षण छोडकर कल्पितप्रारब्धको साथ मानलेना कौन बुद्धिमत्ता है? ॥

इति रेलादियानाघातविचारे त्रयोदशो विश्रामः ॥ १३ ॥

अथ चतुर्दश विश्राम १४.

(राज०) महाराज ! इस विचित्र संसारमे प्रारब्धके वेगहीसे मैंने कुत्ते गाडी पीनसोंमें वैठते देखे तथा वानर दूध मलाई खाते देखे, क्या वर्तमान कालका उनका उद्योग कुछ भी कर सकता है ? (प०) हे प्रिय ! हम पूर्व सिद्धान्त करचुके कि, संसारमे कोई भी जीव सिवाय किसी एक असाधारण गुणके कदापि प्रतिष्ठा पा नहीं सकता अब तुम यह सोचो कि, जो कुत्ते गाडियो पर वैठते हैं वा वानर मलाई खाते है वेह कुछ गुण रखते हैं या नहीं मेरी बुद्धिमें तो उनकी योग्यता है मैंने कुत्तों का अपने स्वामी के साथ ऐसा प्रेम देखा कि, वह यदि अपनी छडी आदि गहरे पानी मे भी फेक देवे तो कुत्ता प्रेमसे ले आवे स्वामी सोये तो कुत्ता पासही रातभर जागे पास चिडीतक न फटकनेदेवे चौर आदिकों की तो क्या कथा है, फिर ऐसे प्यारे जीव को जो कि, असाधारण काम करता है यदि कोई मलाई भी खिलावे तो कोई बुराई नहीं कुत्ता अपने गुणोंसे तथा उद्योगसे खाता है । देखिये मैंने सुना है कि, एक धनिक ने किसी उत्तम जातिका एक कुत्ता पाला धनिक उसको वहुत खातरी रखता था और कुत्ता भी रात्रि भर जागकर अपने स्वामी का हक्क अदा करता था, एक दिन दैवात् रात्रिको दो चोर आये जो कि, दिनकोभी कभी कभी उसी धनिक के घर आया करते थे और घरके भेदको जानते थे कुत्ता भी उन्हे पुराने पुरुष जानकर न चौंका परन्तु उन्होने आतेही पहले कुत्ते को पकड कर एक छोटे बेगमें बन्द कर लिया पीछे जो कुछ माल मिला लेकर चल दिये परंतु धनी को कुछ खबर नहीं, क्योंकि, वह तो कुत्तेही के भरोसे पर सुख नींदसे सोता था दोनों चोरों का ग्राम १२ कोस पर था प्रातःकाल वहां पहुँचते ही प्रथम कुत्तेको बेगसे निकाल रख दिया कुत्ता निकलता ही उन दोनोके साथ लाड करने लगा फिर थोडी देर पीछे उन्होंने चोरीका माल कुत्तेके सामने ही अपने घरमें जमीनमे दवा दिया पीछे थोडी देर बाद कुत्ते को कुछ खाने को दिया कुत्तेने शोकातुर होकर थोडासा खाया

परन्तु चिन्ता कर रहा है कि, कैसे निज स्वामी के घर जावों, इधर उधर खोजता है परन्तु मार्ग मिलना कठिन है क्यो कि, वह तो बिचारा वेगमे बन्द होकर १२ कोस आया है क्या जाने कौन मार्ग है, थोडीदेर इधर उधर घूमने के बाद उन्होने कुत्तेको बॉधदिया रात्रिको छोडा तो कुत्ता उनकी दृष्टि बचाकर ऐसे अपने स्वामीके घरके मार्गको सूधा चला कि, जैसे दृष्टपूर्व मार्ग होता है कुछ रात्रि शेपही थी जो वह अपने स्वामीके दर्वाजे पर आ खडा हुआ सवेर हुआ स्वामीको मिल चौंक कर पाव चूमने लगा और जिधरसे आया है उधरहीको चलना चाहता है परन्तु गृहके लोग उसका भाव नहीं समझते थोडी दूर जाता है पीछे कोई नहीं लगता तो फिर लौट आता है धनिकने कुत्तेकी ऐसी चेष्टा देखकर शीघ्र घोडा कसवाया दो आदमी साथ लिये और कुत्तेके पीछे घोडा चलाया कुत्ता मार्गको त्याग उसी ग्रामको सीधा चला जिससे रात्रिको आयाथा, चोरी की खोज करनेवाले खोजी भी तो चोरोंके पावचिह्नको देखते २ चोरोंके ग्रामसे दो तीन कोसही फरकमें थे परन्तु उससे आगे उन्हें खोज न मिलता था वहा एक जलाशय था वेह खोजी लोग हारकर रात्रि को वहा सोगयेथे । तवतक कुत्ताभी स्वामीको ले वहा पहुचा परस्पर मेल हुआ बातचीत करके सब लोग कुत्तेके पीछे चले, वह कुत्ता उन सबोंको दिनके आठ बजेके कालमें उन्हीं चोरोंके घर लेगया दोनो चोर घरहीमें थे, १० आदमीको देखकर चोरोंके मुखमें तेजी आगई और सेवामे उपस्थित हुए क्योकि उसी धनीकी वेह आसामी थे बैठ गये परन्तु कुत्ता स्वामीके पास जाकर फिर२ चोरोंके घरभीतर ही जाना चाहता है धनीने एक आदमीको भेज कर ग्रामके चौकीदारको बुलालिया उसके सामने कुत्तेके पीछे उनके घरमे घुसे तो कुत्तेहीने वेगसे अपने पौंचे मारके मट्टी खोद चोरीका माल प्रसिद्ध करदिया सब लोग देखकर हैरान हुए वह सारा माल चौकीदारके हाथमे देकर उन दोनोंको बाध थानेमे पहुँचाया आखिर वेह दोनों कारागारमे गये और धनीको कुत्तेकी बदौलत माल मिला इत्यादि अनेक आख्यायिका कुत्ते बन्दर शुकसारिकादिकों की स्वामीका हित दिखलानेवाली लोकमे प्रसिद्ध हैं यदि लिखें तो पृथक् इन्हींका ग्रन्थ होसकता है, याते हे प्रिय ! पुरुष नौकरसे भी बिना नौकरीके रोटी

मात्रसे स्वामीका हित करने वाले यह कुत्ते आदिक जीव हैं इनको गाडीपर साथ बिठलाना तथा दूध पिलाना कुछ उनको प्रारब्ध नहीं वह बिचारे पूर्वोक्त रीतिसे पुरुषार्थसे लेते है, जो नीच नौकर अपने धनीसे जीविका भी पाते हैं और चोरोके साथ मिलकर अपने स्वामीका भेद बतलाके चोरीभी करवा देते हैं उन नीचोंसे तो कुत्ते आदिक जीव सहस्र गुण अच्छे हैं।

इति पश्वादिप्र० विचारे चतुर्दशो विश्रामः ॥ १४ ॥

अथ पंचदश विश्राम १५.

(राजकु०) महाराज ! अनेक लोग व्यापारी व्यापारमे उद्योग तो सभी करते हैं परन्तु जिनकी प्रारब्ध अच्छी होती है उनको लाभ होता है जिनकी प्रारब्ध अच्छी नहीं होती लाभ नहीं होता। (प०) हे प्रिय ! यही क्यों नहीं कहता कि, जिनका उद्योग सम्यक् होता है उनको लाभ होता है। और जो पूरा उद्योग नहीं करसकते उनको नुकसान होता है। (राजकु०) महाराज ! व्यापारमें पूरा उद्योग क्या करसकता है व्यापारी लोग प्रारब्धके भरोसे पर लाखो रुपयेका माल खरीद रखते हे जो कुछ प्रारब्धसे मिलना होता है मिलता है। (प०) हे प्रिय ! व्यापारमे उद्योगी पुरुष किसी व्यापारमें कदापि घाटा नहीं खासकता व्यापारमे मुख्य उद्योग यह है कि, समयपर वस्तुको जुटाना और नौकरोपर चौकस रहना, जो व्यापारी नौकरोंके भरोसे माल छोडदेगा उसका दिवाला निकलनेका भी सम्भव है। (राजकु०) महाराज ! अनेक मन्दभागी व्यापारियोके माल पानीमे डूब जाते हैं, अग्निमें जल जाते हैं वहां किसीके उद्योगकी पेश नहीं जाती। (पं०) हे प्रिय ! इन सबका उत्तर हम पूर्व देचुके कि, प्रमादी की कौन दुर्दशा है जो न हो अर्थात जलसे वा अग्निसे वा चोरोसे प्रमादी ही की दुर्दशा होती है दूसरे की नहीं। (राजकु०) महाराज ! क्या कोई जानबूझके प्रमाद करता है सब प्रारब्धके वेगसे होजाता है। (पं०) हे प्रिय ! तुम सोचो कि, जितने व्यापारी व्यापार

करते हैं उन सवपर प्रारब्धका वेग कभी न कभी आता है वा किसी एक पर आताहै किंवा आधों पर आताहै अथवा देशविशेषकी कौमों पर नियत है यदि सवपर कहो तो सो ठीक नहीं, कितने व्यापारी मैंने व्यापारही से कई पुश्तोंसे कोटयाधिपति देखे हैं यदि कहो कि, किसी एकपर आताहै तो हमने माना परन्तु हम उसको मूढबुद्धि प्रमादी कहेंगे और तुम मन्द प्रारब्धवाला कहोगे, नाममात्रका भेदहै परन्तु सोचना चाहिये कि, किसकी संज्ञा यथार्थ है तुमने उसका नुकसान देखकर मन्द प्रारब्ध का अनुमान कराहै और हमने जिस कारणविशेषसे उसका नुकसान हुआ है उसको प्रत्यक्ष देखकर उसका अप्रतिकार करनेवालेको मूर्ख प्रमादी कहा है तुम्हारी संज्ञा आनुमानिक है याते निर्वल है और हमारी प्रत्यक्षहेतुक है याते प्रवल है, इससे यह सिद्ध हुआ कि जहां किसीको व्यापारसे नुकसान हुआ वह मूर्ख है उसको व्यापार करना नहीं आता यदि आधों पर कहो तो नियमसे आधे व्यापार से लाभ उठानेवाले तथा आधे हानि उठानेवाले होने चाहिये ऐसा तो दीख नहीं पड़ता, यदि देशविशेषकी कौमों पर कहो तो सोभी ठीक नहीं सब देशके व्यापारीलोग अपनी कुशलबुद्धिसे हजारों रुपये पैदा करते हैं और कितनेक मूर्ख इन्द्रियारामी केवल नौकर-विश्वासी दिवाला निकाल वैठते हैं, कार्य्यमात्रमे दीपवत् प्रकाशनेवाली प्रारब्ध विचारीका केवल उद्योगजन्य व्यापारमें कौन सवन्ध है प्रत्युत मारवाड़ देशकी वैश्यकौम केवल व्यापारसे आर्य्यावर्तमात्रमे वढी चढी देखलेवो। (राजकु०) हम कल्पना करेंगे कि, वे सभी अच्छी प्रारब्धवाले हैं (पं०) हे प्रिय ! प्रसिद्ध पितृसत्त्व कालमे अज्ञात कुल वालककी कल्पना करनी वुद्धिमत्ताका काम नहीं है हमको स्पष्ट प्रतीत होता है कि, मारवाडी, वैश्यलोग व्यापारमें अतिकुशल और उद्योगी हैं, इसीसे उसी कामसे उनका प्रतिदिन अभ्युदय भी है और [वाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम्] अर्थात् व्यापार करना वैश्यका मुख्य काम है इस शास्त्रविहित क्रिया भी उनकी है, हे प्रिय ! अधिक क्या कहूं आर्य्यावर्तमात्रमे सिवाय इस वैश्यकौमके कोई कौम भी अपने धर्मको वा कर्मको पालन करनेवाली नहीं है, सभी कौमें

स्वधर्मसे नष्ट भ्रष्ट आलसी प्रमादी होरही हैं, शीशमहलगत श्वानवत स्वइतर धर्मोंमे प्रविष्ट होय बुकबुका रही हैं, केवल प्रारब्ध शब्दमात्रसे ही संतुष्ट होय सुख नींदसे सो रही हैं, हे प्रिय ! मैं प्रतिज्ञा करके कहता हूं जैसे यह वैश्यकौम प्रारब्ध शब्दका तथा परधर्मका निरादर कर स्वधर्ममें तत्पर है और अभ्युदय को प्राप्तहोरही है वैसेही यदि ब्राह्मण, क्षत्रिय, शूद्र भी प्रारब्ध माताको त्याग कर केवल उद्योग पिताकी शरण लेवें और शास्त्रविहित स्वधर्मका पालन करे तो आशाहै कि, फिर देशका उज्जीवन होसके अन्यथा कोई काल हमारे वैश्यभाइयोंपर भी ऐसा आवेगा कि, जिसमे वह स्वउन्नति न कर सकेंगे, हे प्रिय ! सोचो जिस गृहमें चार भाईमें-से दो बड़े बड़े ही नालायक होवे और सबसे छोटा भी नालायक होवे उनमे तृतीय लायक भी हो तो भी क्या करसकताहै ? कार्य्यका बिगाड़ना तो ऐसा सहल है कि, यदि तीन अच्छा करतेहोवें तो एकही बिगाड़ सकता है परन्तु यहां तो तीन भाई बिगाडनेपर तत्पर हैं खाली एक भाई अच्छा चाहता और करता है कहातक चलेगा ? याते हे प्रिय ! निश्चयकर मारवाड़ देशके वैश्यों की तरह दृढचित्त होकर व्यापार करनेवालेको कदापि घाटा नहीं होता सो यावत् उद्योग साध्य है याते उद्योगहीका विजय है ।

इति व्यापारविचारे पंचदशो विश्रामः ॥ १५ ॥

अथ षोडश विश्राम १६.

(राज०) महाराज ! मैंने सुना कि, किसी गृहस्थीने किसी साधु महात्माके आगे अपनी सतानकी प्रार्थना की, उस महात्माने योगबलसे उसकी पूर्वसंतान की प्रारब्ध देखी तो कहा कि, तुम्हारे पुत्र न होगा, वह बिचारा निराश होकर घरमें आ पड़ा साधुलोगोंपर विश्वासी था साधुकी बात सुनकर अतिखेद हुआ शोकमे दो चार रोज गुजरे तो रात्रिके १२ बजे एक साधु मागता २ आया और इस शब्दको कहता है कि, 'जो जितनी रोटी इस कालमें देवे वह उतने पुत्र पावे' इस ख्यालकी टेर उस धनीके कानतक पहुंची शीघ्र उठा और स्व-

स्त्रीसे कहा कि, कोई रोटी है उसने कहा हां सात हैं धनी बोला सातों साधुको देदेवो स्त्रीने वैसेही किया तदनतर सात सालमे उसी धनीके सात बेटे हुए, उसमे मैं यह पूँछताहू कि, यदि प्रारब्ध कुछ चीज न हो तो पहला साधु कैसे कहता कि, तुम्हारी किसमत में नहीं है। (प०) हे प्रिय ! प्रारब्ध कुछ चीज नहीं है ऐसा तो मेरा मत नहीं, खाली यह कहताहू कि, मुख्य उद्योग है, प्रारब्ध दीपकी तरह क्रिया मात्रकी प्रकाशिका है और पूर्वोक्त साधुओं के विषयमे जो तुमने कथा कही सो ठीक परन्तु उससे प्रारब्धकी सिद्धि नहीं होती, ऐसा प्रतीत होता है कि, किसी साधुसे किसी धनिकने पूँछा होगा कि, महाराज मेरे पुत्र होगा या नहीं तो साधुने अपने मानसिक बलसे उसकी तथा उसकी स्त्री की शरीरारोग्यता देखी तो ठीक न रही होगी इसीसे उसने कहदिया होगा कि, तुम्हारी प्रारब्ध मे संतति नहींहै, तदनतर रोटी लेनेवाले साधुने अपने मानसिक बलसे उनकी बीमारी दूर कर पुत्र उत्पत्तिकी योग्यता करदी होगी इससे प्रारब्ध की सिद्धि नहीं, प्रत्युत उद्योगका विजयहै देखिये साधुने अभ्यास कर मानसिक बल सम्पादन किया और उसने कितनों को लाभ पहुँचाया। (राजकु०) महाराज ! बीमारी तो औषधी से दूर होतीहै कभी मानसिक शक्तिसे रोग दूर होसकताहै ? (प०) हे प्रिय ! इस वार्ता में तो लिखे पढे किसीको भी सन्देह नहींहै अर्थात् बहुत महात्मा अबभी विद्यमान हैं जिनकी दृष्टिमात्र से रोग दूर होजाते हैं।

इति प्रारब्धविचारे आख्यायिका कथनं नाम षोडशो विश्रामः ॥ १६ ॥

अथ सप्तदश विश्राम १७.

(राजकु०) महाराज ! आपने अनेक वार उद्योग की मुख्यता तथा प्रारब्ध की गौणता दिखलाई परन्तु प्राचीन महात्माओंसे तथा नीतिनिपुणों से तो उद्योग का तथा प्रारब्ध का बहुधा समबल श्रवण कराहै, जैसे कहते हैं कि, एकसमय राजा विक्रमादित्यके पास दो मनुष्य परस्पर विवाद करते २ पहुँचे

उनमे एक प्रारब्धको वलिष्ठ मानता था और दूसरा उद्योगको वलिष्ठ मानता था, राजा दोनोके तात्पर्य्यको सुनकर चुप रहा और उन दोनो के उत्तरार्थ एक गाढ अन्धेरे मकानमे एक कोने के आलेमें एक सेर का लड्डू वना कर रखदिया और उस लड्डू मे एक रत्न भी बॉध दिया उसी मकान मे उन दोनों को ४ दिन तक कैद करदिया उनमे प्रारब्धवादी तो शान्त होकर वैठरहा सोचा कि, यहां हमारी प्रारब्धमे कुछ नहीं है परन्तु उद्योगवादी ने सोचा कि, विना दोप राजाने हम दोनो को कैद किया है सो कुछ मारदेनेके तात्पर्य्यसे न होगा ऐसा विचार, तीसरे दिन इधर उधर हाथ मारा तो उद्योगी को वही मोदक मिल गया जो राजाने बनवा कर रखवाया था, उद्योगी ने उतार तोड कर आधा प्रारब्धवादी को दिया दोनों खायकर फिर प्रफुल्लित हुए परन्तु रत्न प्रारब्धवादीके भागमे गया उसने उद्योगी को कहभी दिया कि, यह रत्न बीचसे निकला है आप लीजिये परन्तु उद्योगी ने नहीं लिया कहा कि, यदि हमको मिलना होता तो हमारे भागमे निकलता, फिर पीछे चौथे दिन राजाने दोनो को कारागार से निकाल कर पूछा कि, तुमलोगोको तुम्हारे प्रश्नोंका कुछ उत्तर मिला ? उन्होने कहा स्पष्ट समझा नहीं, राजाने कहा तुम चार दिन पीछे भूखे प्रसन्नवदन कैसे निकले ? तो दोनोंने एक दम उत्तर दिया कि, मेरी प्रारब्धसे मेरे उद्योगसे एक मोदक मिला उसके भक्षणसे फिर स्वास्थ्य हुआ, तो राजाने उन दोनोको कहा कि, तुम सोचो यदि प्रारब्धवादी की प्रारब्ध कुछ वस्तु न होती तो उसको दूसरे के उद्योगद्वाराभी रत्नलाभरूप अधिक फल कैसे देती तथा उद्योगी का उद्योगभी कुछ वस्तु न होता तो उसके उद्योग विना प्रारब्ध-वादी को एक तृण भी मिलना कठिन था याते हे भाई ! प्रारब्ध उद्योग दोनों ओत प्रोत सम वल हें इसरीति से दोनों को तुल्यवलता का राजा विक्रमादित्य का मत है आप उद्योगको अधिक कैसे मानते हो ? (पं०) हे प्रिय ! इस आख्यायिका से भी तो उद्योगहीका विजय है यह सिद्धान्त तो हम पूर्व वहुधा कह चुके कि, विना उद्योग से प्रारब्ध भी फल नहीं देसकती शेष रहा कि, प्रारब्धवादी को रत्नलाभरूप अधिक फल हुआ सो कुछ वार्ता नहीं है यह केवल उद्योगी की सभ्यता है कि, उसने आधा बॉट दिया और उसके भागमे रत्न निकला

भी न लिया, यदि उद्योगी उसको आधा न देता अकेला ही खाय जाता तो उस प्रारब्धवादी का कुछ जोर न था और वह रत्न दे ही रहा था यदि वह लेलेता तो प्रारब्धवादी का कुछ उजर न था याते हे प्रिय ! तुम निश्चय करो उद्योगही मुख्यहै । (राज०) यदि ऐसा है तो राजा विक्रमने क्यों दोनों के सम बल का उपदेश दोनों को करा । (प०) हे प्रिय ! लोगो के तुम्हारी तरह दृढ सस्कार प्रारब्धके ही देखकर राजानेभी वैसाही उपदेश करा परन्तु राजा स्वय प्रारब्धवादी न था, यदि प्रारब्धवादी होता तो अति उद्योगसे अपना यश भूतलमे कैसे फैलाता ? उसके उद्योगकी बाते सिंहासनबत्तीसी नामक पुस्तक मे प्रख्यात हैं । (राज०) महाराज ! मैंने अनेक महात्माओके मुखसे सुना कि, प्रारब्ध उद्योग दोनों समबल हैं दृष्टात जैसे–किसी एक धनीके उपवनमें एक पंगु और एक अन्ध रहते थे परन्तु धनीको विश्वास था कि ये दोनो फलोका नुकसान नहीं करसकते क्यो कि, एक उनमे चल नहीं सकता दूसरे को दीखताही नहीं कितने दिन बागमे रहते रहे तो एक दिन पगुने अंधे को बुलाकर कहा कि, मित्र ! यदि तू मेरे को अपने कॉधे पर उठा कर जिधर को मै कहू चले तो तुम्हारे को सुदर फल खाने को तोडदेवू इस बागमे विचित्र नानाविध अनन्त फलहैं उस अन्धने मान कर वैसेही किया और आनन्द से अनेक प्रकारके फलोसे जीवन विताया वैसेही ससाररूपी गहन बागमें प्रारब्ध पंगुलीहै और उद्योग अन्धहै पृथक् होकर संसाररूपी बागका सुख दु:खरूप फल कोई भी दोनोंमे नहीं खाय सकता यदि मिले तो खाय सकतेहैं । (प) हे प्रिय ! जो वस्तु जिस पुरुष के मतव्य के विषय होती है उसको वह अनेक दृष्टांतों से सिद्ध करताहै चाहो वह वस्तु कैसीही प्रमाणशून्य होय परन्तु कहनेवाला अपनी इष्टसिद्धि अर्थ अपने तात्पर्य्यको नानाविध दृष्टान्तोसे कहता ही है अब प्रकृत दृष्टांत को सोचना चाहिये कि, जैसे प्रारब्ध के स्थानापन्न पगु पुरुष उद्योग स्थानापन्न अन्धके कॉधे पर सवार होकरभी उद्योगसे नानाविध फलको तोड़ता है क्या वैसेही प्रारब्ध भी उद्योगकी सहायता से उद्योगरूप होजाताहै या नहीं, यदि होताहै तो नामान्तर से उद्योगही कहना चाहिये, यदि नहीं

होती तो दृष्टान्त विषमहै याते हे प्रिय ! तुम निश्चय करो कि, कतिपय तंत्रसिद्धान्तसिद्ध तुम्हारी प्रारब्ध सर्वतंत्रसिद्धान्तसिद्ध हमारे उद्योग की तुलना कदापि नहीं लेसकती ।

इति प्रारब्धविचारे उदाहरणकथन नाम सप्तदशो विश्रामः ॥ १७ ॥

अथ अष्टादश विश्राम १८.

(राज०) महाराज ! मैंने इतिहास से सुना कि, किसी एक कालमें राजा जनमेजय व्यासदेवजीके पास बैठा था तो उसने प्रश्न किया कि, महाराज ! हमारे पूर्वज महाराज युधिष्ठिरादि तथा दुर्योधनादि परस्पर रागद्वेषसे तथा द्यूतादि अपकर्मों से विध्वस्त हुए, आपने उनको सुशिक्षा क्यों न दई ? तो व्यासदेव बोले, हे राजन् ! भावी प्रबल है किसी की शिक्षा की पेश नहीं जाती, जनमेजयने कहा महाराज ! यदि प्रथम विदित होय तो भावी क्या करसकती है उसके सहस्र प्रतिकार (उपाय) होसकते हैं व्यासजीने कहा राजन् ! जो तुमने कहा सो सत्य परन्तु भावी वेग अति प्रबल होता है जैसे देखिये तुम्हारे पर ही आनेवालाहै, तुमने यत्नसे टार देना हम तुझे कहते हैं कि, एक सौदागर घोडी बेचने आवेगा वह तुमने न खरीदनी यदि खरीदो तो उसपर आप सवार कदापि न होना यदि होवो तो सवारहोकर दक्षिण दिशा को न जाना अन्यथा तुम्हारा भला न होगा. राजाने उस कालमे तो व्यासदेवजीका कथन स्वीकार किया घोडामात्र खरीदने से बन्द करदिया परन्तु कुछ काल के पीछे राजा व्यासवचन को भूलगया वैसेही एक घोडोका सौदागर आया और राज्यभृत्योंने भी आय कर निवेदन किया कि, दीनबन्धो ! घोडा सरकारमें कामका कोई नहीं रहा यदि आज्ञा होय तो खरीदे जावें राजाने खरीदने की आज्ञा दी, कितने घोडे और एक अति सुंदरी घोडी खरीदी गई, लोग उस घोडी की अति प्रशंसा करने लगे उस प्रशंसाको सुनकर राजा उसपर सवार हुआ और शिकार खेलने गया, मृगके शिकारके पीछे घोडी छोडी वह दूर देशमें दक्षिणदिशाको लेगया

आगे जाय कर शिकार तो दृष्टिसे चूक गया और राजा अकेलाही था विश्रान्त होकर एक सरोवरके किनारे घोडीको पेडसे बाँधकर सोगया उसके सोते ही एक घोडा सरोवरसे निकला उसने घोडीके साथ भोग किया और फिर जलमें प्रवेश करगया राजा उठकर सवार होकर शहरमे आया कुछ काल पीछे उसी घोडीके एक ऐसा बच्चा पैदा हुआ कि, जिसके चिह्न सारे यज्ञके घोडेके थे तो ब्राह्मणोंने राजाको प्रेरणा कर यज्ञ करवाना चाहा राजाने स्वीकार किया, १८ ब्राह्मण यज्ञ करनेको नियत किये यज्ञसमाप्तिके पीछे राजा और उसकी राणी दोनों अति श्रद्धासे भोजन उन ब्राह्मणोको करवाते ही थे जो राणीका वस्त्र वायुवेगके साथ शरीरसे उडा उसी कालमें ब्राह्मण सबके सब एकदम हंसे राणीको इस वार्ताका अतिक्रोध हुआ और भोजन वर्तानेसे बन्द होगई और राजाको कहा कि, ये ब्राह्मण कामके नहीं हैं वधके योग्य हैं राणी सुदरी थी राजा उसके वशीभूत था, राणीकी आज्ञासे राजाने भोजनकालहीमे १८ ही खड्ग लेकर काटदिये जिनकी परम हत्यासे राजा जनमेजयको उसीही जन्ममें १८ कुष्ठ हुए फिर उन कुष्टोंकी शान्तिके वास्ते व्यासदेवजीके शिष्य जैमिनिले राजाको १८ पर्व महाभारत सुनाया सो ऐसेही हे महाराज ! यदि प्रारब्धवेग प्रबल न होता तो व्यासजी जनमेजयको ऐसा उपदेश कैसे करते। (५०) हे प्रिय ! उपदेश तो बडे लोगोका जैसेको तैसा होता है जैसे कोई विषयलपट भिक्षुकको कहे कि, देखो हम तुझे भावी बतलाते हैं जबही कहीं एकान्तमे स्त्री मिलेगी तुम्हारा धैर्य्य नहीं रहेगा अथवा जैसे कोई सुन्दर स्वरूप दर्शनाभि-लाषी पुरुषको भावी बतलावे कि, जहां तुमको सुदर स्वरूप मिलेगा तुम दृष्टि देनेसे नहीं रुकोगे अथवा गायनविद्यानुरागी पुरुषको यदि कोई भावी बतलावे कि, जहां तुम सुशब्दको सुनोगे आगे चल न सकोगे और तालभी अवश्यही देवोगे तो यह क्या भावी बतलाना है कदापि नहीं, केवल वस्तुस्थितिका बत-लाना है तैसे ही जो हम पूर्व भ्रम, प्रमाद, विप्रलिप्सा तथा इन्द्रियापाटव यह चार दोष पुरुष मात्रके कह चुके इन दोषोंमेंसे किसी पुरुषमे कोई प्रबल होवे है और किसी पुरुषमें कोई इन दोषोसे शून्य पुरुषसंज्ञावाला कोई भी नहीं जब ऐसी स्थिति है तो व्यासदेवजी भी राजा जनमेजयको जानते थे कि, यह प्रमादी

है स्त्रीसेवी है चाहो हम कितना उपदेश करे सबको भुलाकर यथेष्ट चलेगा इसीसे ऐसा उपदेश सुनादिया अन्यथा व्यासदेवजीके मतमे यदि भावी प्रबल है तो केवल उद्योगके कहनेवाले कृष्णवाक्योको श्लोकबद्ध व्यासजीने क्यों किया ? तथा केवल उद्योग प्रतिपादक पतजलि महर्षिके योगसूत्रों पर भाष्य क्यो बनाया ? तथा महाभारतमे एक पर्वका पर्व उद्योगके विषयमे क्यों लिखा ? तथा अतिश्रमसे नाना विध सुशिक्षाके कल्पद्रुमरूप १८ पुराण क्यो लिखे ? यदि कुछ लिखनेको चित्तभी करता तो केवल इतनाही लिखते कि, जो होता है भावीसे होता है, उनका यही लेख मानो सर्व वेदशास्त्रका साररूप होता और ऐसा तो नहीं लिखा याते जाना जाता है कि, व्यासजी उद्योगहीको मुख्यमानते हैं इति ।

इति प्रारब्धविचारे अष्टादशो विश्रामः ॥ १८ ॥

अथ एकोनविंश विश्राम १९.
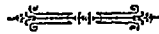
(राज०) महाराज ! सुरूपा सुशीला स्त्री या सुबोध सुरूपवान् आज्ञाकारी पुत्र या अकारणिक शुभचिन्तक मित्र इत्यादि सुखसाधनसामग्रीका मिलना तो विना प्रारब्धसे कैसे बन सकता है । (प०) हे प्रिय ! आपके कहे दोनो गुण एक स्त्री में मिलने कठिन हैं, यदि दैवात् कोई होय भी तो वह जिस पुरुषके साथ सबन्धवती है उसमे भी उसको योग्यता की आवश्यकता है अर्थात् पुरुपको अपनी स्त्रीके गुणोंकी कदर होनी चाहिये अन्यथा कुत्तेके गलेमे हीरा हो या हँडी उसका उसको हानि लाभ हर्ष शोक कुछ नहीं है, केवल आप जैसे विचारशील पुरुप देखकर कहदेते हैं कि, यह कुत्ता भाग्यशील या दुर्भाग्य है परन्तु उसका भोग कुत्तेको नहीं किन्तु दर्शकोंको है, वैसेही परीक्षक पुरुपके पास प्राप्तहुई हर एक वस्तु उचित सत्कारको लाभ करतीहीहै तथा परीक्षक पुरुषको उसमे भोगभी यथोचित होता है एवं संसार मात्रमे जितने पदार्थ हैं उनके पूर्णरूपसे परीक्षक होना पूर्ण प्रयत्न साध्य

है इसलिये प्रयत्नहीका विजय प्रतीत होता है, और सुयोग्य पुत्रके मिलनेका प्रकार तो हम पीछे कहचुकेहैं कि, यदि चिकित्साशास्त्रके अनुसार स्त्री पुरुष दोनो वर्ताव करते हुए पुत्र सम्पादन का प्रयत्न करे तो अवश्यही अनेक सद्गुणगण सम्पन्न सन्तान होनेकी सम्भावना हो सकती है, अन्यथा यथेष्ट पशुवत् चेष्टा करनेसे तो आप जानतेही हैं कि, घुणकीटवत कदाचित् ही 'राम' लिखा जासकता है सर्वथा नहीं, शेष रहा सुयोग्य मित्रका मिलना सो उसका विचार ऐसा है कि आप ससार मात्रके जनसमुदायमे सूक्ष्मदृष्टिसे देखें तो प्रायः ऐसेही देखनेमे आता है कि, जैसे का तैसा मित्र बनता है अर्थात् विद्वान् का विद्वान्, धनीका धनी, चोरका चोर, व्यसनीका व्यसनी इत्यादि, संसार मात्रमे स्वार्थ मित्रताका मूल कारण है वह जहां परस्पर सिद्धहोनेकी अपेक्षा रखताहोय वहा परस्पर समानरूप से मित्रता होती है जैसे सुयोग्य स्वामीसेवककी परस्पर समान स्वार्थ की मैत्रीहै सुयोग्य स्वामी सदा यही चाहता है कि, हम सेवकको हरतरहसे प्रसन्न रखे ताकि प्रसन्न होकर काम अच्छादेवे और सुयोग्य सेवकके चित्तमें सदा यही रहता है कि, मै अपने स्वामीको सदा प्रसन्न रक्खू ताकि, अधिक लाभ होवे, एव परस्पर मैत्री बढतीही जाती है यद्यपि यह उदाहरण मित्रताका नहीं है तथापि इससे परस्पर स्वार्थलाभकी सूचना स्पष्टही होसकती है । ऐसेही धनी धनी या चोर चोर इत्यादि जहा परस्पर मित्रता करते हैं, वह भी अवश्य किसी एक सूक्ष्म स्वार्थही को लेकर होती है. एव जहा परस्पर न्यूनाधिक स्वार्थ होय वहा मैत्री भी न्यूनाधिक ही होती है जैसे किसी एक विद्याके विद्वान् की मूर्ख धनी पुरुषसे यहा धनीके साथ मित्रता करके विद्वान् पुरुष अपना यथाकथञ्चित् स्वार्थ सिद्ध करलेता है परन्तु मूर्ख धनीको विद्याकी कदर नहीं इसलिये उसको लाभ कुछ नहीं होता, एव स्वार्थसिद्धि या स्वार्थसिद्धिके लिये मित्रता या मित्रताके लिये उद्दिष्ट . मित्रके सदृश गुण कर्म स्वभावका सम्पादन उद्योगहीसे होसकता है इसलिये उद्योगही इस पुरुषकी सुखसम्पत्तिका मूल है । (राज०) महाराज ! किसी एक कविने प्रारब्धकी मुख्यता दिखलाते हुए प्रसगसे

किन्न करोति विधिर्यदि रुष्टः किन्न ददाति सएव हि तुष्टः।
उष्ट्रे लुम्पति रम्वा षम्वा तस्मै दत्ता विपुलनितम्बा॥१॥

यह श्लोक कहा है भाव इसका यह कि, कोई लिखी पढी युवती किसी एक अव्युत्पन्न पुरुषके साथ विवाहित हुई मार्गमे एक यानारूढ होकर गमन-कालमे युवतीने अपरिचित पतिसे प्रेम पूर्वक वार्तालाप करना चाहा तो अक-स्मात् पाससे उष्ट्र (ऊँट) जारहाथा युवतीने पतिसे पूछा 'किमिदम्' तो पतिने उत्तर दिया कि, 'उष्टोऽयम्' युवतीने पतिके उच्चारणको अशुद्ध जान कर फिर पूछा कि, ' किमिति ' पतिने फिर जवाब दिया कि, ' उट्रोऽयमिति ' तब तो युवतीने अपने पतिको अव्युत्पन्न जानकर शोकातुर होय अपने भाग्यकी निर्बलताका सूचक तथा अव्युत्पन्न पतिके भाग्यकी प्रबलताका सूचक यह ऊपरका श्लोक पढा अर्थात् विधाता (दैव) यदि रुष्ट हो जाय तो क्या अनुपकार नहीं कर सकता एव, वही यदि प्रसन्न होजाय तो कौन ससारकी अच्छीसे अच्छी वस्तु नहीं दे सकता क्यो कि, प्रबलविधाताका कर्तव्य प्रत्यक्षही देखनेमे आता है कि, 'उष्ट्र' शब्द में कभी 'र्' के कभी 'ष्' के लोप-करके उच्चारणकरनेवाले 'इस' अव्युत्पन्न पुरुषको मैं लिखी पढी सुन्दरी बलात् दे दी इति, एवं इस उदाहरणसे प्रारब्धहीकी प्रबलता प्रतीत होती है। (प०) हे प्रिय ! हम इसका उत्तर तो देचुके है कि यदि वह पुरुष उस सुन्दरीकी कदर जानता है तो अवश्य उद्योगी है क्यों कि, उत्तम वस्तुकी पहचान विना उद्योगसे नहीं आती और यदि वह उसकी कदर नहीं जानता तो उसका उसको सुखही क्या ? संसारमात्रके पदार्थोंकी कदर जाननेवाले पुरुष यथायोग्य उन उन पदार्थोंको प्रयत्नपूर्वक लाभकरलेते हैं, क्या आपको यह कदापि सम्भावना है कि, कोहनूरका हीरा यदि अकस्मात् किसी ग्रामीणको मिलजाय तो उसके पास कितने दिन रहसकताहै भाव यह कि, जिस २ पदार्थकी जिस २ जीवको परीक्षाहै उस २ पदार्थसे वह २ जीव उचितलाभ उठासकता है परन्तु परीक्षाशून्यपुरुषको हीराभी पत्थरकी, कंकर बुझाताहै और परीक्षक तथा उचित प्रयत्नशीलपुरुषको संसारमात्रमे ऐसा कोई पदार्थ ही नहीं जो प्राप्त न होय।

(राजकु०) महाराज ! परीक्षामे भी भेदहै एक साधारणपरीक्षाहै दूसरी असाधारणहै, प्रथम जैसे गुड कौनको नहीं मीठालगता ? अपनी प्रशंसा सुनकर कौन प्रसन्न नहीं होता ? इत्यादि द्वितीय जैसे रसायनज्ञान, रत्नज्ञान, औषधीज्ञान इत्यादि इनमें द्वितीयपरीक्षा यद्यपि उद्योगसाध्यहै तथापि प्रथमपरीक्षा तो आपशु साधारणहै। (प०) हे प्रिय ! आपने कहा सो उचितहै परन्तु उसमेभी सूक्ष्मदृष्टिसे देखाजाय तो गुडभी सभीको मीठा नहीं लगता रोगीको या जिस पुरुषकी मीठाखानेपर रुचि न होय ऐसे पुरुषोको गुडादि पदार्थभी रुचिपूर्वक ग्राह्य नहीं होते और जिसकी रुचिहै वह यदि उचित यत्न-करे तो उसको वही पदार्थ था उसके जैसा दूसरा अवश्य प्राप्तहोता है और जिस पुरुष के पास खाली रुचिही रुचि है उद्योग बाप दादाके कियेपरही परितुष्ट है ऐसे आलसी पुरुषको संसारका कोईभी अच्छा पदार्थ मिलना कठिनहै प्रत्युत पिता पितामहके एकत्रितकियेभी उस ऐसे मूर्जीसे खिसलपिसल जायँगे। (राजकु०) महाराज ! दूसरे पुरुषकी अच्छी वस्तु देखकर क्या उद्योगीपुरुष छीनसकताहै ? । (प०) प्रथम तो यह वार्ताहै कि, इस परमात्माकी सृष्टि कोई एकही वस्तु नहीं है किन्तु परमात्माकी इच्छामात्रसे एक २ पेडके साथ सहस्र एकही जातिके फल लगकर तैयार होते हैं वे यथा योग्य उद्योग करनेसे राजा महाराजासे लेकर गरीब अमीर सभीके खानेमे आतेहैं केवल इतनाही भेदहै कि, अच्छे २ फलोको वही पुरुष खाताहै कि, जो अधिक प्रयत्नशीलहै भाव यह कि, एक जातिके अनेक पदार्थ इस संसारमें सदा विद्यमान रहते हैं उनमे अनुरागी पुरुष किसीके पास अच्छी वस्तु देखे तो तत्सजातिको लाभकर अपने चित्तकी अभिलाषाको पूर्ण करसकता है और यदि अपने चित्तकी दुर्बलताके कारण नहीं रहाजाय किंतु दूसरेके पास जो वस्तुहै उसीही के लेनेसे सतोष माने तो अधिक प्रयत्नशील मूर्ख ऐसाभी करलेते हैं आप इतिहासोंको देखो कि, यवनोंने कैसे इस अनाथ आर्य्यजातिके स्त्री धन पुत्रादि उत्तम २ पदार्थोंको बलात् हरण किया है, यद्यपि यह नीच उद्योगहै महानुभावोंमे यह कदापि होता ही नहीं तथापि हमारा कहनेका भाव यह है कि, उद्योगसे कोई वस्तु दुर्लभ नहीं है

उचित उद्योग होना चाहिये । (राज०) पुत्रका सुन्दर उत्पन्न होना यद्यपि आपके कथनानुसार आयुर्विद्याके अनुसार वर्तावकरनेसे होसकताहै तथापि उसका गुणवान् सुशील आज्ञाकारी होना आयुर्वेदके अनुसार वर्तावके अधीन नहीं है (पं०) हे प्रिय ! शरीरका स्वरूप सुन्दर होना आयुर्वेदोक्त आचारके अधीनहै विद्यादि गुणोंका होना उचित शिक्षाके अधीनहै सुशीलतादि गुणोंका होना वीर्य्यके अधीनहै अर्थात् शान्त सुशील विद्वान् पुरुषके वीर्य्यसे उत्पन्न हुआ पुत्र कदापि दुराचारी न होगा किन्तु प्रायः पितावत् गुणस्वभाववालाही होगा इसलिये विचारशील माता पिताको अपनी सुयोग्य सन्तान सम्पादन करनेके लिये प्रथम आप सुयोग्य होना आवश्यकहै अन्यथा जैसेका तैसा पुत्र उत्पन्न होगा तो वह सुशील बुद्धिमान् तथा आज्ञाकारी कहां से होगा । (राज०) महाराज ! संसारमें अनेक पुरुषोंकी अकारणिक मित्रता भी देखनेमें आती है । (पं०) हे प्रिय ! मित्रता तथा शत्रुता यह अकारणिक कभी कहीं नहीं होती किन्तु सकारणिक ही होती है तथा प्रायः सजातियोंहीकी होती है वह साजात्यभी किसी एक असाधारण धर्मको लेकर समझना चाहिये अर्थात् प्रायः राजाही राजासे शत्रुता या मित्रता तथा भिक्षुकही भिक्षुकसे शत्रुता या मित्रता करताहै परन्तु राजा भिक्षुकसे या भिक्षुक राजासे शत्रुता या मित्रता कदापि नहीं करता यदि कदाचित् होगी तो वह किसी एक साधारण कारणको लेकर अत्यन्त साधारणही होगी ऐसीका चिरस्थायी होना दुर्घटहै । (राज०) महाराज ! मैंने अनेक पुरुष देखे तथा सुने कि, जिन्होंने अपने मित्रके प्रेम में सर्वस्व तक लुटादिया तथा समयपर प्राणतक देदिये । (पं०) हे प्रिय ! मेरा यह कहना नहीं है कि, ऐसे पुरुष संसारमें नहीं हैं केवल भेद इतनाही है कि, ऐसे पुरुषोंकी सत्पुरुषोंमें गणनाहै क्योंकि, वे उपकारी मित्रके उपकारका बोझा उसकी विपत्तिके समय नहीं सहारसकते इसलिये उनको सर्वस्व लुटाना या प्राण देनेपडते हैं और जो नीच पुरुषहैं वे तो अपने मतलबके समय मित्र बनजाते हैं पीछे उसका उपकार अनुपकार कुछ नहीं समझते इतनेही भेदसे प्रथम पुरुष सत्पुरुष कहेजाते हैं तथा द्वितीय पुरुष स्वार्थी मतलबी नीच कहेजाते हैं परन्तु स्वार्थका संचार उभयत्र समानहै । (राजकु०) महाराज ! जो पुरुष अपने

प्रेमपात्र मित्रके देखनेके सिवाय दूसरा कदापि कुछ नहीं उससे चाहता उसका उससे क्या स्वार्थ है ? (५०) हे प्रिय ! ऐसे पुरुषका नाम मित्र नहीं है किन्तु उसको विद्वान् लोग आसक्त (आशक) कहते हे यह आसक्ति एकतरहकी लाइलाज बीमारी है प्राय यह अशिक्षित कचेह्रदयवाले पुरुषोको ही होती है इलाज इसका सिवाय प्रेमपात्रमिलनेके दूसरा कोईभी कितावोंमे नहीं लिखा है आसक्त रोगीको अपने प्रेमपात्रके यथेष्ट मिलनेसे थोडेही दिन पीछे यह वीमारी दूरभी होजाती है और यदि प्रेमपात्र रोगीको कदापि न मिले किन्तु उसका देखनामात्रभी दुर्लभरहे तो यह वीमारी बढती २ उस मूर्ख आसक्त के प्राण लेडालती है यह बीमारी प्राय उसी देशमें विशेषकर होतीहै कि; जहां पर्देका प्रचार अधिक हो तथा परस्पर मेलका सचार न्यूनहो; अनेक किस्से कहानियॉ तथा इतिहासों से देखनेमें आताहै कि. इस भारत वर्षके पचाव प्रान्तमे इस बीमारीका पूर्णरूपसे प्रचार होचुका है तथा है, और प्रान्तोमे बहुतही कम है उसमेभी दक्षिण देशके महाराष्ट्र प्रान्तमे या द्रविड तैलङ्गादि प्रान्तोंमें तो इस वीमारीका नामभी नहीं है कारण इसका यही है कि, इन प्रान्तोमें पर्दे पोशीका नामभी नहीं है किन्तु नई विवाही बहूभी अपने श्वशुर के सामने खुलेमुख साधारण लडकियोकी तरह बैठती हें, पोशिद वस्तुके देखनेकी सहजही पुरुषमें अभिलाषा उत्पन्न होती है उसी अभिलाषासे आकर्षित होकर कम दिल पुरुष उस वस्तुके देखनेमे प्रयत्नभी करता है कहीं एक ही वार देखनेसे तृप्त हो जाता है बीमारी दूर होजाती है, और कहीं देखताही फटक जाता है बीमारी प्रतिक्षण बढनेलगती है. इसलिये ऐसी अवस्थाका नाम मित्रता नहीं है किन्तु बीमारी है क्यो कि, मित्रताका स्वरूप हम पीछे यह कहचुके हें कि, उसका संचार सजातियो ही मे होता है। और यह बीमारी तो कुछभी नहीं देखती किन्तु आचार, विचार, मान, प्रतिष्ठा, जाति, कुल गोत्र. धन, धाम तथा बडाई इन सबको एकसाथही धूलिमे मिलादेती है कारण इसका यहीहै कि, प्रेमीपुरुषके चित्तकी दशाको प्रेमपात्र कुछ भी नहीं जानता क्यो कि, वह विचारा उस कालमें अत्यन्त अबुद्ध होता है यदि कहीं शतमें एक चतुर प्रेमपात्र अपने प्रेमीकी हालत पर आकर्षितहो उसके सतोषके उपायमे चेष्टित भी

होताहै तो वह विचारा मूर्ख जनसमुदायसे वाधित होकर अनेकतरह के क्लेशहीको उठाताहै, यह आसक्तिकी वीमारी कहीं एक तरफीही चित्तको बेचैनी रखती है कहीं २ दोतरफी भी चोट करने लगतीहै। कहीं २ दुतरफी अभिलाषा की अपूर्तिसे परस्पर प्राणभी लेडालतीहै और कहीं परस्पर मिलापप्रयुक्त प्रेमपूर्वक वार्तालाप करनेसे कुछ दिनमे शान्तभी होजातीहै विचित्र यह वीमारी है प्रायः लिखे पढे तथा बुद्धिमानो मूर्खोंही को होतीहै, इस वीमारीके बीमार पुरुष ससारके किसी भी कामके नहीं रहते दैवात् सौमे एक अच्छा भी होजाताहै और बाकी सभी इस वीमारीसे मरही जातेहैं इसलिये विचारशील पुरुषको ऐसी वीमारीसे वचनेके लिये अपने विचारोको परम दृढ रखना चाहिये परन्तु विचारों का दृढरखना सिवाय उद्योगी पुरुषके सम्भव नहीं इस लिये हमारे उद्योगहींका सर्वथा विजयहै। (राज०) महाराज ! ऐसे कौन विचार हे जो जिनके करनेसे इस वीमारीसे पुरुष बचारहे। (पं०) हे प्रिय ! वे विचार अनेक तरहके हैं और विचारशील पुरुषके चित्तमे उनका स्वयं ही प्रादुर्भाव होताहै तथापि उन सबका मूलभूत यह व्यासदेव-प्रणीत श्लोकहै—

सर्वे विनाशिनो भावाः पतनान्ताः समुच्छ्रयाः।
संयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्तं हि जीवितम्॥ १॥

अर्थात् यावत् भाव पदार्थ विनाशवान् हैं यावत् उन्नत पदार्थ पतनशील हैं यावत् सयुक्त पदार्थोंका वियोग होनेवाला है तथा यावत् जीवोका मरण होगा॥ १॥

एव यावत् भाव कार्य्य क्षणपरिणामी है, यावत् भावकार्य्य न्यूनाधिक हैं इत्यादि विचार करनेसे विचारशील पुरुषका किसी भी पदार्थमे दृढ राग नहीं होता, रागके न होनेसे दुःखभी नहीं होता, किन्तु अपेक्षितपदार्थोंके लिये उचित प्रयत्न करता हुआ प्रयत्नशील पुरुष उनपदार्थोंके ससर्गसे यथायोग्य लाभ उठाकर सदैव सतुष्टही रहता है।

इति सुशीलस्त्रीमित्रादिलाभविचारे एकोनविंशो विश्रामः॥ १९॥

अथ विंशः विश्रामः २०.

(राज०) महाराज ! यह जीव क्या स्वाधीन है कि, पराधीन है। (पं०) हे प्रिय ! यह विचार ऐसा गाढ है कि, जिसके विषे दर्शनकार महर्षि लोगो-की बुद्धि भी एक मत नहीं होसकी भाव यह कि, सभीका परस्पर अभिप्राय है जैसे कणाद तथा गौतम जीवको सदाही कर्मोका कर्ता तथा ईश्वरद्वारा स्वकृत कर्मोंके फलका भोक्ता मानते हैं ऐसेही जैमिनि भी इस जीवको कर्मके अधी-नही मानता है परन्तु कपिल पतञ्जलि तथा व्यास इस जीवका स्वरूप वास्तवसे स्वतन्त्र मानते हैं केवल अज्ञानसे कर्मबन्ध तथा ईश्वरके पराधीन मानते हैं भाव इसका यही हुआ कि, वास्तवसे जीव स्वतन्त्र है किन्तु अज्ञानसे परतन्त्र है। (राज०) इनमे आपका सिद्धान्त क्या है। (प०) हे प्रिय ! मैं तो यही मानता हूँ कि, यह जीव वास्तवमे स्वतन्त्र है किन्तु अज्ञानसे परतन्त्र है क्यों कि, इस पक्षमे युक्ति तथा प्रमाणं बहुत मिलते हैं। (राज०) वे युक्ति प्रमाण कौन हैं। (प०) हे प्रिय ! प्रथम युक्ति तो यह है कि, ससारमात्रके जीवोंमें ऐसाही देखनेमे आता है कि, जहा २ अज्ञान अधिक है वहां २ पराधीनता है जैसे २ ज्ञानसम्पन्न होता जाता है इसको स्वतन्त्रता भी धीरे २ मिलती जाती है और प्रमाण तो।

कर्मणा बध्यते जन्तुर्विद्यया च विमुच्यते।
तस्मात्कर्म्म न कुर्वन्ति यतयः पारदर्शिनः ॥१॥

इत्यादि शुकानुशासनरूप शास्त्रको जानना चाहिये अथवा 'जीवः स्वतन्त्रः चेतनत्वात् ईश्वरवत्' इत्यादि अनुमानको जानलेना चाहिये। (राज०) महा-राज ! मेरेको तो विचारदृष्टिसे देखनेसे जीवमात्र सर्वथा पराधीन प्रतीत होता है। (प०) हे प्रिय ! वह विचारदृष्टि कैसी है। (राजकु०) ऐसे प्रतीत होता है कि यह जीव प्रथम कर्म्मके अधीन होकर ही माताके गर्भमे आता है वहां भी पूर्णरूपसे पराधीनता है फिर जन्म लेनेके पीछे जबतक बालपन रहता है

अपने माता पिताकी वशवर्तिता रहती है फिर यौवनकालमे तो विचित्रही दशा होती है अर्थात् माता पिता जाति बन्धु स्वामी राज्य स्त्री पुत्र इत्यादिकोके पराधीन हुआ वस्तुतः अपने अनेक तरहके सकल्प विकल्पोके अधीन हुआ यह जीव एक क्षणभरभी सुखको लाभ नहीं करसकता उसके पीछे वृद्धपनमे तो और भी तृष्णा चमक आती है शरीर अशक्त होजाता है शारीरिक क्रियाभी पराधीन होजाती है तो इसकी स्वतन्त्रताका वस्तुतः निर्मूल देखनेमे आता है। (प०) हे प्रिय ! हमने पूर्व यह सिद्धान्त स्थिरकिया है कि, यह जीव वस्तुतः स्वतन्त्र है इसका पराधीन होना अज्ञानपूर्वक तथा अन्यायपूर्वक है इसमे आपके कथनसे हमारे सिद्धान्तरूप काँटेकी किसी तरफ अधिक झुकावट नहीं होसकती क्योकि; प्रथम तो यह बात है कि, आप पक्षकोटिमे तो जीवमात्रको लेतेहैं और साध्यकी सिद्धि केवल मनुष्यहींमे करते हैं यदि विचार करके देखाजाय तो यह जीव सिवाय अज्ञानके सर्वथा स्वतन्त्र है गर्भवासदशाभी इसकी अज्ञानदशाही है बालपनभी इसकी अज्ञानदशाही है उसके पश्चात् यौवनावस्था होनेपर इस मनुष्यके सिवाय यावत् योनियोके जीव प्रायः आजन्म स्वतन्त्रही रहते हैं। विशेष केवल इतना है कि, उनको न्यूनाधिक बलवाले होनेसे परस्पर एक दूसरेसे भीतिमात्र बनी रहती है परन्तु उनमे एक दूसरेकी पराधीनताका लेशभी नहीं है यह वार्ता जगलके जीवोमे स्पष्टही देखनेमे आती है जीवोमे एक दूसरेसे भीति या परस्पर प्रेमका होना उनके असाधारण धर्म राग द्वेषादि प्रयुक्त है उसमें कुछ स्वतन्त्रता परतन्त्रताका सम्बन्ध नहीं है, नात जातिका बखेडा भी जंगलके पशुपक्षियोंमे नहीं है। स्वामी सेवकभाव या राज्यशासनाका क्लेशभी पशुपक्षियोंमे नहीं है, स्त्री पुत्रादिकों की पराधीनता या उनपर विशेषरूपसे स्वत्व कि, ये मेरेही स्त्री पुत्र है दूसरा इनसे काम नहीं ले सकता, यह वार्ता भी पशुपक्षीगणमे नहीं है और अपने सकल्प विकल्पके अनुसार व्यवहरणका नाम पराधीनता नहीं है किन्तु स्वतन्त्रताहै इसलिये जगल के पशुपक्षीगण वास्तवसे स्वतन्त्रहैं शेष रही मनुष्यजाति इसकी पराधीनता कृत्रिम अज्ञानपूर्वक तथा अन्यायपूर्वक है वास्तवसे जीवमात्रका स्वरूप स्वतन्त्र है। (राजकु०) जंगलके जीव तो मनुष्य जातिसे भी अज्ञान बहुल हैं आपके सिद्धान्तानुसार

तो उनमें स्वतन्त्रताका लेशभी होना नहीं चाहिये। (पं०) हे प्रिय! उनमें अज्ञानकी बहुलता ही उनके स्वतन्त्रपनका कारण है, क्यों कि,-हमारे शास्त्रका यह सिद्धान्त है, कि-

सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम्।
एतद्विद्यात्समासेन लक्षणं सुखदुःखयोः॥ १६०॥

मनुः अ० ॥ ४ ॥

अर्थात् पराधीन जीवको सम्पूर्ण रूपका दुःख रहता है तथा स्वाधीन जीवको सर्वतरहका सुख रहता है यह संक्षेपमात्रसे सुख तथा दुःखका लक्षण जानलेना चाहिये इस मनु वचनसें स्वाधीनहीको पूर्ण सुख लिखा है दूसरेको नहीं, एवं दूसरे नीतिवचन में ऐसाभी लिखा है, कि-

यश्च मूढतमो लोके यश्च बुद्धेः परंगतः।
तावुभौ सुखमेधेते क्लिश्यत्यन्तारितो जनः॥ १॥

अर्थात् जो जीव इस लोकमें मूढतम है अथवा जो जीव इस लोकमें परम विद्वान् है वेही दो इस ससारमे सुखी हैं बाकी मध्यपाति यावज्जीव सदा क्लेशाक्रान्तही रहते हैं इन दोनों वचनोंकी एक वाक्यता करने से हमारा सिद्धान्त पूर्णरूप से स्फुट होता है। जगलके जीव मूढतमहै इससिये स्वतन्त्र भी है (राजकु०) महाराज! जगलके जीव भी तो अनेक परवश होकर असीमदुःखको उठाते दीख पडते हैं। (पं०) हे प्रिय! विचारदृष्टि सामान्यरूपसे पदार्थोंके आदोलनमें प्रवृत्त होती है, किन्तु किसी एक व्यक्तिविशेषको लेकर प्रवृत्त नहीं होती है। एव यदि सामान्यरूपसे देखा जाय तो जगलके यावत्जीव स्वतन्त्रही देखने में आते है। और यदि कहीं सिंह-व्याघ्रादि विशेष व्यक्ति पराधीन देखनेमें आती है तो वे किसी राजामहाराजादि विशेषजीवके विशेष स्वार्थवशसे देखने मे आती हैं एव किसी एक व्यक्तिविशेषके पराधीन होनेसे जंगली जीव जातिमात्रको पराधीन कहना या मानना युक्तियुक्त नहीं है, (राजकु०) जगली जीवोंका विचार जैसा हो वैसाही रहो परन्तु मनुष्य

जाति तो सर्वथा पराधीनही देखनेमे आती है। (पं०) हे प्रिय ! मनुष्य जाति भी स्वार्थवशसे परस्पर पराधीन है वस्तुतः पराधीन नहीं है । (राजकु०) मनुष्य जातिमे कोई भी स्वतन्त्र देखनेमे तो नहीं आता । (प०) सहस्रों राजा महाराजा तथा सहस्रो सिद्ध, यती योगी लोग सर्वथा स्वतन्त्र प्रकृतिके होचुके वर्तमानमे हैं तथा आगेभी होगे । (राजकु०) महाराज ! आपहीके कथनानुसार किसी विशेष व्यक्तिके उदाहरणसे उस जातिमात्रको स्वतन्त्र कहना भी तो उचित नहीं । (प०) हे प्रिय ! वस्तुतः इस जीवको कोई भी पराधीन नहीं कर सकता हैं किन्तु स्वस्वस्वार्थके वशीभूत प्राणी मात्र आपही एक दूसरे की पराधीनता स्वीकार कर लेते हैं । चौरासी लक्ष जीवयोनिमे यह मनुष्य योनि बुद्धिबलमे सबसे अग्रगण्यहै जैसे ही इसमे बुद्धिबलकी प्रधानता है वैसेही इसमे काम, क्रोध, लोभ, मोह, मत्सर, राग, द्वेष, ईर्षा, द्रोह, इत्यादि अव-गुणोंकी भी प्रधानता है अर्थात् ऊपर कहे दुर्गुण मनुष्य योनिमे जैसे प्रबल और योनियोंमे नहीं हैं यही मूलकारण इस मनुष्य योनिके अधिकतर पराधीन होनेका है और जहां मनुष्य शरीरसे भी इन दुर्गुणोंकी न्यूनता है वहा मनुष्य शरीरमे भी प्रायः स्वतन्त्रताही देखनेमे आती है, उदाहरण इसका हम सहस्रों इत्यादि पङ्क्तिसे कहही चुके हैं । (राजकु०) महाराज ! राजेमहाराजे तो आपके कहे दोषो से रहित नही हैं उनमे स्वतन्त्रता का होना आपने कैसे कहा। (प०) हे प्रिय ! उनकी स्वतन्त्रता केवल ! हमने लौकिकदृष्टिसे कही है वस्तुतः वे स्वतन्त्रभी नहीं हें । (राजकु०) राजा महाराजाओंको किसकी पराधीन-ताहै (प०) यह तो आपको मालूमही होगा कि, सबही पुरुष राजा नहीं होते किन्तु सहस्रो लक्षो या कई कोटि मनुष्योंमेंसे एकही राजा होताहै, उस एक मनुष्य जैसे मनुष्यमे अनेक सजातियों के स्वाधीन करनेकी या रखनेकी शक्ति कदापि नहीं होसकती इस लिये वह अपने राज्य जमानेके लिये अनेक सजाति मनुष्योंको साथ मिलाकर उनके वशवर्ती होय इतरोपर अपना अधि-कार जमालेताहै । दीन दुःखी लोग कई एक अनर्थोंसे भयभीत हुए उनके यथायोग्य शासनको स्वीकार करलेतेहैं, कालान्तरमे वे अधिकार जमानेवाले लोग यदि उस स्वाधीन नाम मात्रके राजाके साथ मिलकर कोई प्रजा पर

अनुचित अत्याचार करे तो प्रजा उस अत्याचारको न सहन करती हुई उस राजाको सहित उसके सहायको के निर्मूल कर देतीहै इस वार्ताका उदाहरण अनेक यवन राजे होसकतेहैं और यदि वही राजा अपने सहायकोंके समेत समय २ पर प्रजा की प्रार्थना पर विशेष दृष्टि रक्खे तो उसको कदापि कुछ भय भी नहीं होताहै इस वार्ताका उदाहरणरूप हमारे अनेक प्राचीन राजे महाराजे होसकते हैं इसलिये राजा सर्वथा स्वतन्त्र नहींहै किन्तु अपनी प्रजाके तथा अपने सहायकोके परम पराधीनहै। (राज०) आपके इस कथनसे तो मेराही मत सिद्ध हुआ क्यों कि, मेरी समझमे जीव सर्वथा परतन्त्रही प्रतीत होताहै। (पं०) हे प्रिय! हम तो पूर्व आपको कहही चुके हैं कि, इस जीवका वास्तवस्वरूप स्वतन्त्र है और कर्मबन्ध या पराधीनता इसकी औपचारिकहै विविधवासनाविष्ट स्वार्थवशहोकर यह जीव वस्तुतः स्वतन्त्र भी अपने को परम परतत्र मानताहै कर्मबन्ध या अनेक प्रकारका वासनाजाल यदि इस जीवका कदाचित् स्वरूपभूत तथा सनातन होय तो उसको नित्यभावस्वरूप होनेसे उसका उच्छेदभी नहीं होना चाहिये यदि ऐसा होय तो इसकी मोक्षदशा प्रतिपादक शास्त्र सबही व्यर्थ ठहरेगे। मोक्षप्रतिपादक शास्त्र परम युक्तियुक्त हैं यद्यपि ग्रन्थवृद्धिके भय से उन युक्तियोंको हम यहा नहीं लिखसकते तथापि मोक्षप्रतिपादक शास्त्रका निरर्थक होना असम्भवहै इसलिये जीवका वास्तवस्वरूप स्वतन्त्रहै और कर्मबन्ध या पराधीनता इसको औपचारिकहै अर्थात् इसकी वासनाओंके विचित्र होनेसे इसको अनेक प्रकारके बन्ध तथा पराधीनता प्रतीत होतीहै जैसे २ जहा २ जिस २ जीवमे वासनाओका सकोच है वहा ही उस जीवको पराधीनता कमहै या लेशभी नहीं, इसका उदाहरण विद्वान् साधु महात्मा लोग या सुषुप्तिमे हरएक जीव होसकता है महात्मा पुरुषोमे वासनाजाल कम रहताहै इसलिये पराधीनता भी बहुतही कम रहतीहै सुषुप्तिकालमे वासना नहीं होती पराधीनता की प्रतीति भी नहीं होती ऐसेही हरएक प्राणीमे जानलेना चाहिये (राज०) वास्तव स्वरूप इसका चाहो स्वतन्त्रही हो तथापि देखनेमे यह जीव परतन्त्रही प्रतीत होताहै। (पं०) हे प्रिय! प्रथम स्वतन्त्र शब्दके अर्थकी विचारणा करे तो इसका स्पष्टार्थ 'यथेच्छाचारी' प्रतीत होताहै एवं लोकमेभी जो

जिसके अधीनहै वह अपनी इच्छाके अधीन है अर्थात् स्वार्थवशसे है इस लिये स्वतन्त्रही कहना चाहिये। (राज०) महाराज! उनकी अपनी इच्छासे विनाभी तो राजालोग बलसे जीतकर अनेक मनुष्योंको स्वाधीन करलेतेहै (प०) हे प्रिय! हम पूर्व कहचुकेहै कि, और योनियोसे इस मनुष्ययोनिमें राग द्वेषादि दुर्गुण अधिकहै ऐसे पर यदि राजा न होय तो परस्पर कटके मरजावे बली निर्बलको कदापि जीता न छोडे परन्तु राजा सबका न्यायपूर्वक पालन करताहै बस इसी स्वार्थके वशीभूतहो कोई भी मनुष्य ऐसा नहीं चाहता कि, राजा न होवे किन्तु यही चाहते हैं कि, हमारा कोईभी दुःख सुननेवाला राजा होना चाहिये एव अपनी इच्छाही से लोग राजा बनालेते हैं, इच्छाही से उसका किया न्यायभी मजूर करलेते हैं जो करते हैं अपनी इच्छासे करतेहैं, इसलिये मनुष्यजातिभी अपनी इच्छासे सब काम करतीहुई स्वतन्त्रही दीख पडती है (राज०) महाराज! मेरे को तो प्रजा सर्वथा राजाके अधीन तथा यावत् स्थावर जङ्गम परमेश्वर के अधीन प्रतीत होतीहै। (पं०) इस कहनेका आपका अभिप्राय क्या है। (राज०) देखाजाता, है कि-अधिक बल बुद्धिवाले लोग अपनेसे न्यून बल बुद्धिवाले जीवोंसे अनेक तरहका काम लेते हैं तथा आप जहांतक बनपडे चैन करते हैं। तथा ईश्वरभी जीवोके पूर्वकर्मोंके अनुसारही फल देता है। (प०) इससे सिद्ध क्या हुआ। (राजकु०) सिद्ध यह हुआ कि, यह जीव यदि स्वरूपसे स्वतन्त्र तथा प्रयत्नशील होय तो ऐसी परस्पर एक दूसरेकी पराधीनता नहीं होनी चाहिये। (प०) इसका उत्तर तो हम पूर्व देचुके हैं कि, स्वार्थवशसे पराधीन होते हैं। (राजकु०) बलात् भी तो किये जाते हैं। (प०) कौन किसपर बलात्कार करता है। (राजकु०) जिन मनुष्योमें बल बुद्धि अधिक है वे निर्बल जीवोपर बलात्कार करते है। (प०) हे प्रिय! न्यायशील बल बुद्धिमान् मनुष्य कदापि किसी जीव पर बलात्कार नहीं करते किन्तु उसको उसके करने योग्य कार्य्यमे नियुक्त करते हैं। पशुप्राय अशिक्षित प्राणिवर्गको अपने कर्तव्य अकर्तव्यका कुछभी ज्ञान नहीं है। ससारमात्रकी व्यवस्थाके लिये उनको यथाधिकार कार्य्यमे नियुक्त करना विद्वानोंका परम धर्म है परन्तु ऐसा कोई जीव नहीं जो उद्योग करना नहीं चाहता प्रत्युत बेकार तथा मानसिक अधिक आयास

करनेवाले लोग बैठे २ अकड जाते हैं तो विना प्रयोजन दो चार कोश मार्ग नित्य भ्रमण करते हैं । (राजकु०) महाराज ! यह मनुष्य इष्टानिष्टको जानकर भी अनेक स्थलोमे अवश्य प्रवृत्त होता है सो यह प्रवृत्त होना इसका क्या स्वाधीन है ? कि, अदृष्टाधीन है या कि, ईश्वराधीन है ? (प०) हे प्रिय ! यह जीव स्वरूपसे स्वाधीन है, अज्ञानसे कर्मोंका कर्ता तथा फलका भोक्ता है उन कर्मोंके करनेमें भी यह जीव सर्वदा स्वतन्त्र है परन्तु कर्मोंके फल भोगनेमे परतन्त्र है अर्थात् ईश्वरके अधीन है, ईश्वरका स्वरूप नित्यज्ञान नित्यइच्छा नित्यप्रयत्नशील है, नित्यज्ञानका भाव यह है कि, ईश्वर कभी अज्ञानी नहीं होता, नित्यइच्छाका भाव यह है कि, ईश्वरकी इच्छा कभी विपरीत नहीं होती, नित्यप्रयत्नका भाव यह है कि, ईश्वरीय प्रयत्न कभी निष्फल नही होता, एव जीव स्वाधीन कर्मोंको कर्ता हुआ ईश्वरीय नित्य इच्छाके अनुसार उचित फलको भोगता हुआ जन्म जन्मातरमें विचरता रहताहै । (राजकु०) आपके कथनानुसार यह जीव अनादि कालसे कर्मोंका कर्ता तथा फलका भोक्ता सिद्ध हुआ एव वर्तमान भोगकेलिये वर्तमान प्रयत्न व्यर्थ हुआ क्यों कि, पिछले किये कर्मोंके फलका देना ईश्वराधीनहै सो वह अवश्य देगा यदि ऐसा कहें कि, भावी भोगो के लिये अर्थात् आनेवाले जन्ममे होनेवाले भोगों के लिये पुरुषको प्रयत्न अवश्य करना चाहिये तो यह भी उचित नहीं क्यो कि, वर्तमानमे जो कुछ प्रवृत्ति निवृत्ति होती है वह सब पिछली प्रारब्धका भोगरूपही है फिर जुदा प्रयत्न कहा रहा । (प०) हे प्रिय ! इस प्रश्नका उत्तर हम पूर्व देभी चुकेहैं परन्तु आपने फिर पूछा है तो सावधान होके श्रवण करना उचित है यह जीव अनादि कालसे शुभाशुभ कर्मोंका करनेवाला तथा उनके सुख दुःखरूप फलका भोगनेवालाहै परन्तु जिस कालमे यह जीव शुभ या अशुभ क्रिया करताहै उसी कालमे उस कर्म्मरूपवीजसे वासना तथा अदृष्ट ये दो अकुर पैदा होते हैं अर्थात् शुभकर्मोंके करनेसे शुभवासना तथा शुभ अदृष्ट उत्पन्न होतेहैं, एव अशुभ कर्मों के करनेसे अशुभ वासना तथा अशुभ अदृष्ट उत्पन्न होतेहैं । इनमेसे शुभाशुभ अदृष्टो का विनाश तो विना उनका सुख दुःखरूप फलभोगे या विना प्रायश्चित्तादि विशेप क्रिया के या विना आत्म-

ज्ञानके कदापि नहीं होता परन्तु शुभाशुभ वासना की विनाश या वृद्धि सत्पुरुषों के सङ्गसे या कुसङ्गसे होसकती है अर्थात् सत्पुरुषो के समागमसे शुभ वासनाकी वृद्धि होती है । उसीके अनुसार पुरुष फिर सत्कर्मोंमें प्रवृत्तहोताहै । और कुत्सित पुरुषोंके सगसे उसी शुभ वासनाका नाश भी होजाताहै । शुभ वासना के नष्टहोनेसे पुरुष यथेष्ट कुकर्मों मे प्रवृत्त होताहै । ऐसेही दुराचारी पुरुषोके सगसे अशुभ वासनाकी वृद्धि होती है उसीके अनुसार पुरुष फिर अशुभ कर्मोंमे प्रवृत्त होताहै । और सत्पुरुषो के समागमसे उसी अशुभ वासनाका विनाश भी हो सकताहै । अशुभ वासना के नष्टहोनेसे पुरुष सत्सग द्वारा सत्कर्मोंमें प्रवृत्त होताहै । इस विचार से यह निश्चय हुआ कि, शुभाशुभ अदृष्टका फल तो सुख दु:ख भोगरूप अवश्यही होताहै । परन्तु सत्सग कुसगद्वारा शुभाशुभ वासना के वृद्धि ह्राससे उद्योग भी सफलहै इसलिये उद्योगको छोडकर केवल प्रारब्धके भरोसे पर बैठ रहना सत्पुरुषोका काम नहीं है ।

इति प्रारब्धविचारे विशतितमो विश्रामः ॥ २० ॥

अथ एकविंश विश्राम २१.

(राजकु०) पूर्व मैंने जितने प्रश्न किये उनके आपने उचित उत्तर दिये जिनको स्मरणकर मेरा चित्त प्रतिक्षण प्रसन्न होकर उद्युक्त होनाचाहता है मेरेको यह निश्चय होचुका है कि, आलस्यकी बीमारीको आपका उपदेश परम औषध है परन्तु तो भी सांसारिक विचित्र घटनाओ तथा इतिहास पुराणादिको के विलक्षण वचनोंको देखकर मेरे चित्तमे फिर असंतोषसा प्रतीत होनेलगता है क्यो कि, बहुधा देखनेमे आता है कि, नित्यके अभ्यासी तथा समयपर व्यापार करने वालोंको भी कदाचित् घाटाखाना पडता है (१) एवं खानेके लिये बहुत देख भालके खरीदे फलादि भी कदाचित् दैवात् खट्टेभी निकलआते हैं (२) एवं राजाके पुण्य विशेपसे उसकी सेना तथा प्रजा कैसी प्रत्यह सर्वदा नियमित बनी रहती है (३) एवं किसी २ स्थलमें

कैसे राज्यवैभव अकस्मात् मिलजाता है (४) एव समुद्रादि जलमें नुकसान बड़े बड़े उद्योगियोका भी हो ही जाता है (५) फिर कैसे मानाजावे कि प्रारब्ध वलवती नहीं है। ऐसे ही—

न दिष्टमभ्यतिक्रान्तुं शक्यं भूतेन केनचित्।
दिष्टमेव ध्रुवं मन्ये पौरुषं तु निरर्थकम् ॥ ३२ ॥

भा० उद्यो० प० अ० ४० ॥

निमग्नस्य पयोराशौ पर्वतात्पतितस्य च।
तक्षकेणापि दष्टस्य आयुर्मर्माणि रक्षति ॥ १ ॥
आयुः कर्म च वित्तं च विद्या निधनमेव च।
पञ्चैतान्यपि सृज्यन्ते गर्भस्थस्यैव देहिनः ॥ २ ॥

अर्थात् कोई प्राणीभी दैवगतिका उल्लंघन कदापि नहीं करसकता इस लिये दैवहीको ध्रुवमानना चाहिये क्यो कि, उसके आगे पुरुषार्थ करना वृथा है ॥ ३२ ॥ जलराशिसमुद्रमे डूबते हुए पर्वतसे गिरते हुए तथा तक्षक सर्पसे डसे हुए पुरुषको बचानेवाला केवल उसका प्रारब्ध है ॥ १ ॥ आयु, अच्छी बुरी, क्रिया, धन, विद्या, तथा मरण यह पाचो इस जीवके गर्भस्थितिकालहीमे विधाताकी तरफसे लिखेजाते हैं ॥ २ ॥

इत्यादि इतिहास पुराणोके वचनभी अनेक हैं जिनको देख सुनकर सुविचारशील पुरुषकीभी चित्तवृत्ति द्विधाहुए विना नहीं रहती। (प०) हे प्रिय ! जो आपने कहा यथार्थ है इस जीवका यह स्वभाव है कि, जो सस्कार इसको प्रथम बालपनमे पडजावे उनका निकालना बहुतही कठिन होजाता है यही कारणहै कि, हमारे देशके सहस्रो विद्वान् लोगभी अनेक दूषित तथा अनुत्तम सिद्धान्तोपर आग्रहकर उनको अनेक मिथ्यायुक्तियोंसे सिद्ध करना चाहते हैं परन्तु अपनी भूल मानकर सन्मार्गमे प्रवृत्त नहीं होते। प्राचीन समयसे हमारे ऋषि मुनि लोग लघु महान् भेदसे उद्योगको दो तरहका मानते चलेआये है उसमे लघु उद्योग तो सर्वजीव साधारण है। और महा उद्योग ईश्वरका है।

जिसकी स्थलविशेषमे बाध्य बाधक भावसे या सहकारी सहकार्य्य भावसे सफलता होय वह लघु उद्योग है। जैसे—यावत् जीवोंका उद्योग परस्पर न्यूनाधिक बलवाले जीवोमे बाध्य बाधक भावको प्राप्तहोता है। अथवा सहकारी सहकार्य्य भावको प्राप्तहोता है। जीवोंके परस्पर द्वेषस्थलमे बाध्य बाधक भावको प्राप्त होता है। और रागस्थलमे सहकारी सहकार्य्य भावको प्राप्तहोता है। एव इतरानपेक्ष सर्वत्र सफलता लाभकरनेवाला ईश्वर उद्योग है घट, पट, कुड्य, कुशलादि पुरुषके लिये असाधारणत्वेन उपयुक्त सृष्टि जीव उद्योगसाध्य है, पृथिवी जल खण्ड ब्रह्माण्डादि महाकार्य्य महाउद्योग साध्य हैं, उस महा उद्योगी परमेश्वरका नामही सत्यशास्त्रोंमे दैव है हमारे पूर्वज ऋषि मुनि लोग अरण्यगत फल फूलोसे निर्वाहकरते हुए निरन्तर तपश्चर्य्यामे आरूढ रहेथे यह वार्ता प्रत्येक इतिहास पुराणोंसे प्रख्यात है, समय समयपर राजे महाराजे सेठ साहूकार लोग उनके दर्शनको जाते अनेकविधि सेवनपूजन से उन महात्माओंके उपदेशका लाभ उठाते हुए कदाचित् पूछ लेते कि, महाराज खान मानका निर्वाह कैसे होता है तो वे ऋषि लोग यही उत्तर देते कि, दैव देता है, तात्पर्य्य उनके कहनेका यही है कि, हम लोग तपस्वी हैं परमात्माके प्रयत्नसे उत्पन्नहुए फल फूल खायकर निर्वाह कर लेते हैं परतु विरोचनकी तरह उल्टा अर्थ समझने वाले भक्तलोग उन ऋषियोके कहे " दैव " शब्दका अर्थ भी प्रारब्ध समझने लगे उन महात्माओ से न किसीने इन्द्रकी तरह खुलासा करके पूछा और न उन्होंने किसीको पूछे विना अपना हार्द बतलाया ऐसेही अनेक वार समय समय पर भक्तलोग उन महात्माओंके दर्शनको जाते और वहांसे विपरीत अर्थ को धारणकर घरमे आकर उसको गद्य या पद्यात्मक लिख छोडते जब कोई बन्धु कदाचित् उनको सूतोंको उठाकर किसी कार्य्यविशेषके लिये प्रार्थना करता तो उस बन्धुको वे सीधा जवाब तो नहीं देते कि, हमारेसे कार्य्य नहीं होता परन्तु उठकर उसको " अरक्षित तिष्ठति दैवरक्षितम् " इत्यादि अनेकतरहका मनोघटित विरोचनका सिद्धांत सुनाने लग जाते थे। राज्यव्यापारादिके सम्बन्धसे विदेशीलोगोंका फेरा इस देशमे उस समय किंचिदपि न था इस महा विस्तृत तथा वैभवशाली देशमें जनसमुदाय बहुतही न्यून था इसलिये

ऐसे समयपर सहस्रोंमें सैकड़ों पुरुष गुंजापुंजमे अग्निबुद्धि करतेहुए भी उचित समयपर खानपानादि शीतसे बाधित नहीं होते थे परन्तु वर्तमानसमय महा शोचनीय है, हे प्रिय ! कलंदरका बन्दर, धोबीका बैल या गाडीका घोडा कदापि अपने मालिकके सामने यह कहसकता है कि, घर घर नॉचनेकी कपडे ढोनेकी या गाडी खैंचनेकी मेरी प्रारब्ध नहीं है अर्थात् सब काम उनसे बलात् करवाये जाते हैं ऐसेही वर्तमानके प्रारब्धवादियोको भी समझकर यथाशक्ति स्वय अपने हिस्सेका बोझा उठा लेना चाहिये अन्यथा उदाहरणीय सजाति भाई-योकी जो दशा हुआकरती है उसीकी होनेकी सम्भावना है। (राजकु०) महाराज ! विरोचनको तो ब्रह्माके उपदेशसे देहात्मवाद निश्चय हुआ था परन्तु ये प्रारब्धवादी लोग तो देहात्मवादी नहीं हैं। (प०) हे प्रिय ! दृष्टान्त सर्वांशपूर्ण नहीं होता किन्तु एकदेशी होता है प्रकृतमे विपरीत निश्चयके तात्पर्य्यसे दृष्टान्त है सो उभयत्र तुल्य है। (राजकु०) महाराज ! प्रारब्ध तो आपभी मानतेही हैं फिर उनका मानना विपर्य्यय कैसे है। (प०) हे प्रिय ! हम मानते तो हैं परन्तु ऐसा नहीं मानते कि, हमारे मुखपरसे मक्खीभी प्रारब्धही उडावेगी किन्तु पूर्वोक्तरीतिसे साधारण कारणका एकदेश वह भी है। (राजकु०) मेरे किये प्रश्नोंकी व्यवस्था लगाइये। (प०) हे प्रिय ! हमने आपके प्रश्नोंकी व्यवस्था सामान्यरूपसे कहदी है परन्तु आपने दृष्टि नहीं दी जैसे पूर्व हमने लघु महान् भेदसे प्रयत्न दो तरहका माना है और उनका स्थलविशेषमें परस्पर बाध्य बाधक भाव तथा सहकारी सहकार्य्य भावभी माना है अब यहा यह व्यवस्था करणीय है कि, जहां नित्यके अभ्यासी तथा समय-पर व्यापार करनेवाले पुरुष को लाभ या हानि हुई है वह उसकी प्रारब्धसे है कि, या किसीके उद्योगसे है तो हमतो इसका यही उत्तर कहते हैं कि, अवश्य उद्योगसे है। कहीं लघु उद्योगसेही हानि लाभ हो जाता है और कहीं महा उद्योगहीभी हानि लाभमें हेतु होता है, जैसे इस संसारमे यह जीव सामान्यदृष्टि-से चारही कार्य्योंमें विशेषरूपसे प्रवृत्त देखनेमें आता है खानपानादिमे (१) पहरानमे (२) या इन दोनोंके साधनोमें (३) या मनोविनोदसाधनोंमें (४) बस इसके सिवाय ससारमें कोई वस्तु बाकी नहीं है इन चारोके यथा

रुचि उपलाभ होनेसे यह जीव अपना सौभाग्य मानता है किंचित् त्रुटि रहनेसे सर्वदा खिन्न स्वान्त अपने जीवनको पूरा करता है । परतु खान पान पहरान आदि के साधन अर्थात् खान पानादि योग्य पदार्थ केवल इस जीवके लघुप्रयत्न-जन्यही नहीं है किन्तु महान् प्रयत्नकी भी अपेक्षा रखते हे । और महान् प्रयत्न-वान् परमात्माभी अपने प्रयत्नद्वारा समय समय पर इनजीवोके खानपानादि के योग्य अनेक प्रकारके पदार्थोको उत्पन्न करता हुआ अनवरत एकरस विराजमान है । उसी प्रभुके महा उद्योगसे सिद्ध वस्तुओका यह जीव समय समय पर व्यापार करता हुआ सहस्रोवार सिवाय लाभके हानि कदापि नहीं उठाता क्यो कि, परमात्माके सृष्टिनियमसे तत् तत् वस्तु तत्तद् देशमे तत्तत् समय विशेष्हीमे होती हे आगे पीछे नहीं होती किन्तु आगे पीछे उसका भाव हमेशा चढही जाता है इसीलिये तत्तद् जिन्सके व्यापारियोको हमेशा लाभही होता है कदापि घाटा नहीं होता परन्तु सहस्रोवार ऐसे होतेभी यदि कदाचित् उस महा उद्योगीका उद्योग किसी एक जिन्सके ह्रासमे या वृद्धिमे उपयुक्त होता है तो इन भारतवासी व्यापारीगणके पेट या तो नफेको सोचकर फूले अगमे नहीं समाते और या नुकसानको सोचकर कहीं दीखभी नहीं पाते । एकही वारका नुकसान अनेक वारके नफेके सिरमे धूलि डालके शेषमे सेठजी-को मरणप्राय करता हुआ उनके हाथमे प्रारब्धकी माला पकडा जाता है । और वह उस मालाको फेरताहुआ साथही यहभी कहा करता है कि, हमारे साथ जो ईश्वरने करी ऐसी किसीके साथ न करे, परन्तु वह तुच्छ यह नहीं जानता कि, उस महा प्रभुका सद् उद्योग क्या ससारमे मेरेहीलिये है उसके अनुग्रहसे अनेक वार मेने लाभ उठाया अबके हानिभी हुई तो क्या भय है परन्तु पापीको ऐसी बुद्धि आवे कहॉसे । यही व्यवस्था कृपिकारोकी हानि लाभमे और समुद्रगतजलयानादि द्वारा हानिलाभमे भी जानलेनी चाहिये । वर्षा वायु आदिकोका न्यूनाधिक होना केवल परमेश्वरके महा उद्योगसाध्य है । उस महाप्रभुका महा उद्योग सर्वदा अधिक जीवोंके उपकारके उद्देशसे ही होता है (१) ऐसेही खान पानके लिये फल फूल खरीदनेमे धोखाखाना केवल अपनी मूर्खता है अर्थात् जो पुरुष जिस वस्तुके स्वरूपको पूरीतौरपर नहीं

जानता उसमें उसको घाटेकी या नुकसानकी सम्भावना अवश्य हो सकती है (२) एव प्रजा तथा सेनाको नियमित रखनेवाले राजाका प्रजा सेनाके साथ प्रेम तथा उत्तम न्याय है। यदि न्यायमार्गसे प्रचलित राजाके सेना या प्रजा वशवर्ती रहे तो आश्चर्य्यही क्याहै। राजा केवल सुखकेलिये प्रजाका प्रबन्धकर्ता है ना कि, अत्याचार करता? परमेश्वरने स्वरूपसे जीवको स्वतन्त्र किया है। परन्तु ये आपही परस्पर सुखलाभकी आकाक्षा करते हुए आपसमें मिल बैठते है। जिसकी जैसी योग्यता होती है उसको वैसेही स्थानपर नियतकर सबही जीव लाभ उठाते हैं। यह वार्ता सबके अनुभव सिद्ध है और इसीका नामही न्याय है। परन्तु यदि कदाचित् राजाभी अपने राज्यके गुमानपर मूढ हुआ अपनी प्यारी प्रजा या सेनाके साथ अत्याचार करने लगता है तो थोडा काल तो प्रजा उसके मुखकी तरफ देखती है पीछे वह एकजान तो है ही क्या, उनके साथ सम्मति देनेवालोंकी भी थोडेही दिनोमे उस प्रजा या सेनाहीके हाथसे घूल उडजाती है। इस वार्ताके लिये अनेक यवन राजे उदाहरण रूप हैं (३) और हे प्रिय! अकस्मात् राज्य मिलता तुमने किसको कहां देखा या सुना है। क्या तुमको राजा नलकी, महाराज रामचन्द्रकी, पाण्डवोकी इत्यादि अनेक ऐतिहासिक गाथा सबही विस्मरण होगई। यदि अकस्मात् राज्य मिलता तो ये विचारे इतना २ श्रम क्यो उठाते। अहा! क्या इन देशी रजवाडोंके तात्पर्यसे तो तुम अकस्मात् शब्द नहीं कहते?। (राजकु०) इसी तात्पर्यसे तो कहता हूँ। (प०) हे प्रिय! मैंने इनके तात्पर्य्यसे राज्यप्राप्तिविचार नहीं किया और न इस उद्योगके प्रकरणमे दूसरेकी कृपाका पात्र स्वय राजा कहा हो सकताहै। यद्यपि वशपरपरासे या लोकरूढिसे इनमेंभी राजा शब्दका प्रयोग होता है तथापि हमारे ग्रन्थका नायक उद्योग ब्रिटिश सरकारसे अनुकम्पित अनेक पुरुषोसे निवृत्त होता हुआ साथही उस स्वव्याप्यवृत्ति राजशब्दकी भी निवृत्तिहीको बोधन करताहै, जिसका नाम राज्य है वह तो किसीको सिवाय प्रयत्न के मिलना कठिन है शेषरहा दूसरे की कृपाके पात्रहोकर कुछ लाभकरना वह चाहो न्यूनहो या अधिक हो

हमारे इस प्रसंगमे वह राज्य नहीं है ऐसे स्थलोमे सर्वत्र ब्रिटिश सरकारका उद्योग ही कार्य्यकर है, बाकी सब उनके हाथकी चिड़ियाये हैं जिनको चाहें रक्खे या उडावे (४) ऐसेही समुद्रादि भयानक यात्रामे नुकसान होनाभी यद्यपि महान् उद्योगही का कार्य्य है तथापि उससे बचनेके लिये इस पुरुषको उस महा प्रभुने विशेष बुद्धि दी है यह अपनी बुद्धिसे अनेक प्रकारके शुद्ध यंत्र बनाकर भावी वायु वर्षा वेगादिको साक्षात्कार कर सकता है, जैसे (magnetic-compess) मेगनेटिक कम्पास अर्थात् कुतुबनुमासे दिशा भ्रम कदापि नहीं होता एव जैसे (level) लेविल अर्थात् भूमिके समभावानुनापक यंत्रसे पृथिवी की ऊॅचाई निचाईमे सदेह दूर होता है वैसेही वायु वर्षा तूफान-आदिके निश्चयात्मक यंत्रभी प्रथमही इन सबके सूचक होजाते हैं उनके अनु-सार जो दृढ जलयानादि द्वारा समुद्रादि यात्रा करते हैं उनको कदापि भयका स्थल नहीं आता और जो अन्धाधुन्द मनमाना करते हैं उनको मरते डूबते वारणभी कोई नहीं करता इत्यादि (५) एवं " न दिष्टमभ्यतिक्रान्तु " इत्यादि वचनभी इतिहास पुराणादिकोमे जहा तहा आते हैं वेभी धृतराष्ट्र जैसे प्रमादी पुरुषोके प्रसगसे ही आते हैं अर्थात् प्रमादी पुरुष प्रथम विना विचारे प्रमाद करलेता है और पीछे प्रारब्धपर दोष देता हुआ कुछ काल रोय रोय कर सतोष करता है। (राज०) महाराज ! पूर्व आपने कहा कि, अनभ्यासी पुरुष अपनी मूर्खतासे कार्य्यको बिगाडकर पीछे प्रारब्धपर दोष देनेलगता है तो उसमें यह कथन है कि, यह जीव स्वाभाविक किंचित् शक्तिवाला है इस लिये एक जीवका हरएक कार्य्यमे निपुण होना तो असम्भव है एवं अनन्त कार्य्य बिगडनेही की सम्भावना होसकती है। (प०) हे प्रिय ! एक पुरुषको हरएक कार्य्यके सीखनेकी आवश्यकताही क्या है किन्तु प्रत्येक पुरुषको अपने २ कार्य्यमे निपुण होना चाहिये ऐसेही परस्पर उपयोग होनेसे ससारमात्रका निर्वाह होसकता है जैसे आप राजा हैं आपको सिवाय राज्यसरक्षण या वीर-विद्याके और कुछ सीखनेका काम नहीं, जब आप अपनी राज्यनीति तथा वीरतासे अपनी प्रजापर उपकार पहुँचाओगे तो नानाविध विद्याओसे विभू-षित हुए आपकी प्रजाके लोग आपकी सेवामे उपस्थित होंगे. एवं सभी लोग

ऐसेही अपने अपने कृतकार्य्यमे कुशल होकर परस्पर सहकारी सहकार्य्य भावसे इस ससारहीमें परम सुखको लाभ करसकते हें । (राज०) यह जो आपने मेरेको अनेकप्रकारका युक्तिगर्भित उपदेश किया है सो क्या आपने अपने अनुभवरो किया है कि, शास्त्रमूलक है । (प०) हे प्रिय ! शास्त्रसिद्धान्तको छोडकर हम मन माना ऊटपटाग कदापि किसीको नहीं कहना चाहते उसमे भी फिर आप तो राजकुमार हें आप जैसे सुयोग्य पुरुषोंको हम शास्त्रसिद्धान्तके विरुद्ध एक अक्षरभी नहीं बोलसकते । (राज०) उक्त उपदेशके प्रामाणिक होनेके लिये दो चार वचनभी कह दीजिये । (प०) हे प्रिय ! कल्पित प्रारब्धके कहनेवाला तो सहिता मात्रमें एक मत्र नहीं है परन्तु उद्योगके कहनेवाले " कुर्वन्नेवेह कर्म्माणि " [यजु० अ० ४.] अर्थात् पुरुष वेदविहित शुभकर्मोंको करता हुआ गत वर्षतक जीनेकी इच्छाकरे इत्यादि अनेक वचन है एव " कर्मणैव हि ससिद्धिमास्थिता जनकादयः " इत्यादि भगवद्गीतामे भी लिखा है ऐसेही मुमुक्षुप्रकरण योगवासिष्टमे भी है-

यथा ।

उच्छास्त्रं शास्त्रितश्चेति द्विविधं पौरुषं स्मृतम् ।
तत्रोच्छास्त्रमनर्थाय परमार्थाय शास्त्रितम् ॥ १ ॥

अर्थात् शास्त्रअविहित तथा शास्त्रविहित भेदसे प्रयत्न दो प्रकारका है इन दोनोंमें शास्त्राविहित प्रयत्न इस पुरुषके अनर्थके लिये है और शास्त्रविहित प्रयत्न परमपदके वास्ते है ॥ १ ॥

सच्च दैवमधः कृत्वा नित्यमुद्रिक्तया धिया ।
संसारोत्तरणं भूत्यै यतेताधातुमात्मनि ॥ २ ॥

विद्यमान दैवको अति निर्बल समझकर प्रतिदिन उद्योगशाली बुद्धिसे पुरुष अपने आपको अनेक प्रकारकी विभूतियों द्वारा ससारमात्रमे उच्चश्रेणीका बनानेका यत्न करे ॥ २ ॥

न गन्तव्यमनुद्योगैः साम्यं पुरुषगर्दभैः ।
उद्योगस्तु यथा शास्त्रं लोकद्वितयसिद्धये ॥ ३ ॥

श्रेष्ठ पुरुषको अनुद्योगी पुरुष स्वरूपवाले गर्दभोका सग नहीं करना चाहिये किन्तु ऐसे नीचोका सग त्यागकर उभयलोकमे कल्याण करनेवाले शास्त्रविहित उद्योगको करना चाहिये ॥ ३ ॥

शुभेन पौरुषेणाशु शुभमासाद्यते फलम् ॥
अशुभेनाशुभं नित्यं दैवं नाम न किंचन ॥ ४ ॥

अच्छा प्रयत्न करनेसे पुरुषको अच्छा फलही शीघ्र होता है । एव बुरा प्रयत्न करनेसे बुरा फलभी उसी काल होता है इसलिये दैव कुछ वस्तु नहीं है॥४॥

प्रत्यक्षमानमुत्सृज्य योऽनुमानमुपैत्यसौ ।
स्वभुजाभ्यामिमौ सर्पाविति प्रेक्ष्य पलायते ॥ ५ ॥

प्रत्यक्षप्रमाणसिद्ध पदार्थ को त्याग कर जो पुरुप उसके स्थान पर अनुमित पदार्थको मानता है वह मूर्ख अपनी भुजाहीमे (यह दोनो सर्प हैं) इत्याकारिका बुद्धि करके भाग सकता है ॥ ५ ॥

दैवं सम्प्रेरयति मामिति दग्धधियां सुखम् ।
अदृष्टश्रेष्ठदृष्टीनां दृष्ट्वा लक्ष्मीर्निवर्त्तते ॥ ६ ॥

हरएक कार्य्य करनेके लिये मेरेको दैवही प्रेरणा करता है यह कथन केवल नष्ट बुद्धिवाले पुरुषोकाहै अदृष्टको श्रेष्ठ माननेवाले अधम पुरुषोंका मुख देखकर लक्ष्मीभी उनसे उपराम होजाती है अर्थात् वे भिखारी होजाते हैं ॥ ६ ॥

पौरुषं च न वानन्तं न यत्नमभिवाञ्छयते ॥
न यत्नेनापि महता प्राप्यते रत्नमश्मतः ॥ ७ ॥

जहां कार्य्यकी सम्भावना नहीं है वहा पुरुषोके अनेक तरहके प्रयत्नकी या प्रयत्नसामान्य की कुछ आवश्यकता नहीं है क्यों कि, महा प्रयत्न करनेसे भी कोई पाषाणसे रत्नलाभ नहीं करसकता ॥ ७ ॥

यथा पटः परिमितो यथाऽपरिमितः पटः ।
नियतः परिमाणस्थः पुरुषार्थस्तथैव हि ॥ ८ ॥

जैसे मापाहुआ वस्त्र या बिना मापा वस्त्र जितना है उतनाही है अर्थात् उसके मापने या ना मापनेसे आच्छादनादि क्रिया जैसे उतने पटसे उतनीही होती है वैसेही जिस कार्य्यके लिये जितना पुरुषार्थ उपयुक्त है वह उस कार्य्यके लिये उतनाही सिद्धिकर है अन्यथा नहीं ॥ ८ ॥

स च सच्छास्त्रसत्सङ्गसदाचारैर्निजं फलम् ।
ददातीति स्वभावोऽयमन्यथाऽनर्थसिद्धये ॥ ९ ॥

वही पुरुषप्रयत्न सत्संग द्वारा या सदाचार द्वारा अपने शुभ फलको देता है अन्यथा अनर्थके लिये होता है यह उसका सहज स्वभाव है ॥ ९ ॥

स्वरूपं पौरुषस्येदं दैवं व्यवहरन्नरः ।
याति निष्फलयत्नत्वं न कदाचन कश्चन ॥ १० ॥

पुरुषार्थही की अवस्थाविशेष को दैवस्वरूपसे मानता हुआ पुरुष कदापि कहीं भी निष्फल प्रयत्नवाला नहीं होता ॥ १० ॥

दैन्यदारिद्र्यदुःखार्ता अप्यन्ये पुरुषोत्तमाः ।
पौरुषेणैव यत्नेन याता देवेंद्रतुल्यताम् ॥ ११ ॥

दीनता तथा दरिद्रदुःखसे पीडित हुए अनेक श्रेष्ट पुरुष समय पर फिर अपने प्रयत्नहीसे देवराज (इन्द्र) जैसे ऐश्वर्य्यको प्राप्त होते हैं ॥ ११ ॥

आबाल्यादलमभ्यस्तैः शास्त्रसत्सङ्गमादिभिः ।
गुणैः पुरुषयत्नेन स्वार्थः सम्प्राप्यते यतः ॥ १२ ॥

अपनी बाल्यावस्थासे लेकर जो पुरुष अपने सच्छास्त्र तथा सत्पुरुषोंके संगका अभ्यास करता है वही पुरुष अपने शुभगुणोसे तथा सदुद्योगसे अभीष्ट स्वार्थको प्राप्त होता है ॥ १२ ॥

इति प्रत्यक्षतो दृष्टमनुभूतं श्रुतं कृतम् ।
दैवात्तमिति मन्यन्ते ये हतास्ते कुबुद्धयः ॥ १३ ॥

हे रामचन्द्र ! इसी वार्ताको हमने प्रत्यक्ष रूपसे देखा अनुभव किया श्रवण किया तथा अनेकवार करके अजमाया, यावत् कार्य्यको दैवाधीन माननेवाले मूर्ख लोगो की सर्वथा हानिही होतीहै ॥ १३ ॥

आलस्यं यदि न भवेज्जगत्यनर्थः
को न स्याद्बहुधनको बहुश्रुतो वा ॥
आलस्यादियमवनतिः सागरान्ता
सम्पूर्णा नरपशुभिश्च निर्धनैश्च ॥ १४ ॥

यदि आलस्य इस ससारमे न होवे तो किसीभी अनर्थके होनेकी सम्भावना नहीं है फिर ऐसे समयमे बहुधनवान् या बहुश्रुत होना पुरुषको कौन कठिन है । यह चारो तरफ देशकी समुद्रपर्य्यन्त अवनति केवल आलस्यही के प्रभावसे इन निर्धन पशुप्राय पुरुषोने सम्पूर्णरूपसे बनारक्खी है ॥ १४ ॥

ह्यस्तनो दुष्ट आचार आचारेणाद्य चारुणा ।
यथाऽऽशु शुभतामेति प्राक्तनं कर्म तत्तथा ॥ १५ ॥

गतदिन (कल) का किया दुराचार जैसे आजके शुभाचरणसे दबजाता है अर्थात् शुभरूपहीसे प्रतीत होने लगता है यही दशा प्राक्तनकर्मोंकी है ।अर्थात् अशुभभी प्राक्तनकर्म वर्तमान शुभ उद्योगसे शुभही होजाते हैं ॥ १५ ॥

तज्जयाय यतन्ते ये न लोभलवलंपटाः ।
ते दीनाः प्राकृता मूढाः स्थिता दैवपरायणाः ॥१६॥

लोभ लवमे लम्पट होकर जो पुरुष उन पूर्व कर्मोंके जयमे यत्न नहीं करते वे ही पुरुष दीन, प्राकृत, मूर्ख होकर दैवपरायण रहते है ॥ १६ ॥

पौरुषेण कृतं कर्म दैवाद्यदभिनश्यति ।
तत्र नाशयितुर्ज्ञेयं पौरुषं बलवत्तरम् ॥ १७ ॥

पुरुषार्थसे किया कार्य्य जहां दैवसे विनाशको प्राप्त होता है वहां विनाश करनेवाले का ही प्रयत्न अधिक बलवान् समझना चाहिये ॥ १७ ॥

द्वौ हुडाविव युद्ध्येते पुरुषार्थौ परस्परम् ।
य एव बलवांस्तत्र स एव जयति क्षणात् ॥ १८ ॥

अनेक स्थलोमे दो पुरुषार्थ दोनो हुडुओकी तरह परस्पर युद्ध करते रहते हैं उन दोनोमे जो बलवान् होता है उसीका अन्तमे विजय होता है ॥ १८ ॥

कर्म यः प्राक्तनं तुच्छं न निहन्ति शुभेहितैः ।
अज्ञो जन्तुरनीशोऽसावात्मनः सुखदुःखयोः ॥ १९ ॥

जो जीव प्राक्तन तुच्छ कर्मोंका अपनी शुभचेष्टाओंसे विनाश नहीं कर सकता उसको अपने सुख दु खलाभ करनेमे अज्ञानी तथा असमर्थ समझना चाहिये ॥ १९ ॥

ईश्वरप्रेरितो गच्छेत्स्वर्ग नरकमेव वा ।
स सदैव पराधीनः पशुरेव न संशयः ॥ २० ॥

जो पुरुष ईश्वरकी प्रेरणाहीमे स्वर्ग वा नरकमे जाता है वह सदा पराधीन पुरुष पशुतुल्य है इसमे कुछ संशय नहीं ॥ २० ॥

यस्तूदारचमत्कारः सदाचारविहारवान् ।
स निर्याति जगन्मोहान्मृगेन्द्रः पंजरादिव ॥ २१ ॥

और जो पुरुष उदारचमत्कार तथा सदाचारव्यवहारवाला है वह इस जगत्मोहको सिंहके पिंजरेकी तरह त्यागदेता है अर्थात् जैसे सिंहको अपने पिंजरेसे निकलनेमे श्रम नहीं होता वैसेही इस उदारचरित पुरुषको भी अधिक श्रम नहीं होता ॥ २१ ॥

कश्चिन्मां प्रेरयत्येवमित्यनर्थकुकल्पने ।
यः स्थितोदृष्टमुत्सृज्य स त्याज्योऽसौ नराधमः॥२२॥

दृष्ट वस्तुजातको छोडकर 'हरएक क्रियामें मेरेको कोई प्रेरणा अवश्य करता है' इत्याकारक कुकल्पना करनेमें जो पुरुष स्थित हुआ है ऐसे अधम पुरुषका भले पुरुषोको त्याग करना चाहिये ॥ २२ ॥

मूढैः प्रकल्पितं दैवं मन्यंतेऽपक्षयं गताः ।
नित्यं स्वपौरुषादेव लोकद्वयहितं भवेत् ॥ २३ ॥

मूर्खलोगोने इस दैवकी कल्पना करी है तथा जिनका विनाश होनेवाला है वेही इसको मानते हैं परन्तु हे राम ! हमारे मतसे तो सदा पुरुषार्थसे ही दोनो लोकोंका हित होसकता है ॥ २३ ॥

ह्यस्तनी दुष्क्रियाभ्येति शोभां सत्क्रियया यथा ॥
अद्यैवं प्राक्तनी तस्माद्यत्नाद्यः कार्य्यवान्भवेत् ॥२४॥

गतदिन (कल) होनेवाली दुष्क्रिया जैसे आजकी सत्क्रियासे शोभाको प्राप्तहोतीहै वैसेही दैवका तिरस्कारकर उद्योगशाली पुरुष सदैव कार्य्यकी सफलताको लाभ करता है ॥ २४ ॥

करामलकवद्दिष्टं पौरुषादेव तत्फलम् ।
मूढः प्रत्यक्षमुत्सृज्य दैवमोहे निमज्जति ॥ २५ ॥

हस्तगत आमलककी तरह जहां तहा फलकी उपलब्धि पुरुषार्थहींसे देखी है परन्तु मूर्खलोग प्रत्यक्षप्रमाणसिद्ध पुरुषार्थको छोडकर दैवरूपी मूर्खतामे डूबरहे हैं ॥ २५ ॥

ये समुद्योगमुत्सृज्य स्थिता दैवपरायणाः ।
ते धर्ममर्थं कामं च नाशयन्त्यात्मविद्विषः ॥२६॥

जो पुरुष सम्यक् उद्योगको त्यागकर केवल दैवपरायण बैठे रहते हैं वे आत्म-विद्वेषी मूर्ख लोग अपने धर्म, अर्थ तथा कामका स्व्य नाश करलेते हैं ॥ २६ ॥

यथा संवेदनं चेतस्तथा तत्स्पन्दमृच्छति ।
तथैव कायश्चलति तथैव फलभोक्तृता ॥ २७ ॥

जैसे चित्तका संवेदन (ज्ञान) होता है वैसेही उसमे इच्छा होती है। तदिच्छानुसार ही कायका चालन होता है, उसके अनुकूलही फलभोगभी होता है ॥ २७ ॥

आबालमेतत्संसिद्धं यत्र यत्र यथा यथा।
दैवं तु न क्वचिद्दृष्टमतो जयति पौरुषम् ॥ २८ ॥

इस वार्ताको बालसे लेकर वृद्धपर्य्यन्त सवही जानते हैं कि, जो पुरुष जहा जहा जैसे जैसे प्रयत्नको करता है उसका वैसाही फलभी लाभ करता है। परन्तु दैव तो कहींभी देखने में नहीं आता इसलिये पुरुषार्थहीका विजय है ॥ २८ ॥

पुरुपार्थेन देवानां गुरुरेव बृहस्पतिः।
शुक्रो दैत्येन्द्रगुरुतां पुरुषार्थेन चास्थितः ॥ २९ ॥

पुरुपार्थ करनेहीसे बृहस्पति देवताओका गुरु वनगया, तथा शुक्र दैत्येन्द्र राजा बलि आदिकोका गुरु वनगया ॥ २९ ॥

अशुभेषु समाविष्टं शुभेष्वेवावतारयेत्।
प्रयत्नाच्चित्तमित्येष सर्वशास्त्रार्थसंग्रहः ॥ ३० ॥

अशुभ कार्य्योंमे नियुक्त हुए अपने चित्तको मोडकर पुरुप प्रयत्नसे शुभ कार्य्योंमें प्रवृत्त करे वस यही सम्पूर्ण शास्त्रका सारार्थसग्रह है ॥ ३० ॥

यथा यथा प्रयत्नो मे फलमाशु तथा तथा।
इत्यहं पौरुपादेव फलभाङ् न तु दैवतः ॥ ३१ ॥

हे रामचन्द्र ! जैसे जैसे मेरा प्रयत्न है फलभी शीघ्रही वैसेही वैसे मिलता है इसरीतिसे में पुरुपार्थहीसे जहा तहां फल लाभकिया है किन्तु दैव की अपेक्षा किञ्चित्भी नहीं करी ॥ ३१ ॥

पौरुषाद्दृश्यते सिद्धिः पौरुषाद्धीमतां क्रमः।
दैवमाशंसतामात्रं दुःखे पेलवबुद्धिषु ॥ ३२ ॥

जहां तहां पुरुषार्थहीसे कार्य्यसिद्धि देखनेमें आती है एवं बुद्धिमान् पुरुषोंका कार्य्यक्रमभी पुरुषार्थ हीसे होता है और दैव तो दुःखमें सुखबुद्धि माननेवाले मूर्ख पुरुषोंकी आशामात्रका विषय है ॥ ३२ ॥

प्रत्यक्षप्रमुखैर्नित्यं प्रमाणैः पौरुषक्रमः।
फलितो दृश्यते लोके देशान्तरगमादिकः ॥ ३३ ॥

पुरुषार्थका क्रम अर्थात् एकके अनन्तर दूसरा कार्य्य प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे पुरुषार्थसे सिद्ध देखनेमें आताहै ऐसेही देशान्तरमें गमन आगमन भी पुरुषार्थ-सिद्धही है ॥ ३३ ॥

भोक्ता तृप्यति नाभोक्ता गंता गच्छति नाऽगतिः।
वक्ता वक्ति न चावक्ता पौरुषं सफलं नृणाम् ॥ ३४ ॥

जो भोजन करता है वही तृप्तहोता है दूसरा नहीं, जो चलता है वही स्थानपर पहुँचता है दूसरा नहीं, एवं जिसमें बोलनेकी शक्ति है वही बोलता है दूसरा नहीं बोलसकता, इसीरीतिसे पुरुषोंका पुरुषार्थ सर्वत्र सफल प्रतीत होता है ॥ ३४ ॥

शुभेन पुरुषार्थेन शुभमासाद्यते फलम्।
अशुभेनाशुभं राम यथेच्छसि तथा कुरु ॥ ३५ ॥

हे रामचन्द्र! अच्छा पुरुषार्थ करनेसे अच्छा फल लाभहोता है और बुरा पुरुषार्थ करनेसे बुरा फल प्राप्त होता है जैसे तुम्हारी इच्छा हो तैसे करो ॥३५॥

पुरुषार्थात्फलप्राप्तिर्देशकालवशादिह।
प्राप्ता चिरेण शीघ्रं वा याऽसौ दैवमिति स्मृता॥३६॥

इस संसारमें देशकालके भेदसे विलम्बसे या शीघ्र जो जैसी जहां फलप्राप्ति होती है उसीका नाम धर्मशास्त्रोंमें दैव है ॥ ३६ ॥

पुरुषो जायते लोके वर्धते जीर्यते पुनः।
न तत्र दृश्यते दैवं जरायौवनबाल्यवत् ॥ ३७॥

इस लोकमे पुरुष उत्पन्न होता है, वृद्धिको प्राप्त होता है, तथा जीर्ण होता है परन्तु जरा यौवन तथा बाल्यावस्थाकी तरह पुरुषशरीरमे दैव कहीं दिखाई नहीं देता ॥ ३७ ॥

मूढानुमानसंसिद्धं दैवं यस्यास्ति दुर्मतेः ।
दैवाद्दाहोऽस्ति नैवेति गंतव्यं तेन पावके ॥ ३८ ॥

मूर्ख पुरुषोके अनुमानसिद्ध दैव पर जिस दुर्बुद्धिपुरुषको विश्वास है उसने ' क्या जाने दैवात् अग्निदाह करे या न करे ' ऐसा विचारकर नि:सन्देह प्रज्व-लित अग्निमे भी प्रवेश करजाना चाहिये ॥ ३८ ॥

दैवमेवेह चेत्कर्तृ पुंसः किमिव चेष्टया ।
स्नानदानासनोच्चारान्दैवमेव करिष्यति ॥ ३९ ॥

मूर्खलोग यह नहीं जानते कि, यदि हरएक कार्य्यका कर्ता दैवही है तो पुरुषको चेष्टाकरनेकी क्या आवश्यकता है, स्नान करना कराना, दान देना लेना आसन बिछाना, बोलना चालना सब दैव आपही करलेगा ॥ ३९ ॥

किं वा शास्त्रोपदेशेन मूढोऽयं पुरुषः किल ।
संचार्य्यते तु दैवेन किं कस्येहोपदिश्यते ॥ ४० ॥

तथा अनेक प्रकारके शास्त्रउपदेशोसे क्या काम है यह मूर्खपुरुष दैवकी प्रेरणाहीसे हरएक क्रियामे प्रवृत्त होता है इसलिये शास्त्रभी किस किसके उद्देशसे क्या क्या उपदेशकर रहा है अर्थात् दैववादीके लिये व्यर्थही है ॥ ४० ॥

न च निस्पन्दता लोके दृष्टेह शवतां विना ।
स्पन्दाच्च फलसंप्राप्तिस्तस्माद्दैवं निरर्थकम् ॥४१॥

हे रामचन्द्र ! बिना मुर्देके हमने कोई जीव इस ससारमे क्रियाशून्य नहीं देखा और क्रियाहीसे तत्तत् फलकी प्राप्तिभी होती है इसलिये दैव मानना व्यर्थही है॥ ४१॥

न चामूर्तेन दैवेन मूर्तस्य सहकर्तृता ।
पुंसः संदृश्यते काचित्तस्माद्दैवं निरर्थकम् ॥४२॥

हे राम ! कई मूर्खलोग दैव तथा पुरुष दोनोको एक कार्य्यसाधक मानते हैं सोभी ठीक नहीं क्यो कि, अमूर्त अर्थात् स्वरूपरहित दैवके साथ स्वरूपवाले पुरुषकी समानकर्तृता अर्थात् एक कार्य्यकर्तृत्व कहीं देखनेमे नहीं आता इस लिये दैव सर्वथा निरर्थक है ॥ ४२ ॥

विनियोक्त्रथ भूतानामस्त्यन्यच्चेज्जगत्रये ।
शेरते भूतवृंदानि दैवं सर्व करिष्यति ॥ ४३ ॥

तीनो लोकोंमे इन भूतोका कोई विनियोक्ता अर्थात् प्रेरक यदि कोई और भी है तो सम्पूर्ण भूतोको अपनी तरफसे बेफिकर होकर सोना चाहिये क्योकि, उनका दैव सब आपही करदेगा ॥ ४३ ॥

दैवेन त्वभियुक्तोऽहं तत्करोमीदृशं स्थितम् ॥
समाश्वासनवागेषा न दैवं परमार्थतः ॥ ४४ ॥

इस ऐसी स्थितिवाले कार्य्यको मैं दैवसे प्रेराहुआ अर्थात् बलात् अभियुक्त कराहुआ करताहूं यह ऐसी वाणी केवल मूर्खोंका आश्वासनमात्र है अर्थात् प्रत्युत्तर देनेका सहारामात्र है वस्तुतः दैव कुछ वस्तु नहीं है ॥ ४४ ॥

मूढैः प्रकल्पितं दैवं तत्परास्ते क्षयं गताः ।
प्राज्ञास्तु पौरुषार्थेन पदमुत्तमतां गताः ॥ ४५ ॥

हे रामचन्द्र ! इस दैवकी कल्पना मूर्खलोगोंने करी है इसीलिये जो लोग दैवपरायण हैं वे जहां तहां क्षयहीको प्राप्तहोते हैं और बुद्धिमान् लोग तो जहां तहां अपने पुरुपार्थहीसे उत्तम पदको प्राप्तहुए हैं ॥ ४५ ॥

ये शूरा ये च विक्रान्ता ये प्राज्ञा ये च पण्डिताः ।
तैस्तैः किमिव लोकेऽस्मिस्तत्तद्दैवं प्रतीक्षते ॥ ४६ ॥

हे राम ! जो पुरुष शूरबीर हैं, महाबलवाले हैं, बुद्धिवाले हैं तथा पण्डित हैं उन्होनेभी क्या तत्तत् दैवकी प्रतीक्षा करी है अर्थात् कभीही नहीं किन्तु बडेलोग स्वउद्योगसाध्य कार्य्य जानकर शीघ्र कार्य्यकारी होते हैं, बीचमे किसी असिद्धकल्पित पदार्थकी प्रतीक्षा नहीं करते ॥ ४६ ॥

कालविद्भिर्विनिर्णीता यस्यातिचिरजीविता ।
स चेज्जीवति संछिन्नशिरास्तद्दैवमुत्तमम् ॥ ४७ ॥

कालगति जाननेवाले ज्योतिषी लोगोने जिस पुरुषके चिरकाल जीते रहने का निश्चय किया है वह पुरुष यदि शिर कटजानेसे पीछे भी कुछ काल जीता-रहे तो हम दैवहीकी उत्तमता मानलेवे भाव यह कि, दैवज्ञ तथा दैव दोनों ही मिथ्या तथा मिथ्यावादी हैं ॥ ४७ ॥

कालविद्भिर्विनिर्णीतं पाण्डित्यं यस्य राघव ।
अनध्यापित एवासौ तज्ज्ञश्चेद्दैवमुत्तमम् ॥ ४८ ॥

हे रामचन्द्र ! कालवेत्ता ज्योतिषीलोगोने जिसकी जन्मपत्रिका मे पण्डित होना लिखा हो वह यदि अभ्यास करनेसे विनाही कदाचित् पण्डित होसके तो हम दैव भी उत्तम मानले परन्तु ऐसा देखनेमे नही आता इस लिये उद्योग ही मुख्य है ॥ ४८ ॥

विश्वामित्रेण मुनिना दैवमुत्सृज्य दूरतः ।
पौरुषेणैव संप्राप्तं ब्राह्मण्यं राम नान्यथा ॥ ४९ ॥

हे राम ! विश्वामित्र मुनिने दैवाशाको दूर कर अपने पुरुषार्थसे ब्राह्मण्य पदको लाभ किया है प्रकारान्तरसे नही ॥ ४९ ॥

अस्माभिरपरै राम पुरुषैर्मुनितां गतैः ।
पौरुषेणैव संप्राप्ता चिरं गगनगामिता ॥ ५० ॥

हे राम ! मैंने या मेरे जैसे और अनेक मुनिलोगोने अपने पुरुषार्थहीसे बहुत कालमे गगनमें गमनकी शक्तिको लाभ किया है ॥ ५० ॥

उत्साद्य दैवसंघातं चक्रुस्त्रिभुवनोदरे ।
पौरुषेणैव यत्नेन साम्राज्यं दानवेश्वराः ॥ ५१ ॥

हे राम ! देव समूहका तिरस्कार करके दानवेश्वर राजा बलिने अपने पुरुषार्थ हीसे तीनो लोकोंमे अपने साम्राज्य को जमाया था ॥ ५१ ॥

दैवं न किंचित् कुरुते न भुंक्ते न च विद्यते।
न दृश्यते नाद्रियते केवलं कल्पनेदृशी ॥ ५२ ॥

हे राम ! दैव न कुछ करता है न खाता है और न वस्तुतः कुछ है ही, न देखनेमे आता है और न बडे लोग इसको आदरपूर्वक मानतेही हैं केवल एक परस्पर ऐसी कल्पना चली आती है॥ ५२ ॥

सर्वमेवेह हि सदा संसारे रघुनन्दन।
सम्यक्प्रयत्नात्सर्वेण पौरुषात्समवाप्यते ॥ ५३ ॥

हे रघुकुलप्रकाशक रामचन्द्र ! इस ससारमे सपूर्ण वस्तु सदा ही यथार्थ पुरुषार्थ करनेसे प्राप्त होतीं हैं इसलिये हरएक पुरुषको सम्यक् प्रयत्न करना चाहिये ॥ ५३ ॥

हे राजकुमार ! यह वसिष्ठका सिद्धान्त मैंने तेरेको अपना पूर्व कथन प्रमाणित करनेके लिये दिक् प्रदर्शनमात्र दिखलाया है ऐसेही अनेक इतिहास, पुराण, स्मृतिवचनोमे इसी सिद्धान्तको ऋषिलोगोने स्वसिद्धान्तरूपेण लिखा है और प्रारब्धको दुर्योधन जैसे मूर्खोंकी भूलके समय लिखा है इस लिये प्रारब्ध पर सत्पुरुषोको कदापि विश्वास करना उचित नहीं।

इति प्रारब्धवि० एकविंशो विश्रामः ॥ २१ ॥

अथ द्वाविंश विश्राम २२.

" (राज०) महाराज! आपने जो मेरेको कृपा कर शास्त्रका गुह्य सिद्धान्त सुनाया सो उसको सुनकर मेरा चित्त बहुतही प्रसन्न हुआ है वास्तवमे आपका कथन युक्तिप्रमाणयुक्त तथा प्राचीन ऋषि मुनि लोगोके अनुभवपूर्वक है, मैंने मिथ्याही अपनी अल्पबुद्धिसे शास्त्रतत्त्वको न जानकर प्रारब्धपर विश्वास कर रक्खा था वस्तुतः यह विश्वास महा हानिकारक है, परन्तु कौन उपाय किया जावे सबसे प्रथम अल्पश्रुत नवयुवक पुरुषोको इधर उधरका थोडासा

श्लोक सग्रह देखकर ऐसाही विपरीत निश्चय होजाता है जैसे मेरेहीको आप देखिये यदि आप कृपा न करते तो मैं तो अपनी तरफसे शास्त्रसिद्धांत समझकर अपने घरमे सतुष्ट हो ही चुका था जन्मभर कभी कुछ करनेकी इच्छा न होती, चाहो सर्वस्वनाश क्यो न होजाता परन्तु मेरे मनमें कदापि कुछ प्रयत्न करनेका साहस न आता मेरेको अब इस उचित समय पर श्री भर्तृहरि की—

यदा किंचिज्ज्ञोऽहं द्विप इव मदांधः समभवम् ।
तदा सर्वज्ञोऽस्मीत्यभवदवलिप्तं मम मनः ॥
यदा किंचित्किंचिद्बुधजनसकाशादवगतम् ।
तदा मूर्खोऽस्मीति ज्वर इव मदो मे व्यपगतः ॥ १ ॥

अर्थात् जब मेरेको किंचित् (थोडासा) ज्ञान हुआ था तो हस्तीकी तरह मद अन्ध होगया था और मैंने अपने मनमें यही समझलिया था कि, अब मेरेको कुछ जानना बाकी नहीं है किंतु जाननेयोग्य सब जानचुकाहू । परन्तु उसके पीछे जब मैंने विद्वान् लोगोके समागमसे कुछ ज्ञान पाया तो मैंने अपने आपको मूर्ख समझा और मूर्खताका मद मेरा ज्वरकी तरह दूर भी हुआ । —इस उक्तिका सार्थक स्मरण होता है, इत्यादि राजकुमार मनोहरके वचन सुनकर उसके पिता चन्द्रकीर्तिके चित्तमें ऐसा आनद हुआ कि, मानो आजही यह नूतन मनोहर समुत्पन्न होकर मेरे सौभाग्यकी वृद्धि कर रहा है। (प०) हे प्रिय! आपका कथन उचित है कि, सबसे पहिले दैवहीका सर्वशास्त्रसिद्धातत्वेन नवयुवकोंको ग्रहण होजाता है परन्तु इसमें दोप नवयुवकोका नहीं है किंतु मूर्ख शासकोका है, युवकोके पाठक लोग स्वय मूर्ख हैं शास्त्रतत्त्वको नहीं जानते तो वेही लोग जहा तहा के मनमाने श्लोक बटोरकर लडकोंको शिक्षा देते हैं । एवं उसी को सिद्धात समझकर पढ लिखकरभी आयुभर दुःखही उठाते रहते हैं । अब आप महाराजा हैं आपको उचित है कि, अपने देशमात्रके विद्यालय तथा पाठशालाओंमें यथायोग्य प्रबंध करें अर्थात् नूतनशिक्षाप्रणालीमे ' प्रारब्धबो-

धक' संग्रहको निकालकर उसके स्थानपर "उद्योगबोधक" वचनोका प्रचार करना चाहिये । (राज०) महाराज ! एक शिक्षाप्रणालीका क्या मैं तो अब यावत् राज्यप्रबन्धका सशोधन किया चाहता हू । आप कृपा करके मेरेको यह उपदेश करे कि, कौन कौन राज्यप्रबन्ध कैसे कैसे करना चाहिये जो जिसके अनुसार मैं आयुभर सुखको लाभ कर शेषमे यशोभागी बनारहूं और दूसरा विचार यह है कि, आपके उपदेशसे उद्योगका निवास तो मेरे चित्तमे अवश्य होही चुका है परन्तु वह उद्योग कहा, कैसा करना चाहिये अर्थात् कई लोग ऐसी व्यवस्था लगाते है कि, शारीरिक क्रिया सबी प्रारब्ध पर रहने देनी चाहिये और पारमार्थिक मार्गमे उद्योग करना चाहिये यदि ऐसा है तौ तो राज्यप्रबध प्रणाली पूछने की मेरेको कुछ आवश्यकता नहीं है किन्तु केवल मोक्षमार्गमात्र का उपदेशकर दीजिये और यदि यह व्यवस्थाभी अल्पश्रुत पुरुषोंहीकी है तो तौ मेरेको आप राज्यप्रबन्ध तथा मुक्तिमार्ग दोनोंका उपदेश कीजिये जो जिसमे उद्युक्त होकर मैं उभयत्र सुखलाभ करू । (पं०) हे प्रिय ! अल्पश्रुत मूर्ख लोग अपने घरसे मनमानी अनेक तरहकी व्यवस्था लगाते हैं परन्तु उन मूर्खोंके कहेको सिवाय मूर्खोंके मानता कौन है ? शास्त्रतत्त्व तो वही है जो हम आपको पूर्व कहचुके, शेषरहे अल्पश्रुत मूर्खोंके कथन सो उनमें किस किसके कहेकी समालोचना करने बैठे । यदि शारीरिक क्रिया सबही प्रारब्धके अधीन मानली जावें तो उन मूर्खोंको भोजन करना या शौच फिरनाभी कठिन होजावे क्यो कि, यह क्रिया कोई पारमार्थिक तो है ही नहीं और व्यवहारमे उद्युक्त होना उनके सिद्धांतसे विपरीतही ठहरा तो ऐसी दशामें आयु होते ही मरना होगा इत्यादि, इसलिये ऐसे खलोंके सिद्धांतोपर विचारकुशल पुरुषोको कदापि निर्भर नहीं रहना चाहिये । (राजकु०) महाराज ! मैंने आपके तात्पर्य्यको अच्छी तरह समझलिया है मेरेकोभी ऐसे भद्दे भद्दे सिद्धात अच्छे नहीं लगते परन्तु अब आप मेरेको उभयलोक कल्याणकर मार्गका उपदेश कीजिये । (प०) हे प्रिय ! उभयलोककल्याणकर तो इस पुरुपके लिये धर्म है । यदि उसको पुरुष दृढ उद्योगसे धारणकरे तो अवश्य इस लोकमे अभ्युदय तथा शेषमे कल्याणभागी होता है । (राजकु०) महाराज ! मेरे उपयुक्त धर्महीका

आप सक्षेपसे निरूपण कीजिये । (प०) हे प्रिय ! धर्म यावत् धर्मशास्त्रोमें सामान्य विशेप भेदसे दो प्रकारके हैं । यावत् प्राणीमात्रकेलिये जिनका धर्म शास्त्रोमे विधान हो वे सामान्य धर्म हैं । जैसे–

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥ ९२॥

मनु०–अ० ६ ॥

अर्थात् धैर्य्यवान् होना, क्षमाशील होना, चित्तका निरोधकरना, चोरी न करनी, पवित्र रहना, नेत्रादि इन्द्रियगणको रोकना, विचारशील होना, आत्मज्ञानी होना, सत्यवादी होना, शान्तस्वभाव होना यह दश आश्रमी पुरुषोंके साधारण धर्म है । अथवा जैसे–

अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
एतं सामासिकं धर्मं चातुर्वर्ण्येऽब्रवीन्मनुः ॥६३ ॥

मनु० अ० १० ॥

अर्थात् हिंसक न होना, सत्यवादी होना, चोरी न करनी, पवित्ररहना, इन्द्रियोंका संयम रखना यह सक्षेपसे मनुप्रोक्त चारोवर्णोंके समान धर्म हे, हे प्रिय ! यह शास्त्रप्रोक्त साधारण धर्म प्राणीमात्रके सुखजनक हे इनका एक एक अंशभी जिस प्राणीवर्गमे उत्कृष्ट प्रतीत होता है वही प्राणीवर्ग उतनी अशमें विद्वान्गणमें समय २ पर उदाहरणरूपेण वर्णनीय होता है । एव वर्ण आश्रमोंके या किसी एक व्यक्तिविशेपके उद्देशसे जिनका धर्मशास्त्रमे निरूपण हो वे विशेष धर्म हैं । जैसे–

प्रजानां रक्षणं दानमिज्याऽध्ययनमेव च ।
विषयेष्वप्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समासतः ॥ ८९ ॥

मनु० अ० १ ॥

अर्थात् प्रजापालनः करना, अशक्तोको दान देना, यज्ञ होमादि करना,

वेदशास्त्रका अध्ययन करना, शब्दस्पर्शादि विषयोंमे न फँसना येह पाच क्षत्रियके सक्षेपसे धर्म हैं। अथवा जैसे–

शौर्य्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम्॥ ४३॥

भगवद्गी० अ० १८॥

अर्थात् शूरवीर होना, तेजस्वी होना, धैर्य्यवाले होना, अतिचतुर होना, युद्धमे पीछा दिखानेवाले न होना, उदार होना, अनेक प्रकारके ऐश्वर्य्यवाले होना येह सात धर्म क्षत्रिय पुरुषके स्वाभाविक हैं अर्थात् येह सातों क्षत्रियपुरुषमे अनायास होनेचाहिये इत्यादि, ऐसेही राजा, वैद्य, भिक्षु, सेवक इत्यादि विशेष-व्यक्तियोंके भी जहा तहा विशेष धर्म धर्मशास्त्रोमे निरूपण किये हैं। (राजकु०) महाराज! आपके सिद्धान्तानुसार यह अल्पशक्तिवाला तुच्छ जीव ना संसारके यावत् पदार्थोंको सम्यक् जान ही सकता है और न जाननेही की अधिक आवश्यकता है किन्तु स्व स्व धर्मने दृढरहनेके लिये हर एक पुरुषको अपना २ धर्म स्मरण रखना चाहिये। इसलिये मुझे औरोंसे विशेष प्रयोजन नहीं मेरेको जो करणीय होवे सो उपदेश कीजिये। (प०) हे प्रिय! तुम क्षत्रिय हो इसलिये पूर्वोक्त क्षात्रधर्मोंको धारण करो उसमेंभी आप राजकुमार हो इसलिये पूर्व राज्यप्राप्तिविचारमें कहे राजाके धर्मोंकोभी धारण करो तिसपरभी यदि आपको विशेषरूपसे राजधर्म श्रवणकी आकाक्षा होय तो धर्मशास्त्र श्रवण करो। (राजकु०) महाराज! मेरेको कर्त्तव्याकर्त्तव्यका विशेषरूपसे उपदेश कीजिये। (पं०) हे प्रिय! तेरेको इसप्रजाके सरक्षणकेलिये सर्वांतर्यामी परमात्माने इन्द्र, वायु, यम, सूर्य्य, अग्नि, वरुण, चन्द्र तथा कुबेर इन अष्टदिक्पालोंके अशोंसे निर्माणकिया है इसलिये अष्टदिक्पालोंके स्वभावका बर्तावभी तुम्हारेमे अवश्य होना चाहिये। अर्थात् आपको प्रयत्नसे इन्द्र जैसा ऐश्वर्य सम्पादन करना चाहिये॥ १॥

वायुवत् चारकों द्वारा सर्वत्रगति या अनुष्णाशीत स्पर्श या कहींभी विशेष सम्बन्धाभाव या प्राणवत् सर्वका जीवन होना चाहिये॥ २॥

यमवत् क्रूरस्वभावसे दुर्जनोंके शासक होना चाहिये अर्थात् गरीबोंके सतानेवाले दुर्जनोंके लिये यमराजकी तरह क्रूरस्वभाववाले होना राजाका धर्म है ॥ ३ ॥

एवं सूर्य्यवत् तेजस्वी तथा प्रजारूप कृपिके पोषक होना चाहिये अर्थात् जैसे सूर्य अपनी किरणोंद्वारा सर्वत्र कृपिआदिकोमेंसे जल खैंचलेता है परन्तु खैंचता प्रतीत नहीं होता और फिर समयपर वर्षाद्वारा उसी जलको देकर सर्वत्र कृपिको प्रफुल्लित करदेता है वैसेही आपकोभी चाहिये कि, अपनी प्रजारूप खेतोंसे करादिरूप जलको ग्रहण करने कालमें प्रतीत न होवे परन्तु प्रजाके दुःखविमोचन कालमें मेघवर्षणकी तरह सबको प्रतीत होवे ॥ ४ ॥

ऐसेही अग्निवत् आपको पवित्र स्वभाववाले तथा शत्रुकुलदाहक होना चाहिये ॥ ५ ॥

और वरुणवत् शान्त गम्भीर तथा शत्रुशासनके लिये सर्वदा पाशहस्त होना चाहिये ॥ ६ ॥

चन्द्रवत् शीतलप्रकाशक तथा उभयपक्ष प्रजारूप कृपिके पोषक होना चाहिये ॥ ७ ॥

ऐसेही कुबेरवत् धनसग्रही तथा गुह्यकेश्वर होना चाहिये ॥ ८ ॥

इन अष्टदिक्पालोंके स्वरूपको धारण कर आपको समान दृष्टिसे सर्व प्रजाका पालन करना चाहिये क्यो कि, न्यायपूर्वक प्रजारक्षक राजा धर्मार्थ कामादि पदार्थोंको अनायास लाभ करता हुआ अन्तमें अखण्डयशोभागी होता है और अन्याय करनेवाले अविचारशील राजाका यहाही सर्वस्व नाश तथा सर्वत्र अपकीर्ति होती है परन्तु हे प्रिय ! न्यायका मूल दण्ड है, क्यो कि, विना दण्डसे दुर्जनोंको शिक्षा नहीं होती तथा साधु पुरुषोंको सतोषभी नहीं होता । तथाहि—धर्म प्रति भीष्मः—

दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वा दण्ड एवाभिरक्षति ।
दण्डः सुप्तेषु जागर्ति दण्डं धर्मं विदुर्बुधाः ॥ १ ॥

अर्थात् दण्ड ही सम्पूर्ण प्रजाको शासन करता है तथा दण्डही सर्व प्रजाका रक्षक है। शासकोके सोने कालमे दण्डही जाग्रत रहता है इस लिये विद्वान्-लोक दण्डहीको धर्मरूपसे मानते हैं ॥ १ ॥

दण्डः संरक्षते धर्मं तथैवार्थं जनाधिप ।
कामं संरक्षते दण्डस्त्रिवर्गो दण्ड उच्यते ॥ २ ॥

हे राजन् ! धर्म, अर्थ तथा काम इन तीनोका सरक्षण दण्डहीसे होता है इसलिये बुद्धिमान् लोग उक्त त्रिवर्ग दण्डहीसे मानते है ॥ २ ॥

दण्डेन रक्ष्यते धान्यं धनं दण्डेन रक्ष्यते ।
एवं विद्वन्नुपाधत्स्व भावं पश्यस्व लौकिकम् ॥३॥

धन धान्यादिकी रक्षाभी दण्डहीसे होती है इसलिये हे विद्वन् राजकुमार ! लौकिकभावको देखता हुआ तू उक्त अर्थको निश्चय कर ॥ ३ ॥

राजदण्डभयादेके पापाः पापं न कुर्वते ।
यमदण्डभयादेके परलोकभयादपि ॥ ४ ॥

अनेक पापी लोग राजदण्डके भयसे पाप नहीं करते एवं अनेक पापी यमके या परलोकके भयसे भी पाप नहीं करते हैं ॥ ४ ॥

परस्परभयादेके पापाः पापं न कुर्वते ।
एवं सांसिद्धिके लोके सर्वं दण्डे प्रतिष्ठितम् ॥ ५ ॥

अनेक प्राणी परस्पर भयसे भी पाप नहीं करते हैं इस रीतिसे स्वभावसिद्ध सम्पूर्ण दण्डहीसे प्रतिष्ठित प्रतीत होता है ॥ ५ ॥

दण्डस्यैव भयादेके न खादंति परस्परम् ।
अन्धेतमसि मज्जेयुर्यदि दण्डो न पालयेत् ॥ ६ ॥

दण्डहीके भयसे अनेक प्राणी आपसमे एक दूसरेको खाते नहीं हैं यह ससार यदि दण्डसे सरक्षित न होय तो शीघ्रही अन्धतममे निमग्न होजाय ॥ ६ ॥

यस्माददान्तान्दमयत्यशिष्टान्दण्डयत्यपि ।
दमनाद्दण्डनाच्चैव तस्माद्दण्डं विदुर्बुधाः ॥ ७ ॥

यह दण्ड अदान्त (इन्द्रिय लोलुप) पुरुषोंको दमन करता है तथा अशिष्टपुरुषोंको दण्डन करता है । एव दमन तथा दण्डन ही करनेसे विद्वान् लोग इसको दण्ड कहते हैं ॥ ७ ॥

असंमोहाय मर्त्यानामर्थसंरक्षणाय च ।
मर्यादा स्थापिता लोके दण्डसंज्ञा विशांपते ॥ ८ ॥

हे राजन् ! मनुष्योको व्याकुलतासे बचानेकेलिये तथा अनेक प्रकारके अर्थके संरक्षणके लिये यह दण्ड नामकी एक प्राचीन मर्यादा स्थापनकरी चलीआती है ॥ ८ ॥

यत्र श्यामो लोहिताक्षो दण्डश्चरति सूद्यतः ।
प्रजास्तत्र न मुह्यन्ते नेता चेत्साधु पश्यति ॥ ९ ॥

जिस देशमे श्यामवर्ण तथा रक्तनेत्रोवाला दण्ड समुद्यत हुआ विचरै है उसदेशकी प्रजा कदापि मोहको प्राप्तनहीं होती परन्तु प्रजाके नियन्ता राजाकी प्रजापर साधु दृष्टि होनीचाहिये ॥ ९ ॥

ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थश्च भिक्षुकः ।
दण्डस्यैव भयादेते मनुष्या वर्त्मनि स्थिताः ॥ १० ॥

ब्रह्मचारी, गृही, वानप्रस्थ या भिक्षुक, सन्यासी येह सवी लोक दण्डहीके भयसे न्यायमार्गमें वर्तमान हैं ॥ १० ॥

नाभीतो यजते राजन् नाभीतो दातुमिच्छति ।
नाभीतः पुरुषः कश्चित्समये स्थातुमिच्छति ॥ ११ ॥

हे राजन् ! भयसे बिना ना कोई यजन करता है और न कोई किसीको कुछ दियाही चाहता है एव भयसे न्याय विना कोईभी पुरुष नियत काल या संकेतपर स्थिर रहनेकी इच्छाभी नहींकरता ॥ ११ ॥

नाछित्त्वा परमर्माणि नाकृत्वा कर्म दुष्करम् ।
नाहत्वा मत्स्यघातीव प्राप्नोति महतीं श्रियम् ॥ १२ ॥

हे प्रिय ! कोईभी पुरुष परमर्म को न छेदन करके तथा कईएक दुष्कर कर्मोंको न करके या मत्स्यघातीकी तरह दूसरोका घात न करके महती श्री अर्थात् महासमृद्धिको प्राप्त नहीं होसकता ॥ १२ ॥

नाघ्नतः कीर्तिरस्तीह न वित्तं न पुनः प्रजा ।
इन्द्रो वृत्रवधेनैव महेन्द्रः समपद्यत ॥ १३ ॥

इस ससारमे ऐसाही देखनेमे आता है कि, अघातक पुरुषकी ना इस ससार मे कीर्ति होती है और न उसको कहींसे धन मिलता है एव न उसके कुछ प्रजाही होती है, भाव यह कि, जैसे इन्द्रने वृत्रासुरको मारकर महेन्द्र पदको लाभकिया वैसेही प्रजा, धन, समृद्धि, कीर्ति इत्यादि ससारके अनेक पदार्थ घातुक पुरुषहीको प्राप्त होते हैं ॥ १३ ॥

नहि पश्यामि जीवन्तं लोके किंचिदहिंसया ।
सत्त्वैः सत्त्वा हि जीवन्ति दुर्बलैर्बलवत्तराः ॥ १४ ॥

यदि विचारकर देखा जाय तो विना हिंसासे इस जीवको जीनाही कठिन है. देखाजाता है कि, बलवाले जीव दुर्बलोको बलात् खायकर अपना जीवन करते हैं ॥ १४ ॥

नकुलो मूषकानत्ति बिडालो नकुलाँस्तथा ।
बिडालमत्ति श्वा राजञ्छ्वानं व्यालमृगस्तथा ॥ १५ ॥

देखाजाता है कि, नकुल अर्थात् निउला चूहोको खाजाता है और नकुलको बिडाल खाजाता है । एव बिडालको कुत्ता खाजाता है । ऐसेही कुत्तेको सर्प मृगादि खाजाते है ॥ १५ ॥

तानत्ति पुरुषः सर्वान्पश्य कालो यथा गतः ।
प्राणस्यान्नमिदं सर्वं जंगमं स्थावरं जगत् ॥ १६ ॥

सर्प मृगादिकोको पुरुष खाजाता है, हे राजन् ! ऐसेही काल जाता है तूं दृष्टिदेकर देख, इसलिये यह स्थावर जगमरूप यावत् जगत् प्राणोहीका अन्न अर्थात् भक्ष्य प्रतीत होता है ॥ १६ ॥

विधानं दैवविहितं तत्र विद्वान्न मुह्यति ।
यथा सृष्टोऽसि राजेन्द्र तत्तथा भवितुमर्हसि॥१७॥

जैसे रचना परमेश्वरने रची है उसमे विद्वान् पुरुषको मोह नहीं होता इसलिये हे राजेन्द्र ! तेरेकोभी जैसा ईश्वरने बनाया है वैसाही उचित आचरण कर ॥ १७ ॥

विनीतक्रोधहर्षा हि मन्दा वनमुपाश्रिताः ।
विना धनं न कुर्वन्ति तापसाः प्राणयापनम् ॥१८॥

संसारके हर्ष शोकको दूरकर जिन मन्द स्वभाववाले तपस्वी लोगोने वनका आश्रयण किया है वे तपस्वीलोग भी अपने प्राणोंका निर्वाह विना धनसे नहीं करसकते ॥ १८ ॥

उदके बहवः प्राणाः पृथिव्यां च फलेषु च ।
न च कश्चिन्न तान्हन्ति किमन्यत्प्राणयापनम्॥१९॥

हे राजन् ! जलमे पृथिवीमें फलोमे अनेक प्रकारके प्राणी रहते हें परन्तु ऐसा कोई पुरुष नहीं है कि, जो जल न पीवे या फल न खावे या भूमिपर व्यवहरण न करे किन्तु सबही करते हैं तो फिर इससे परे प्राण यापन और क्या है ॥ १९ ॥

सूक्ष्मयोनीनि भूतानि तर्कगम्यानि कानिचित् ।
सूक्ष्मणोऽपि निपातेन येषां स्यात्स्कन्धपर्ययः॥२०॥

हे प्रिय ! अनेक जीव ऐसे सूक्ष्म हैं कि, वे देखनेमे नहीं आते किन्तु तर्कगम्य हें अर्थात् तर्कसे उनकी कल्पना करसकते हैं । ऐसे सूक्ष्म जीवोपर यदि थोडा-सामी आघात होजाय तो उनका शरीर छूटजाता है ॥ २० ॥

ग्रामान्निष्क्रम्य मुनयो विगतक्रोधमत्सराः ।
वने कुटुम्बधर्माणो दृश्यन्ते परिमोहिताः ॥ २१ ॥

काम, क्रोध, मद, मत्सरादि दोष रहित होकर मुनिलोग ग्रामको छोडकर वनको प्राप्त हुएभी वहां जंगलहीमे कुटुम्बधर्मवाले देखनेमे आते हैं ॥ २१ ॥

भूमिं भित्त्वौषधीं छित्त्वा वृक्षादीनण्डजान्पशून् ।
मनुष्यास्तनुते यज्ञांस्ते स्वर्गं प्राप्नुवन्ति च ॥ २२ ॥

पृथिवीका खोदन करके अनेक प्रकारकी औषधियोको काटके अनेक वृक्ष लतादि तथा कई एक पशु पक्षियोको मारके मनुष्य यज्ञ करते हैं फिर वे स्वर्गको प्राप्त होते हैं अर्थात् शास्त्रने उनको स्वर्गप्राप्ति कही है ॥ २२ ॥

दंडनीत्यां प्रणीतायां सर्वे सिद्ध्यन्त्युपक्रमाः ।
कौंतेय सर्वभूतानां तत्र मे नास्ति संशयः ॥ २३ ॥

हे कुंतीपुत्र ! संपूर्ण भूतोंमे दडनीतिके प्रचार करनेसे सब ही कार्य्य सहजही सिद्ध होजाते है । इस वार्तामे मेरेको रञ्चकभी संदेह नहीं है ॥ २३ ॥

दण्डश्चेन्न भवेल्लोके विनश्येयुरिमाः प्रजाः ।
जले मत्स्यानिवाभक्षन्दुर्बलान्बलवत्तराः ॥ २४ ॥

यदि इस लोकमे संरक्षक दण्ड विराजमान न होय तो प्रजाके विनाश होनेकी भी संभावना होसकती है क्यों कि, दुर्बल जीवोंको बलवाले प्राणी जलमत्स्योंकी तरह एक दूसरेको खाजानेमे कुछभी देरी न करें ॥ २४ ॥

सत्यं चेदं ब्रह्मणा पूर्वमुक्तं दण्डः प्रजा रक्षति साधुनीतः । पश्याग्नयश्च प्रतिशाम्यभीताः सन्तर्जिता दण्डभयाज्ज्वलन्ति ॥ २५ ॥

यह वार्ता पहलेही ब्रह्माने सच कही है कि, अच्छी रीतिसे जोडाहुआ दण्डही इस प्रजाका रक्षक होता है देखो अग्नियाभी बुझवादेनेके भयसे तिरस्कृत होकर दण्डहीके भयसे देदीप्यमान प्रज्ज्वलित होती हैं ॥ २५ ॥

अन्धंतम इवेदं स्यान्न प्रज्ञायेत किंचन ।
दण्डश्चेन्न भवेल्लोके विभजन्साध्वसाध्विति ॥ २६ ॥

यह ससार सारा अन्धेरगुवारको तरह होजावे तथा किञ्चिदपि विशेषरूपसे जान न पडे यदि अच्छे बुरे पदार्थका विभाजक इस लोकमे दण्ड विराजमान न होवे तो ॥ २६ ॥

येऽपि संभिन्नमर्य्यादा नास्तिका वेदनिंदकाः ।
तेऽपि भोगाय कल्पन्ते दण्डेनाशु निपीडिताः ॥२७॥

जो लोग शिष्टोंकी मर्य्यादाको नहीं मानते वेद तथा परलोकको भी नहीं मानते वे लोगभी दण्डसे शासितहुए अनेक प्रकारके भोगोके विधायक होते हैं अर्थात् राजदण्डके डरसे राजाके हरतरहसे अनुकूल होते हैं ॥ २७ ॥

सर्वो दण्डजितो लोको दुर्लभो हि शुचिर्जनः ।
दण्डस्य हि भयाद्भीतो भोगायैव प्रवर्त्तते ॥ २८ ॥

यह ससार सारा ही दण्डसे जीताहुआ है जिसको कोई दण्ड दडित न करसके ऐसे पवित्र पुरुषका मिलना कठिन है दण्डहीके भयसे यह जीव उचित भोगके लिये प्रवृत्त होता है ॥ २८ ॥

चातुर्वर्ण्यप्रमोदाय सुनीतिनयनाय च ।
दण्डो विधात्रा विहितो धर्मार्थौ भुवि रक्षितुम् ॥२९॥

ब्राह्मणादि चारों वर्णोंके आनन्दके लिये तथा श्रेष्ठ नीतिके प्रचारके लिये तथा धर्म और अर्थको भूमिपर सरक्षणके लिये यह दण्डका विधान ब्रह्माने किया है ॥ २९ ॥

यदि दण्डान्न बिभ्येयुर्वयांसि श्वापदानि च ।
अद्युः पश्यन्मनुष्यांश्च यज्ञार्थानि हवींषि च ॥३०॥

कुत्ते, बिल्ली, पशु. पक्षी इत्यादि यदि दण्डसे न डरें तो ये मनुष्योंके देखतेही यज्ञकेलिये बनाई हविको खानेमें विलम्ब न करें ॥ ३० ॥

न ब्रह्मचार्य्यधीयीत कल्याणी न दुहेत गाम् ।
न कन्योद्वहनं गच्छेद्यदि दण्डो न पालयेत् ॥३१॥

यदि दण्डकी शासना शिरपर न होय तो ब्रह्मचारीका पढना या सुन्दर स्त्रीका गोदोहन करना तथा कन्याका विवाहित होना कठिन है ॥ ३१ ॥

विश्वग्लोपः प्रवर्तेत भिद्येरन्सर्वसेतवः ।
ममत्वं न प्रजानीयुर्यदि दण्डो न पालयेत् ॥ ३२ ॥

हे प्रिय ! यदि दण्ड पालना करनेवाला न होय तो एकदम यावत् ससारके प्रबन्धोंके लोपहोनेकी सम्भावना है तथा सबही नियमोंके टूटनेकी सम्भावना है एवं परस्पर ममत्वके भी दूरहोनेकी सम्भावना है ॥ ३२ ॥

चरेयुर्नाश्रमधर्मं यथोक्तं विधिमाश्रिताः ।
न विद्यां प्राप्नुयात्कश्चिद्यदि दण्डो न पालयेत्॥३३॥

यथोचित विधिपूर्वक वर्णाश्रमोके धर्मोंको भी कोई आचरण न करे यदि दण्ड पालना करनेवाला न होय तो किसीको विद्यामे अभ्यास करना भी कठिन है ॥ ३३ ॥

न चोष्ट्रा न बलीवर्दा नाश्वाश्वतरगर्दभाः ।
युक्ता वहेयुर्यानानि यदि दण्डो न पालयेत् ॥३४॥

उष्ट्र, बैल, घोडा, खच्चर, गर्दभ इत्यादि अनेक जीव जोडेहुए दण्डशासनासे विना यानादिको कभी नहीं खैच सकते अर्थात् ये सबही जीव दण्डहीसे डरते सब कार्य्य करते है ॥ ३४ ॥

न प्रेष्या वचनं कुर्युर्न बाला जातु कर्हिचित् ।
न तिष्ठेद्युवती धर्मे यदि दण्डो न पालयेत् ॥३५॥

यदि दण्ड शासक न होय तो नौकर या बालक आज्ञाको कभी न मानें एव स्त्रीभी अपने पतिको कुछ न पहचाने अर्थात् दण्ड विना उसके भी स्वतन्त्र होनेकी सम्भावना होसकती है ॥ ३५ ॥

दण्डे स्थिताः प्रजाः सर्वा भयं दण्डे विदुर्बुधाः ।
दण्डे स्वर्गो मनुष्याणां लोकोऽयं सुप्रतिष्ठितः ॥३६॥

हे राजन् ! येह सम्पूर्ण प्रजा दण्डहीके आश्रय स्थित हैं सिवाय दण्डके दूसरी प्राणियोंको कोई भीति नहीं है दण्डके होनेहीसे मनुष्योंको इस लोकमें स्वर्गसुखका अनुभव होता है दण्डहीके अधीन इस लोककी स्थितिभी प्रतीत होती है ॥ ३६ ॥

न तत्र कूटं पापं वा वंचना वापि दृश्यते ।
यत्र दण्डः सुविहितश्चरत्यरिविनाशनः ॥ ३७ ॥

हे प्रिय ! जिस देशमे राजाका दण्ड दुष्टोके दमन करनेके लिये तथा साधु पुरुषोंकी रक्षा करनेके लिये उद्युक्त रहता है वहा मिथ्या बोलना, पाप, ठग, चोरी इत्यादि दुराचारोका नामभी नहीं रहता ॥ ३७ ॥

हविः श्वा प्रलिहेद्दृष्ट्वा दण्डश्चेन्नोद्यतो भवेत् ।
हरेत्काकः पुरोडाशं यदि दण्डो न पालयेत् ॥३८॥

यदि दण्डका भय न दिखलाया जाय तो कुत्ते तथा काकोके यज्ञके पुरोडाश तथा हवि भी खाजानेकी सम्भावना है अर्थात् दण्डहीसे भय मानकर ये जीव पीछे हटे रहते हैं ॥ ३८ ॥

अर्थे सर्वे समारम्भाः समायाता न संशयः ।
स दण्डेन समायातः पश्य दण्डस्य गौरवम् ॥ ३९ ॥

हे राजन् ! ससारके यावत् कार्य्य धनहीसे होते हैं इस वार्ताका हरएक विज्ञको निश्चय ही है परन्तु वह धन दण्डहीसे राजाको मिलता है इसलिये दण्डहीको सबका मुख्य गुरु जानना चाहिये ॥ ३९ ॥

लोकयात्रार्थमेवेह धर्मप्रवचनं कृतम् ।
अहिंसा साधु हिंसेति श्रेयान्धर्मपरिग्रहः ॥ ४० ॥

शास्त्रोमे अनेक स्थानोमे अहिंसाको साधु लिखा है तथा अनेक प्रकरणोंमें हिंसाभी लिखा है इन दोनोका धर्म प्रबलरूपसे विधान केवल लोकयात्राके लिये है अर्थात् जहा लोकमे हिंसाहीसे अनेक प्रजाको सुख होय वह हिंसाभी राजाको धर्मरूप है ॥ ४० ॥

नात्यन्तं गुणवत्किञ्चिन्न चाप्यत्यन्तनिर्गुणम् ।
उभयं सर्वकार्य्येषु दृश्यते साध्वसाधु वा ॥ ४१ ॥

इस ससारमे सर्वदा सर्वागगुणपूरित कोई वस्तु नहीं और नहीं कोई अत्यन्त निर्गुण है । किन्तु ससारका पदार्थमात्र गुणदोषमय ही प्रतीत होता है ॥ ४१ ॥

पशूनां वृषणं छित्त्वा ततो भिन्दन्ति मस्तकम् ।
वहन्ति बहवो भारान्बध्नन्ति दमयन्ति च ॥४२॥

देखा जाता है कि, लोक प्रथम पशुओके वृषण (अण्डकोष) छेदन करते हैं फिर उनके मस्तक भेदन करते हैं । ऐसे करनेसे वे अनेक तरहके भार वहन करते हैं और उन पशुओंके स्वामीभी उनको बॉध सकते हैं ताड सकते हैं ॥ ४२ ॥

एवं पर्य्याकुले लोके वितथैर्जर्जरीकृते ।
तैस्तैर्न्यायैर्महाराज पुराणं धर्ममाचर ॥ ४३ ॥

इत्यादि पूर्वोक्त रीतिसे सारा ससार आच्छादन होरहा है तथा विचित्र अन्यथाभावोंसे जर्जरीभूत होरहा है, हे राजन् ! आपको भी उन २ प्राचीन न्यायप्रणालियोसे प्रचलित पुराने धर्मपर चलना योग्य है ॥ ४३ ॥

जपं देहि प्रजां रक्ष धर्मं समनुपालय ।
अमित्राञ्जहि कौंतेय मित्राणि परिपालय ॥ ४४ ॥

हे राजन् ! जप दान करो, प्रजाका सरक्षण अपने धर्मका पालन करो शत्रुगणका विनाश करो तथा मित्रमण्डलका पालन करो ॥ ४४ ॥

मा च ते निघ्नतः शत्रून्मन्युर्भवतु पार्थिव ।
न तत्र किल्बिषं किंचित्कर्तुर्भवति भारत ॥ ४५ ॥

हे पृथ्वीपाल ! शत्रुनाश करनेमे तेरेको कदापि सोच या शोक नहीं होना चाहिये क्यो कि, राजाको शत्रुनाश करनेसे धर्मशास्त्रमे पाप नहीं लिखा है ॥ ४५ ॥

अपि भ्राता सुतोऽर्घ्यो वा श्वशुरो मातुलोऽपि वा ।
नादण्ड्यो नाम राज्ञोऽस्ति धर्माद्विचलितःस्वकात्४६

हे राजन् ! राजाको धर्मसे विपरीत हुआ अपना सहोदर भाई, पुत्र, मोललिया पुत्र, श्वशुर या मामा इत्यादि कोईभी अदण्डनीय नहीं हें अर्थात् न्यायकारी राजाको सबको उचित दण्ड देना धर्म है ॥ ४६ ॥

हे प्रिय ! यह उपदेश भारत शान्तिपर्वके १५ अध्यायमे भीष्मने युधिष्ठिरको किया है प्रसगसे वही मैंने आपको सुनाया है इसलिये आपको भी उचित है कि, आप युधिष्ठिरकी तरह धर्मपूर्वक राज्य करे ।

इति द्वाविंशो विश्रामः ॥ २२ ॥

अथ त्रयोविंश विश्राम २३.
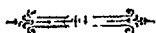
(राजकु०) महाराज ! आपने दण्डनीतिका उपदेश बहुतही उत्तम कहा यदि औरभी कुछ मेरेको करणीय होय तो कहिये । (प०) हे प्रिय ! आपको हरएक विद्याके वृद्ध विद्वानोका सदैव सेवन रखना चाहिये प्रायः पुराने राजनीतिकुशल पुरुषोका सहवास तथा उनहीके साथ सविनय नम्रवचन बोलने चाहिये, हे प्रिय ! प्राचीन नीतिनिपुण पुरुषोके सेवन करनेवाला राजा कदापि कहीं पराभवको प्राप्त नहीं होता ऐसेही आपको वेदविद्या राजनीति तर्कशास्त्रादिमे भी अभ्यास करना चाहिये तथा हरएक लोकोपकारी विद्याके विद्वानोका पालन करना

चाहिये । हे प्रिय ! अनेक प्रकारकी विविध विद्याहीके आश्रय राज्यवैभवकी स्थिति है जिस राजाके राज्यमे विद्वान् लोगोका ह्रास होजाता है उस राजाका राज्य शीघ्रही भूत खेलकी तरह कहींभी दीख नहीं पडता एव राजाको अपने राज्यके स्वाधीन रखनेके लिये जितेन्द्रिय होना चाहिये जो मूर्ख राजा होकर अपनी शक्तिसे या बुद्धिसे विषय सेवन नहीं करता वह मूढ जीताही मुर्दोंकी तरह राज्याधिकारसे किनारे होय कर या असाध्य रोगातुर हुआ शेषमे प्राण देताहै । या प्रवल शत्रुगणसे स्वराज्यस्वत्व छिनवाय कर शेषमे दीन होकर मूर्खमण्डल मे त्राण लेता है । हे प्रिय ! इस लोकमे जैसे दुर्दशा व्यसनी राजाकी होतीहै ऐसे परमात्मा किसी शत्रुकोभी न करे मैंने इस अपनी छोटीसी आयुमें अनेक व्यसनी राजे धूलिमे मिलते देखे क्यों कि व्यसनी अपने व्यसनसे प्रमादी होताहै तो उस समयमें शत्रुगणको अवसर मिलताहै वे उसीवक्त मिलकर उस मूजी राजोंकी खुशामदवालेको निकाल बाहर करते हैं तथा वहा अपना अधिकार जमाते हैं । एवं जिस व्यसनी राजाके कर्मचारीलोग कुशलहो परन्तु उसको व्यसनसे वारणकी सामर्थ्य न रक्खे तो ऐसे राजाका राज्य नष्ट तो नहीं होता परन्तु थोडे ही समयके पीछे वह मूजी आप स्वय ऐसा होजाता है कि, सिवाय पिशाव करनेके या औषधी खानेके उसको दुनियामे दूसरा कार्य्यही नहीं रहता असाध्यरोगपीडासे राज्यवैभव भोगशक्ति नष्ट होजाती है तो वह मूढ उत्तम २ भोगोको देख २ कर ललचाताही मर जाताहै, हे प्रिय ! पुंस्त्वशक्ति हीन पुरुषको स्त्री काष्ठके थमलेकी तरह जानती है और व्यसनी पुरुषका सामर्थ्यही क्या है जो उसका सतोष करसके वहा कोई राज्यकी हुकूमतका काम नहीं है किन्तु शारीरिक बलकी अपेक्षा है जिसको मूजी अपनी मूर्खतासे नष्ट करचुका है तो कहिये अब उभयत्र सतोष कैसे रहे ? हे प्रिय ! जिस भले पुरुषको भोजनका निमत्रण दिया जाय और भोजन करानेवाला निर्लज्ज उचित समयपर भोजन करवादेनेकी सामर्थ्य न रक्खे तो कितनी शर्मकी वात है धिक्कार है उसके भोजनके लिये ! बुलानेको घरमे कुछभी नहीं तो दाता और उदार बना चाहता है एवं जो तृष्णालु पुरुष दो दिनके खाने योग्य पदार्थको एकही दिनमे खाजाजायगा तो वह अवश्य विशूचिकाकी बीमारीसे मरेगा, हे प्रिय ! जिसको राज्य-

वैभव के भोगनेकी भी बुद्धि नहीं है वह राज्यवैभवको सम्पादन क्या करेगा धूल ? या जिसको स्वात्मसरक्षणकी भी तमीज नहीं है वह प्रजाका सरक्षण क्या करेगा माका शिर ? भाव यह कि, व्यसनी पुरुष कदापि राज्यवैभवको भोग नहीं सकता किन्तु शीघ्रही अपनी व्यसनाग्निमे पतगकी तरह जलकर मरजाता है। इसलिये राजाको व्यसनाग्निसे वचनेकेलिये सर्वदा सावधान रहना चाहिये और व्यसनाग्निमे डालनेवाले जन्म जन्मान्तरके भूखे नीच पामर मित्रमण्डलका भी राजाको अवश्य त्याग करना चाहिये। किन्तु सदा अपने हितको चाहनेवाले दूरदर्शी तथा नीतिनिपुण वृद्धोका सग रखना चाहिये, हे प्रिय ! राजाको परमात्माने प्राणिमात्रको शासनाके लिये निर्माण किया है इसलिये राजाको प्रमादी या व्यसनी कदापि नहीं होना चाहिये अन्यथा शीघ्रही अपने समेत अपने सर्वस्वको धूलिमे मिलाकर शेषमे यमलोकमे निवास करनेमें कुछ देरी न करेगा, हे प्रिय ! इस पूर्वोक्त कथनसे हमारा यह तात्पय नहीं है कि, राजाको सांसारिक विपयसुखका अनुभवही नहीं करना चाहिये किन्तु यह है कि, राजा जो करे सो सब सयमसे करे जैसे परमेश्वरने राजाको सर्वप्राणियोका शिरोमणि बनाया है वैसेही उसके भोग्यपदार्थ भी सर्वोत्तम ही बनाये हैं परन्तु राजाको अपनी बुद्धिसे उनको उपयोगमें लाना चाहिये। हे प्रिय ! शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध ये पाच प्राणीमात्रके बाह्य भोग्यविपय हें । और काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहकार येह पाच प्राणीमात्रके चित्तके विकार हैं इनमे प्रथम पाचकी जब इस जीवको अप्राप्ति होती है तो सबसे प्रथम चित्तका विकार काम अर्थात् कामनाकार होता है (१) कामना अनुसार प्रयत्न करनेसे यदि कदाचित् किसी प्राणीको उक्त पाचोंमेंसे किसी एक विषयकी कोई एक अश दैवात् मिलने भी लगे तो उस मिलनेमें प्रतिबन्धक होनेवाले पर उसी वक्त चित्तका परिणाम क्रोधाकार होता है (२) अब यथाशक्ति प्राप्त विपयके त्यागनेमें असमर्थ होना ही चित्तका लोभाकार परिणाम है (३) उक्तविपयोमें फँसकर उनसे छूटनेकी सामर्थ्य भी न रहनी चित्तका मोहाकार परिणाम है (४) दूसरेके

पास अपनेसे न्यून विषयसम्पत्ति देखकर चित्तमे अभिमान विशेषका नाम अहंकाराकार परिणाम है (५) हे प्रिय ! यह हमने आपको साधारण लोकस्थिति कही है परन्तु राजामे सब इससे विपरीत होना चाहिये क्यों कि, राजाको कोई विषय अप्राप्त नहीं हैं इसलिये राजामे काम का अभाव होना चाहिये (१) राजा को साधारण विषयप्राप्तिमे किसी जीवको बीचमे प्रतिबन्धक होनेकी ताकत नहीं है इसलिये राजाको क्रोधभी नहीं होना चाहिये (२) राजाको समय २ पर अनेक प्रकारके भोग्यपदार्थ स्वय प्राप्त होनेकी सम्भावना है इसलिये प्राप्तविषयके त्यागनेमे असमर्थरूप लोभभी राजामे कभी नहीं होना चाहिये (३) राजाको भोग्यपदार्थ कोई दुर्लभ नहीं हे किंतु एकके नष्ट होनेसे या उसको स्वय छोडदेनेसे उसके स्थानापन्न दूसरा उससेभी अच्छा इस परमेश्वरकी सृष्टिमें नूतन तैयार है इसलिये किसीएक विशेष पदार्थके साथ प्रेमकरके व्यामोहसागरमे डूबना राजाकी मूर्खता है । भाव यह कि, राजाका किसीभी पदार्थविशेपमे कदापि अधिक प्रेम नहीं होना चाहिये (४) एव कदाचित् भोग्य पदार्थको लाभकर अभिमानवृत्तिभी छोटे चित्तके साधारण पुरुषकी होती है इसलिये सर्वदा अनायास सिद्धविषय व्यूहवाले विमलस्वात गम्भीर हार्द महाराजको अभिमान या अहकार करनेकी कुछ आवश्यकता नहीं है (५) हे प्रिय ! शिकार खेलना १ जूआ खेलना २ दिनका सोना ३ वृथा किसीकी निन्दा स्तुति करनी ४ स्त्रियोंसे अधिक प्रेम रखना ५ शराब पीना ६ गानेबजाने आदिका सुनना ७ विना प्रयोजनसे इधर उधर घूमना ८ ये अष्ट व्यसन हैं इनसे प्रेम करनेवाला राजा बहुतही शीघ्र विनाशको प्राप्त होता है इसलिये राजाको निर्व्यसनी, उद्योगी, साहसी, दृढप्रतिज्ञ, सत्यवादी, प्रजापालक तथा शूरवीर होना चाहिये । ऐसेही राजाको अपने राज्यके अनुरूप पाच सात या दश मन्त्री नियत करने चाहिये वे राजधर्म नीतिमें कुशल, कुलीन, विद्वान्, दूरदर्शी तथा धर्मात्मा होने चाहिये इनहीके साथ राजाको हरएक राज्यप्रबन्ध चिन्तन करना चाहिये ऐसेही कुलीन, शुचि, चतुर, विद्वान्, राजभक्त, वार्ताको स्मरण रखनेवाला, इशारेके समझनेवाला, देशकालानुरूप बर्तनेवाला, दृढ शरीरवाला, निर्भय, बोलचालमे कुशल दूतभी होना चाहिये । बस इन दूत

मंत्रियोंके शिरपर ही सारे राज्यकी बुन्याद होती है, यदि दैवात् इनका मेल अच्छा मिलता चलाजाय तो राज्यप्रवन्ध कोई दिन वनारहता है और यदि इनका जुड़ाव अच्छा न होय अर्थात् इनमे कोई एक या दो नीच हो या परस्पर राग, द्वेष, ईर्षा, वखीली अधिक फैलजाय तो राजाके देखतेही उसका राज्य इन्द्रप्रतिम भी क्यो न होय थोडेही कालमे भूतखेलकी तरह दृष्टिगोचर कदापि नहीं होगा यद्यपि राज्यकार्य्यमे रहकर पुरुषका रागद्वेषशून्य रहना महा दुर्घट है तथापि विचारशील पुरुषको आपसमे के, तुच्छ रागद्वेषसे सारे राज्यमात्रमें हानि पहुँचानेवाली कोई चेष्टा कदापि नहीं करनी चाहिये । राजाका निवास स्थान नगरके मध्य या एक किनारेपर दृढ चोरादिके गमनायोग्य राजपुरुषोंसे चारों ओर सरक्षित तथा स्वच्छ हवादार होना चाहिये । अपनी प्रजाके विद्वान् लोग राजाको यथायोग्य राज्यप्रवन्धोमे नियुक्त करने चाहिये तथा शूरवीर लोगोको जंगी सेनामे नियत करना चाहिये । प्रजाके लोगोसे भूमिकर (उपजका छठा-भाग) लेना चाहिये उसके दश भाग वनाकर एक भाग प्रति वर्ष कोशमें जमा रखना चाहिये, एक भागमेंसे पाठशाला, धर्मशाला, अनाथालय, औषधा-लय इत्यादि धर्मकार्य्य करने चाहिये, शेष रहे अष्टभागोंका प्रजासरक्षक तथा राज्यसरक्षक पुलिस और जगीसेनामे खर्च करना चाहिये इस उभयसरक्षक सेनाका युद्धाभ्यास अर्थात् कवाइद प्रतिदिन नियत समयपर होना चाहिये । मरनेसे डरनेवाला पुरुष जगी सेनासे निकाल देना चाहिये । और राजाका तो युद्धसे विना मरना या शस्त्रोसे विना दूसरेको नमन करना धर्म ही नहीं है—

तथा हि अर्जुनः ।

क्षत्रियाणां महाराज संग्रामे निधनं मतम् ।
क्षात्रधर्मो महारौद्रः शस्त्रनत्य इति स्मृतः ॥ १ ॥

भारत शां० अ० २२ श्लो० ९ ॥

हे महाराज ! क्षत्रियलोगोंका युद्धहीमें मरना श्रेष्ठ है अर्थात् खाटपर मरनेसे

क्षत्रियके नामको लज्जा है यावत् धर्मोंसे क्षत्रियका धर्म इसीलिये भयानक है कि, इसमे सिवाय शस्त्रोंके दूसरे किसीको नमस्कार करनेकी भी आज्ञा नहीं है ॥ १ ॥

भीष्मः ।

ब्राह्मणानां यथा धर्मो दानमध्ययनं तपः ।
क्षत्रियाणां तथा कृष्ण समरे देहपातनम् ॥ २ ॥

हे कृष्ण ! जैसे ब्राह्मणोंका सहज धर्म दान देना, विद्या पढना, तप करना आदि है वैसेही क्षत्रियका केवल युद्धमें प्राणदेना मात्र है अर्थात् युद्धसे विना क्षत्रियका मरना सर्वथा पापरूप है और युद्धमें मरना मात्र धर्म है ॥ २ ॥

पितॄन्पितामहान्भ्रातॄन्गुरून्सम्बन्धिबान्धवान् ॥
मिथ्याप्रवृत्तान्यः संख्ये निहन्याद्धर्म एव सः ॥३॥

पिता, पितामह, भ्राता, गुरु, सम्बन्धी या बन्धुवर्गमें कोईभी मिथ्या प्रवृत्ति-वाला हो जो युद्धमे इनके विनाशमे संकोच नहीं करता वही धर्मात्मा क्षत्रिय है॥३॥

समयत्यागिनो लुब्धान्गुरूनपि च केशव ।
निहन्ति समरे पापान्क्षत्रियो यः स धर्मवित् ॥४॥

हे केशव ! जो लोभके वश होकर समयपर अपना त्यागकरे वह चाहे गुरु भी क्यों न हो क्षत्रियको उसके मारडालनेका दोष नहीं है उलटा युद्धमें उनके मारनेसे धर्म होता है ॥ ४ ॥

लोहितोदां केशतृणां गजशैलां ध्वजद्रुमाम् ।
महीं करोति युद्धेषु क्षत्रियो यः स धर्मवित् ॥ ५ ॥

जो क्षत्रिय पुरुष युद्धभूमिको लोहूसे जलवाली बनाता है तथा शत्रुगणके केशोंसे तृणमयी दिखलाता है सेनाके हस्तियोंके समूहसे पर्वतोंवाली एवं अनेक ध्वजा (निशानोंसे) वृक्षोंवालीसी बनाता है वही क्षत्रिय अपने धर्मके मर्मको जाननेवाला कहाता है ॥ ५ ॥

आहूतेन रणे नित्यं योद्धव्यं क्षत्रबन्धुना ।
धर्म्यं स्वर्ग्यं च लोक्यं च युद्धं हि मनुरब्रवीत् ॥ ६॥

क्षत्रिय पुरुषको यदि कोई युद्धकेलिये बुलावे अर्थात् अपने साथ युद्ध-करनेके लिये प्रेरे तो क्षत्रियको युद्धसे इन्कार नहीं करना चाहिये क्योंकि, क्षत्रिय पुरुषकी इस लोकमे कीर्ति और परलोकमे सद्गति तथा धर्मकी वृद्धि युद्धहीसे मनुने कही है ॥ ६ ॥

नित्योद्युक्तेन वै राज्ञा भवितव्यं युधिष्ठिर ।
प्रशस्यते न राजा हि नारीवोद्यमवर्जितः ॥ ७ ॥

भारत अ० ५९—श्लो० २० ॥

हे युधिष्ठिर ! राजा पुरुषको सदा उद्युक्त रहना चाहिये क्यो कि, राजा होकर जो स्त्री की तरह अपने वेष बनानेमे अर्थात् कघी पट्टीसे अपनेको शृंगारित करनेमे काल खोता है उसकी इस लोकमे प्रशसा नहीं होती ॥ ७ ॥

गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्य्याकार्य्यमजानतः ।
उत्पथप्रतिपन्नस्य दण्डो भवति शाश्वतः ॥ ८ ॥

कार्य्याकार्य्यको न विचारके करनेवाला पापिष्ठ तथा न्यायमार्गके विपरीत चलनेवाला गुरु भी क्यो न हो राजनियमसे अवश्य दण्डनीय है ॥ ८ ॥

लोकरंजनमेवात्र राज्ञां धर्मः सनातनः ।
सत्यस्य रक्षणं चैव व्यवहारस्य चार्जवम् ॥ ९ ॥

भारत अ० ५७ श्लो० ८ ॥

सदा सत्यका संरक्षण करना, व्यवहारकी सरलता करनी तथा प्रजाको हरएक तरहसे प्रसन्न रखना राजाके सहज सनातन धर्म हैं ॥ ९ ॥

आत्मा जेयः सदा राज्ञा ततो जेयाश्च शत्रवः ।
अजितात्मा नरपतिर्विजयेद्धि कथं रिपून् ॥ १० ॥

सबसे प्रथम राजाको सयमी होकर आत्मज्ञानी होना चाहिये उसके पीछे शत्रुविजय अर्थात् विरोधिराजाओंको जीतना चाहिये क्यों कि, जो राजा सयमसे स्वात्मजेता नहीं है उसके द्वेपी राजा जीतनेमे भी सन्देह ही है अर्थात् नहीं जीतसकेगा ॥ १० ॥

एतावानात्मविजयः पञ्चवर्गविनिग्रहः ।
जितेन्द्रियो नरपतिर्बाधितुं शक्नुयादरीन् ॥ ११ ॥

अ० ६९ श्लो० ५ ॥

स्वात्मविजय नाम कामादि पञ्च वर्गके जीतनेका है इन पञ्चवर्गके जीतनेवाला राजा अपने शत्रुवर्गको भी जीत सकता है ॥ ११ ॥

विश्वासयेत्परांश्चैव विश्वसेच्च न कस्यचित् ।
पुत्रेष्वपि हि राजेन्द्र विश्वासो न प्रशस्यते ।
अविश्वासो नरेन्द्राणां गुह्यं परमसुच्यते ॥ १२ ॥

अ० ८९ श्लो० ३३ ॥

हे राजेन्द्र ! राजाको आप सबके विश्वासपात्र वनना चाहिये परन्तु अपना विश्वासपात्र किसीको नहीं समझना चाहिये अधिक क्या कहे राजाको अपने पुत्रोंपर भी विश्वास करना उचित नहीं है परन्तु राजाका लोगोंपर अविश्वास लोगोंको प्रगट नहीं होना चाहिये अर्थात् राजाका अविश्वास ऐसा गुह्य होना चाहिये जो किसीको मालूम न हो कि, राजाको मेरा विश्वास नहीं है ॥ १२ ॥

न हि शौर्य्यात्परं किंचित्त्रिषु लोकेषु विद्यते ।
शूरः सर्वं पालयति सर्वं शूरे प्रतिष्ठितम् ॥ १३ ॥

अ० ९९ श्लो० १८ ॥

शौर्य्यधर्म जैसा उत्तम धर्म तीनोंलोकोंमे दूसरा नहीं है, सर्वप्राणियोंकी पालना करनेकी शूरवीर पुरुषमे सामर्थ्य है इसलिये वीरपुरुषको सर्वाधार कहना भी उचित है ॥ १३ ॥

जयं जानीत धर्मस्य मूलं सर्वसुखस्य च ।
या भीरूणां परा ग्लानिः शूरस्तामनुगच्छति ॥ १४ ॥

शूरपुरुषका विजय सर्वधर्मका कारण तथा अनेकविधके सुखोका मूलभूत है क्यो कि, भीरु (डराकुल) पुरुषोके ग्लानिके स्थानको शूरवीर पुरुष स्वाभाविक प्राप्त होसकता है ॥ १४ ॥

ते वयं स्वर्गमिच्छन्तः संग्रामे त्यक्तजीविताः ।
जयन्तो वध्यमाना वा प्राप्नुयाम च सद्गतिम् ॥ १५ ॥

अ० १०० श्लो० ४१ ॥

वीरपुरुषोका सदा यही विश्वास रहता है कि, स्वर्गकी इच्छा करनेवाले हम-लोग यदि युद्धमे प्राण त्यागेगे तो जय अथवा पराजयका अन्तिम फल हमको सद्गतिरूप अवश्य होगा ॥ १५ ॥

अलब्धं चैव लिप्सेत लब्धं रक्षेत्प्रयत्नतः ।
रक्षितं वर्धयेच्चैव वृद्धं पात्रेषु निक्षिपेत् ॥ १६ ॥

मनु० अ० ७ श्लो० ९९ ॥

राजाको उचित है कि, अलब्ध सम्पदाके लाभकी चेष्टा करे और लब्धको प्रयत्नसे रक्षणकरे एव रक्षितको न्यायसे वर्धितकरे तथा वर्धितको सत्पात्रोंमे दानकरे ॥ १६ ॥

आहवेषु मिथोऽन्योऽन्यं जिघांसन्तो महीक्षितः ।
युध्यमानाः परं शक्त्या स्वर्गं यान्त्यपराङ्मुखाः ॥ १७ ॥

युद्धभूमिमे परस्पर सम्मुख शस्त्राघातसे बाध्य बाधित या बाधक होनेवाले राजाको स्वर्गप्राप्ति धर्मशास्त्रोमें लिखी है अर्थात् रणभूमिमे शत्रुके सामने पीछा न दिखानेवाले वीरको स्वर्ग होता है तथा पीछा दिखानेवालेको नरक होता है ॥ १७ ॥

एकेनापि हि शूरेण पदाक्रान्तं महीतलम् ।
क्रियते भास्करेणेव स्फारस्फुरिततेजसा ॥ १८ ॥

वीरपुरुष एक भी होय तो सारी भूमिको अपने पादके नीचे अर्थात् अपने अधिकारमे करसकता है जैसे एकही सूर्य्य सारी भूमिको अपनी किरणोंसे व्याप्त करलेता है ॥ १८ ॥

हे प्रिय ! प्रजापालक तथा शूरवीर राजाके ऐसे २ अनेक धर्म है हम आपको इस थोडेसे कालमे कहातक सुनासके परन्तु यदि आपको न्याय तथा धर्मपूर्वक राज्यकरनेका उत्साह होय तो समय २ पर इतिहास, पुराण, धर्मशास्त्र तथा नीतिशास्त्रका श्रवण किया करो । (राजकु०) महाराज ! मेरे श्रवणयोग्य कौन २ ग्रन्थ है । (प०) हे प्रिय ! सबसे प्रथम कार्य्य आपका चौकस होकर प्रजापालन है यदि कदाचित् समय मिले तो महाभारत वाल्मीकि रामायणादि इतिहास सुनने चाहिये, धर्म नीति तथा राजनीतिके प्रचारके लिये मनु याज्ञवल्क्यादि धर्मशास्त्र सुनने चाहिये एव आत्मज्ञानके लिये सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, मीमासा, वेदान्त इन छः शास्त्रोंको श्रवण करना चाहिये । इनके सिवाय यद्यपि बुद्ध, जिन, चार्वाकादिविचारकुशलोंने और भी नाना प्रकारके विचार किये हैं तर्कनिपुण जिज्ञासु पुरुषको वे भी अवश्य जानने योग्य हैं तथापि राजाको उनके जाननेका कुछ उपयोग नहीं है राजाको केवल परमेश्वरपर तथा शिष्टपरम्परा कृत सत्य न्याय मार्गपर विश्वासके विना इन मत मतान्तरोंके पचडेमे पडनेकी कुछ आवश्यकता नहीं है, राजाका सिवाय ईश्वरके तथा सत्यन्यायके किसी मतमतान्तरपर आग्रह नहीं होना चाहिये । अपने अपने घरमे सबही अच्छे है परन्तु राजाके लिये सबही समान हैं क्यों कि, राजा सर्वका प्रभु है, जैसे अतर्यामी परमात्मा सर्व मतमतान्तर-वालोंपर समानदृष्टि रखताहुआ सबका समान पालन पोषणादि व्यवहार करता है ऐसेही राजारूप ईश्वरकी भी सर्वप्रजापर समान दृष्टि होनी चाहिये, राजाका विना न्यायवर्ताव किसी सिद्धान्तपर आग्रह होना उसकी महा हानिका हेतु है,

हे प्रिय ! विद्वान् लोग सवही इस वार्ताको अच्छीतरह जानते तथा मानते हैं कि, धर्म जितने प्रचलित हैं या हुए या जो आगे होंगे वे सब जीवही की कल्पनासे प्रचारित हैं ऐसा कोईभी धर्म नहीं जो कि, परमेश्वरकी तरफसे हो परन्तु तो भी मूर्खसमुदायसे लेकर अनेकों विद्वानोंतक भी अपने २ धर्मका पूर्णरूपसें आग्रह देखनेमें आता है इस धर्महीके आवेशमें सहस्रों मूँजी जिनको रुधिर देखकर मूर्च्छा आजातीहो समयपर वे भी जान कुर्बान करनेमें धिक्कार नहीं करते इसलिये प्रजाके धर्म मे दखल देनेवाले राजाका राज्य स्थायी होना सर्वथा दुर्घट है ।

इति त्रयोविंशो विश्रामः ॥ २३ ॥

अथ चतुर्विंश विश्राम २४.

(राजकु०) महाराज ! आपने मेरेको आत्मज्ञानके लिये दर्शनशास्त्र श्रवणकी आज्ञा करी सो आपके उपदेशानुसार राज्यकार्य्योंको छोडकर सागोपांग दर्शनोंका श्रवण करना तो कठिनही है इसलिये आप मेरेको सक्षेपसे दर्शन सिद्धान्तको श्रवण करावो । (प०) हे प्रिय ! आपको सांगोपांग दर्शनोंके श्रवणकी कुछ आवश्यकता नहीं है किन्तु उनका तात्पर्य समझलेना चाहिये वास्तवमें दर्शनसिद्धान्त ही इस जीवके संतोषका मूल है जिसमे आत्मविचारका युक्तिपूर्वक निरूपण हो उसका नाम दर्शन है । उक्त षट्दर्शनोंमे प्रथम दर्शन सांख्य है महर्षि कपिल इसका कर्ता है, समय इसका हमारे इतिहासोसे सत्ययुग प्रतीत होता है । सत्ययुगका समय प्रमाण कलियुगसे चौगुना लिखा है । कलियुगका प्रमाण ४३२००० चारलाख बत्तीस हजार वर्ष परिमित पुराणोंमें लिखा है । द्वापरका इससे द्विगुण है अर्थात् ८६४००० अष्टलाख चौसठ हजार कहा है । एव त्रेताका त्रिगुण अर्थात् १२९६००० बारालाख छियानवे हजार

कहा है । ऐसेही सत्ययुगका चौगुन अर्थात् १७२८००० सत्रहलाख अठाईस हजार वर्षपरिमित लिखा है इसरीतिसे महर्षि कपिलका यदि सत्ययुगकी अन्तिम शताब्दीमें भी प्रादुर्भाव मानलिया जाय तो ५००१ वर्ष व्यतीत कलिके साथ मिलाकर देखनेसे महर्षि कपिलका समय २११६५००१ इतना पुराना प्रतीत होता है इस महर्षिने अपने शास्त्रमे पुरुष तथा प्रकृति इस नामके दो पदार्थ ही माने हें उनमे पुरुष तो वास्तवसे नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव चेतनस्वरूप है और प्रकृति सत्त्वरजस्तमोमयी त्रिगुणात्मिका परिणामिनी कर्त्री जडस्वरूपा है पुरुष कर्ता नहीं परन्तु प्रकृतिके योगसे भोक्ता है ऐसे पुरुष असख्यात अर्थात् अनन्तानन्त हें और सबही पुरुष गगनकी तरह सर्वव्यापक हें । जब यह प्रकृति उक्त पुरुषोंके भोग भुगानेमे अभिमुख होतीहै तब इसका तेतीस तरहका परिणाम होता है अर्थात् प्रकृति प्रथम महत्तत्त्वरूपसे परिणत होती है महत्तत्त्व अहंकार-रूपसे परिणत होता है अहकार पञ्चतन्मात्ररूपसे परिणत होता है पञ्चतन्मात्रा पचमहाभूतरूपसे परिणत होती हे उसमेभी इतना भेद है कि, तम.प्रधान अहकारसे शब्दादि पञ्चतन्मात्राओकी उत्पत्ति है और सत्त्वप्रधान अहकारसे चक्षु:, श्रोत्र, रसना, घ्राण, त्वक् ये पञ्च ज्ञानइन्द्रिय तथा वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ ये पञ्च कर्मेन्द्रिय ग्यारहे मनकेसहित, प्रादुर्भूत होते हैं । रजोगुणको सर्वत्र क्रिया उत्पादनद्वारा कारणता है इसलिये रजोगुण भी व्यर्थ नहीं है एव प्रत्यक्ष अनुमान और शब्द येह तीन प्रमाण हैं, सत्कार्य्यवाद है अर्थात् सद्रूपकार्य्यही की कारणसामग्रीसे प्रादुर्भाव अवस्था होजाती है जगत् कर्ता ईश्वरका अनगीकार है, पुरुष सत्ताको पाकर प्रकृति ही सब जगत्को बनाती है पूर्व कहे पुरुषोंके सिवाय दूसरे जीव नहीं हैं अर्थात् पुरुषहीकी बुद्धियोगसे जीवसज्ञा होजाती है, जगत् प्रकृतिका परिणाम है, पुरुषोके भोग देनेकेलिये प्रकृतिने रचा है । पुरुष कर्मोंका कर्ता नहीं है परन्तु भोक्ता है, कर्मकर्त्री बुद्धि है उसीके सम्बन्धसे पुरुषमे कर्तापन प्रतीत होता है पुरुषकी मुक्ति आत्मज्ञानसे होती है वह आत्मज्ञान पुरुषको प्रकृति तो अन्यत्वप्रकारेण स्वात्मविषयक होना चाहिये तो ऐसे ज्ञानसे मुक्ति होती है मुक्ति नाम प्रकृतिके भोगदेनेसे उपराम-

होनेका है वस्तुतः आत्मा मुक्तस्वरूप है इत्यादि, यह सक्षेप मात्रसे सांख्य-शास्त्रका सिद्धान्त है ॥ १ ॥

इसके कुछ काल पीछे कणादमहर्षिने दशअध्यायरूप वैशेषिक शास्त्रका निर्माण किया लक्षणादि द्वारा पदार्थोंके वास्तवस्वरूपका दिखलाना इसका मुख्य प्रयोजन है विशेषरूपसे निर्वचन करनेके लिये साख्यशास्त्रप्रतिपादित पदार्थोंहीको इस महर्षिने नामान्तरसे पढा है जैसे—द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय तथा अभाव येह सात वैशेषिक शास्त्रके पदार्थ हैं इनमे पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, काल, दिशा, आत्मा, मन इन नवका नाम द्रव्य है ॥ रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, सख्या, परिमाण, पृथक्त्व, सयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व इत्यादि चौवीस तरहके गुण हैं । उत्क्षेपण अपक्षेपणादि पाचतरहके कर्म है । सामान्य नाम सत्ताका है, वह दो तरहकी है एक पर दूसरी अपर है । वह पर सत्ता द्रव्य, गुण, कर्म तीनोमें रहती है। परसे भिन्न जो जाति है वह द्रव्यादि प्रत्येकमेंभी रहसकती है, नित्यद्रव्योंके विभाजक तथा नित्य द्रव्योहीमें रहनेवाले पदार्थका नाम 'विशेष' है वह अनन्त है सम्बन्धविशेषका नाम 'समवाय' है जैसे घट तथा उसके रूपका या घटका तथा उसकी क्रियाका इत्यादि, निषेधमुख प्रतीतिके विषयका नाम अभाव है वह चार पकारका है—प्रागभाव, प्रध्वसाभाव, अत्यन्ताभाव तथा अन्योऽन्याभाव इत्यादि इनके सिद्धान्तमें प्रत्यक्ष तथा अनुमान येह दो ही प्रमाण हें ईश्वर जगत्का कर्ता है, जीव कर्ता भोक्ता विभु परिमाणवाला तथा नाना है जगत्का उपादानकारण परमाणु हैं परमाणुनाम पृथिवी, जल, तेज, वायु इन चारोभूतोके अत्यन्त सूक्ष्मभागोका है, कर्म शुभाशुभ जीव कर्ता है उसका फलभी भोगता है। पदार्थोंके यथार्थ तत्त्वज्ञानसे अर्थात् पदार्थ प्रतियोगिक यथार्थ आत्मतत्त्वज्ञानसे मुक्ति होती है मुक्ति नाम २१ दुःखध्वसका है मनसहित षड्ज्ञानेन्द्रिय षड् उनके रूप रसादिविषय, षड् उनके ज्ञान शरीर-सुख तथा दुःख येह एकविंशति दुःख हैं । तत्त्वज्ञानसे इन सबका नाश होता है इत्यादि, यह सक्षेपसे वैशेषिक शास्त्रका सिद्धान्त है ॥ २ ॥

इसके बहुतही स्वल्पकालपीछे महर्षि गौतमने न्यायशास्त्रका प्रकाश किया अनेक तरहकी युक्ति तथा प्रमाणोंसे प्राचीन कपिल महर्षिके सिद्धान्तका संरक्षण तथा वादियोंका विजय करना इस शास्त्रका मुख्य प्रयोजन है इस शास्त्रके सबही पदार्थ प्रायः वादिविजयके ढंगपर लिखेहुए हैं। प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टान्त, सिद्धान्त, अवयव, तर्क, निर्णय, वाद, जल्प, वितण्डा, हेत्वाभास, छल, जाति, निग्रहस्थान येह १६ इस शास्त्रके पदार्थ हैं। इनहीके सम्यग् ज्ञानसे मोक्षकी प्राप्ति मानी है। प्रत्यक्ष अनुमान उपमान तथा शब्द येह चार प्रमाण हैं आत्मा शरीर इन्द्रिय अर्थ बुद्धि मनःप्रवृत्ति दोष प्रेत्यभाव (पुनर्जन्म) फल दुःख अपवर्ग येह १२ तरहका प्रमेय है। ऐसे ही पांच अध्यायरूप न्यायशास्त्रमें इन ऊपर लिखे प्रमाणादि पदार्थोंका सविस्तर निरूपण है ईश्वर जीव जगत्की उत्पत्ति कर्म मुक्ति तथा आत्मज्ञानका स्वरूप येह सबही इस शास्त्रके वैशेषिक शास्त्रहीके समान है। इत्यादि यह संक्षेपसे न्यायशास्त्रका सिद्धान्त है ॥ ३ ॥

इसके बहुत काल पीछे आत्मज्ञानी पुरुषोंके जीवन्मुक्तिसुखके सम्पादनार्थ महर्षि पतंजलिने योगशास्त्रका प्रकाश किया वह योगशास्त्र समाधिसाधन विभूति तथा कैवल्य इन चार पादोंमें विभक्त है इनमें प्रथम पादमें चित्तवृत्ति-निरोधको योग कहकर सविस्तर समाधिका निरूपण किया है द्वितीय अध्यायमें तप स्वाध्याय ईश्वरप्रणिधान इत्यादिरूपसे क्रियायोगका निरूपण है तथा चचल चित्तवाले पुरुषके उद्देशसे यम नियम आसन प्राणायाम प्रत्याहार धारणा ध्यान समाधि इन अष्ट बहिरंगसाधनोंका निरूपण है तृतीय पादमें अवान्तर फलरूप अनेक प्रकारकी योगीकी विभूतिका निरूपण है चतुर्थमें जन्म औषधी मन्त्र तप तथा समाधिसे उत्पन्न होनेवाली चारप्रकारकी सिद्धिके निरूपणपूर्वक सविस्तर कैवल्यरूप परमप्रयोजनका निरूपण है क्लेशकर्मादिशून्य पुरुषविशेषको महर्षि पतंजलिने ईश्वर माना है शेष यावत् मन्तव्य पूर्वोक्त सांख्यशास्त्रवत् हैं इत्यादि यह संक्षेपसे योगशास्त्रका सिद्धान्त है ॥ ४ ॥

इसके कुछ काल पीछे महर्षि व्यासने वेदान्तशास्त्रका प्रकाश किया परमप्रा-

चीन महर्षि कपिलका कहा अर्थ वास्तवसे श्रुतिअनुकूल है यह दिखलाना इसका मुख्य प्रयोजन है इसीही लिये इस शास्त्रका नाम उत्तरमीमांसा भी प्रख्यात है मीमांसा नाम वेदविचारका है उत्तर शब्द सापेक्षक है अर्थात् महर्षि जैमिनिके पूर्वमीमासाके तात्पर्य्यसे यह शास्त्र उत्तर है यह वेदान्तशास्त्र समन्वय अविरोध साधन तथा फल इन चार अध्यायोसे विभक्त है इसके प्रत्येक अध्यायके चार चार पाद है उनमे प्रथम अध्यायके चारो पादोमे श्रुतियोके अर्थका समन्वय दिखलाया है अर्थात् यह सिद्ध किया है कि, सबही वेदवाक्य किसी एक महा तात्पर्य्यके बोधक हैं । एव दूसरे अध्यायके चारो पादोमे भिन्न २ अर्थके कहनेवाले या परस्पर विरुद्ध अर्थके कहनेवाले वेदवचनोंके विरोधका परिहार किया है अर्थात् व्यवस्था लगाई है, एव तीसरे अध्यायके चारो पादोमें सविस्तर आत्मज्ञानके साधनोंका निरूपण है, चतुर्थ अध्यायके चारो पादोमे सविस्तर मुक्तिरूप फलका निरूपण है शेप यावत् मन्तव्य इस शास्त्रके भी प्राचीन महर्षि कपिलके ही समान हैं यद्यपि वर्तमानकालमे इस शास्त्रके टीका टिप्पणी करनेवाले साप्रदायिक लोगोने इस शास्त्रको मनमाना अपनी २ तरफ खैंचा हे तथापि महानुभाव महर्षि लोग अपने पूज्य पूर्वजोंकी पुष्टिहीमें प्रयत्नशील होते हैं तथा तुच्छलोग पूर्वजोंको तुच्छ कहकर अपना मनमाना ढग चलाते हैं इस प्राचीन परिपाटीको स्मरणकर निश्चय होता है कि, यह शास्त्रभी महर्षि कपिलके प्रतिकूल नहीं है । शोक केवल इतनाही है कि, वर्तमान कालमे महर्षि कपिलके सिद्धान्तके अनुकूल वेदान्तशास्त्रपर कोई व्याख्या नहीं है इत्यादि यह सक्षेपसे वेदान्तशास्त्रका सिद्धान्त है ॥ ९ ॥

इसके कुछ काल पीछे या समकालहीमे महर्षि जैमिनिने पूर्वमीमासा शास्त्रका प्रकाश किया आत्मज्ञानके अनधिकारी मन्दबुद्धिवाले पुरुषोंको शुभकर्मोंमें लगाना इस शास्त्रका मुख्य प्रयोजन है यह द्वादश अध्यायरूप शास्त्र अधिकारीभेदसे तथा उनकी इच्छाओके भेदसे अनेक प्रकारके कर्मोंका बोधक है इसके प्रथम अध्यायमें विध्यादिके प्रामाण्यका निरूपण है (१) द्वितीयमे

विधिविहित कर्मोके भेदका निरूपण है (२) तृतीयमे विहितकर्मोके अग अङ्गीभावका प्रदर्शन है (३) चतुर्थमे यज्ञप्रयुक्त अनुष्ठेय पदार्थोके तथा पुरुपार्थप्रयुक्त अनुष्ठेय पदार्थोके परिमाणका चितन है अर्थात् उनपदार्थोके उपयुक्त तोल मापका विचार किया है (४) पञ्चममे अनुष्ठेय पदार्थोके अनुष्ठानके क्रमका निरूपण है अर्थात् किस पदार्थके अनन्तर किसका अनुष्ठान करना चाहिये ऐसा विचार किया है (५) षष्ठमे विहितकर्मोके फल भोक्तृत्वरूप अधिकारका निरूपण है अर्थात् वेदविहित कर्मोके फलके भोगनेमे कैसे अधिकारीका अधिकार है इसका विचार किया है (६) सातवेसे प्रकृति (महायाग) मे उपदिष्ट अगोका विकृति (छोटे) यागोमे सामान्यरूपसे अतिदेशका निरूपण है अर्थात् जिन अग उपांगोका प्रकृतियागमे विधान होचुका है विकृतियागमे भी उनहीका अनुवर्तन करलेना उचित है इत्यादि विचार किया है (७) अष्टममे (आग्नेयोऽष्टाकपाल) इत्यादि प्रकृतियागके अङ्गोंको 'सौर्य्य चरु निर्वपेत्' इत्यादि विकृतियागोमे सप्तदशद्रव्य-देवतादिद्वारा विशेपरूपसे अतिदेशका निरूपण है (८) नवममे प्रकृतियागमें उपदिष्ट मन्त्रोकी सामगायनकी तथा सस्कारकर्मोकी' प्रकृतिवद्विकृतिः कर्तव्या' इस अतिदेश वाक्यसे विकृतियागमे भी प्राप्ति प्राप्तहुई तो प्रकृतिगत देवतादि वाचक पदको छोडकर विकृतिगत देवतादि वाचक पदको अभ्याहार करनेकी ऊहाका निरूपण किया है अर्थात् प्रकृतिगत देवताके स्थानापन्न विकृतिगत देवताके अध्याहारपूर्वक यावत् विकृतियाग प्रकृतियागकी तरह करना उचित है जैसे 'आग्नेय' याग महायाग होनेसे प्रकृतियाग है। तथा 'सौर्य्य' याग उसकी विकृति छोटा याग है। यहां प्रकृतियागका देवता अग्नि है और विकृतियागका सूर्य्य है तहां प्रकृतियागके प्रकरणमें 'अग्नये जुष्टं निर्वपामि' ऐसा मन्त्र पढा है इसी मन्त्रकी यदि विकृतियागमे आवृत्ति करनी होय तो अग्निदेवताके स्थानापन्न सूर्य्यका उच्चारण करना अर्थात् 'सूर्य्याय जुष्ट निर्वपामि' इत्याकारक विपरिणाम करके उच्चारण करनेकी ऊहाका निरूपण है (९) दशममे विकृतियागोमे 'प्रकृतिवद्विकृतिः कर्तव्या' इत्यादि चोदकवाक्यसे प्राप्तहुए प्राकृत अगोंके

प्रकृतिमे सावकाश चिन्तनपूर्वक विकृतियागगत उपदिष्ट विशेष अगोसे बाधका निरूपण किया है अर्थात् विकृतियाग पठित विशेपअगोसे चोदकवाक्यप्रात प्राकृतअगोंका बाध होता है इत्यादि विचार किया है (१०) एकादश अध्यायमे अनेक अङ्गियोकी विधिमे प्राप्त हुए अगोका एक ही बार अनुष्ठान करनेसे सबही अगियोपर तुल्यरूपसे उपकार करनेवाले तन्त्रका निरूपण है दर्शपौर्णमासादि महायागोका नाम अंगी है । तथा प्रयाज अनुयाज आदि उनके अङ्ग हैं (११) द्वादश अध्यायमे एक अगीप्रयुक्त अगोंके अनुष्ठानको अनुष्ठानप्रयोजक सामर्थ्यरहित भी अङ्गी आन्तरमे उपकार प्रसङ्गका निरूपण है इत्यादि यह परम सक्षेपसे जैमिनीय द्वादशअध्यायरूप महाशास्त्रका विषय है ईश्वरका विधान इस शास्त्रमे नहीं है जीवोका स्वरूप कर्ता भोक्ता चेतन नाना तथा व्यापक है । जगत् इस शास्त्रमे नित्य है कभी इसका निर्मूल नाश नहीं होता शुभाशुभ कर्मोंका फल जीवको होता है । स्वर्गप्राप्तिरूपही मुक्ति है । पदार्थोंका विचार मीमांसा शास्त्रके मूलकारण यद्यपि सूत्रोमे नहीं कहा तथापि इनके अनुगामी कुमारिल भट्ट आदि विद्वानोंने कुछेक भेदसे प्राय॰ कणाद महर्षिहीके मार्गका आश्रयण किया है । विहितकर्मोंके स्वरूपका सम्यक् ज्ञानही इस शास्त्रका तत्त्वज्ञान है प्रमाणभी इस शास्त्रके अनुगामी प्रभाकरके मतमे प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द तथा अर्थापत्ति भेदसे पॉच हें । और पूर्वोक्त कुमारिल भट्टके मतसे अनुपलब्धिको मिलाकर छ॰ हैं इत्यादि यह सक्षेपसे पूर्वमीमासा शास्त्रका सिद्धान्त है (६) इत्यादि षट्शास्त्रके सिद्धान्तको श्रवणकर राजकुमारके चित्तमे बहुतही सन्तोष हुआ और उक्त पण्डितजीको अपना सच्चा गुरु जानकर वहुत कालतक सन्मानपूर्वक अपने पास रक्खा । तथा भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, राजनीति आदिके अनेक प्रकार उपदेशोको सुनकर आध्यात्मिक शारीरिक तथा राष्ट्रीय तीनो प्रकारकी उन्नतिको करताहुआ अपनेको कृतकृत्य माननेलगा । पश्चात् वृद्धमहाराज चन्द्रकीर्तिके परलोक होनेसे तथा राजकुमार मनोहरसिंहके सर्वराज्यकार्य्ययोग्य होनेसे उक्त पण्डितजी राजकुमार द्वारा

सम्मानित होकर श्रीकाशीजी जाय विराजे। और पीछे सद्गुणसम्पन्न राजकुमार पितासे भी चौगुन प्रतापशील होकर बहुतकालतक राजकरता रहा इति।

दोहा।

पढे सुने जो ग्रन्थ यह, गोविंदको उपदेश॥
श्रीगुरु नानक करें तिस, उद्यमयुक्त हमेश॥ १॥

इति श्रीगोविन्दसिंहसाधुकृत उद्योगप्रारब्धविचार समाप्त।

पुस्तक मिलनेका ठिकाना-
खेमराज श्रीकृष्णदास,
"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-प्रेस खेतवाडी-बंबई.

क्रय्यपुस्तकोंकी संक्षिप्त सूची ।

नाम.	की. रु. आ.
अध्यात्मरामायण—केवल भाषामात्र, सुन्दर जिल्द बँधीहुई इसके अभ्याससे भलीप्रकार अध्यात्मज्ञान और भक्ति प्राप्त होती है । अमूल्य होनेपरभी दाम थोडा रक्खा है ग्लेज	२—०
,, तथा रफ कागज	१—१२
अध्यात्मरामायण—गुलाबसिंहकृत—पद्यात्मक भाषा....	२—८
अब्दुर्रहमानखाँ—काबुलके अमीरका ओजवर्द्धक जीवनचरित्र	०—१२
इतिहासगुरुखालसा—(ओजवर्द्धक सिक्खोंका पूर्ण इतिहास) इसमे—गुरु नानकसाहबसे लेकर दशों बादशाहीतकका जीवनचरित्र भलीप्रकार वर्णित है.	२—०
औरंगजेबनामा—अर्थात् मुगलसम्राट् महीउद्दीन मोहम्मद औरंगजेब आलमगीर बादशाहका सचित्र इतिहास प्रथम भाग	०—६
,, तथा द्वितीय भाग	०—६
जापानका उदय—उत्साह और एकतापूर्वक उद्योग करनेसे मनुष्य असाध्य कार्य भी शीघ्र करसक्ता है । किन्तु प्रत्येक बातमें विद्याहीकी मुख्यता मानीगई है । जापानियोने उक्त उपायोकी दृढता तथा दया, धैर्य और राजभक्तिसे आशातीत जो उन्नति कीहै उन्हीं बातोंका संग्रह इस पुस्तकमें है	०—४
जैमिनीयअश्वमेध—भाषा—परममनोहर दोहा, चौपाईमें छन्दबद्ध भाषा अतीव मनोहर है ग्लेज कागज	१—१२
,, तथा रफ कागज	१—८
नैपालका इतिहास—भाषामें स्व० प० बलदेवप्रसादमिश्ररचित । इसमे—नैपालदेशभरका सांगोपाङ्ग वर्णन लिखाहै.	०—८